CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Saraswati Oriental Research Sanskrit Series No.12

॥ श्रीः ॥

महाकवि-कालिदास-प्रणीतम्

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(दाक्षिणात्यपाठानुगम्)

तत्र

घनश्यामकृत-सञ्जीवनाख्यस्य टिप्पणस्य
पाण्डुलिपिभ्यः समुद्धृतं समीक्षात्मकं संस्करणम् ।

सम्पादिका

डॉ. श्रीमती पूनम पङ्कजकुमार रावळ

सहसम्पादकश्च

वसन्तकुमार म. भट्ट

प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

गुजरात युनिवर्सिटी, अमदावाद - ३८० ००९.

INDIA

सरस्वती पुस्तक भंडार, अमदावाद.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ श्रीः ॥

महाकवि-कालिदास-प्रणीतम्

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

( दाक्षिणात्यपाठानुगम् )

*तत्र*

*घनश्यामकृत-सञ्जीवनाख्यस्य टिप्पणस्य*

*पाण्डुलिपिभ्यः समुद्धृतं समीक्षात्मकं संस्करणम् ।*

सम्पादिका

**डॉ. श्रीमती पूनम पङ्कजकुमार रावळ**

सहसम्पादकश्च

**वसन्तकुमार म. भट्ट**

प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद – ३८० ००९

**INDIA**

**1997**

**सरस्वती पुस्तक भण्डार, अमदाबाद -१**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# ABhijñāna-Śākuntalam

*(South-Indian Recension)*

with the critical edition of the commentary of Ghanaśyāma Paṇḍita (viz. Sañjīvan - Ṭippaṇa)

Editor : Dr. (Mrs.) Poonam Pankaj Raval (U.S.A.)
Co. Ed. : Prof. V. M. Bhatt

© Dr. Vasantkumar M. Bhatt
Professor and Head, The Deptt. of Sanskrit
Gujarat University
Ahmedabad - 380009 (INDIA)

**Prise :** Rs. 250/-

First edition : Nov. 1997.

**Publishers : Sarswati Pustak Bhandar**
Mr. Ashwinbhai B. Shah
Ratan Pole, Hathi Khana
Ahmedabad-380001
Phone : (079) *5356692*

**Laser Type Setters : Dhrumil Graphics**
Dilip I. Patel
Chotho-vasa
Naranpuragam
Ahmedabad-13.

Printed by : **Pooja Offset**
Mehndikuva Char Rasta
Nr. Firebridged, Shahpur,
Ahmedabad.
Phone : *5622900*

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# अस्मदीयम्

महाकवि कालिदास-प्रणीत "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक से जगत्-साहित्य में संस्कृत वाङ्मय का स्थान उन्नत एवं अविस्मरणीय बना है। परन्तु 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक की पाठपरम्परा प्राचीन काल से एकरूप नहीं रही है। इस नाटक की प्राधान्येन पञ्चविधि पाठपरम्परा – १. बंगाली, २. मैथिली, ३. काश्मीरी, ४. देवनागरी एवं ५. दाक्षिणात्य – हमारे सामने प्रवर्तमान है, और विभिन्न टीका-टिप्पणकारों ने इस नाटक पर बहुमूल्य व्याख्यान प्रस्तुत किया है। लेकिन उनमें से कतिपय साहित्य अभी भी पाण्डुलिपि में संगृहीत है, और प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहे है। अत: मैं ने Ph. D. उपाधि के लिए "घनश्यामकृत शाकुन्तल-सञ्जीवन-टिप्पण का समीक्षित पाठसम्पादन" का कार्य डॉ. तपस्वी नान्दी, प्रोफेसर एमेरिटस, गुजरात युनिवर्सिटी के मार्गदर्शन में शूरु किया। मेरे अग्रज प्रोफे. वसन्तकुमार भट्ट (अध्यक्ष-संस्कृत विभाग, गुजरात युनि.) भी समय समय पर मार्गदर्शन देते रहे, और मेरा कार्य सम्पन्न हुआ। आज ऐसा शुभदिन है कि मेरा यह Ph. D. thesis ग्रन्थरूप में "कालिदास-समारोह (1997 Nov.), उज्जयिनी में प्रकाशित हो रहा है।

मेरा ऐसा दृढ अभिप्राय है कि शाकुन्तल के प्राय: सभी टीकाकार आज उपलब्ध होनेवाली कोई भी पाण्डुलिपि से समयमर्यादा कि दृष्टि से प्राचीन है; और सभी टीकाकार अनेकानेक पाठ-परम्परा, पाठान्तर प्रक्षेपादि से अभिज्ञ थे। अत: ऐसे टीकाकारों का पूरा साहित्य यदि प्रकाश में लाया जाय तो, 'शाकुन्तल' का प्राचीन, प्राचीनतर पाठ-स्वरूप हम प्राप्त कर सकते है। और अन्ततोगत्वा 'शाकुन्तल' का मूल या प्राचीनतम श्रद्धेय पाठ क्या हो सकता है उसका हम अनुमान कर सकते हैं। कम से कम 'शाकुन्तल' के पाठान्तरों का एक प्रकार का Thesoaurus बनाने में उपलब्ध पाण्डुलिपियों के साथ साथ यह सभी टीकाकार अतीव उपयुक्त हो सकते है। इस दिशा में घनश्याम की 'सञ्जीवन' टिप्पण भी नि:शङ्क मूल्यवान है। महाकवि कालिदास की सेवा में यह छोटा सा पुष्प समर्पित कर मैं कृतकृत्यता की अनुभूति कर रही हुँ। इस अवसर पर घनश्याम के शाकुन्तल "सञ्जीवन-टीप्पण" की पाण्डुलिपियाँ (manuscripts) मुझे जहाँ से प्राप्त हो सकी है, उस "टी. एम. एस. सरस्वती महल लाईब्रेरी" तांजोर (थांजुवरम्), और "अड्यार लाईब्रेरी" चेन्नई के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुँ, और धन्यवाद प्रदान करती हूँ।

अतीव अल्पकाल में यह प्रिन्टींग कार्य सुचारु रूपेण सम्पन्न करने के लिए श्री दिलीपभाई पटेल और उनके सहयोगी प्रज्ञेश पटेल, प्रदीप पटेल का भी अभार मानती हुँ॥

इस ग्रन्थ के प्रकाशन अवसर पर मेरे जीवनसाथी श्रीमान् श्री पङ्कजकुमार गजेन्द्रभाई रावळ, और आत्मीय पू. मा, आदरणीय श्री सुकेतुभाई, चि. आदित्य और चि. विश्वा की प्रेरणादायिनी एवं उत्साहवर्धक वाणी का स्मरण करती हुँ, और उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करती हुँ॥ इस अवसर पर मेरे भ्रातृतुल्य डॉ. कमलेशभाई चोक्सी (रीडर, संस्कृतविभाग, गुजरात युनि.) और प्रकाशक श्री अश्विनभाई शाह के प्रति धन्यवाद प्रदान करती हुँ॥

देवप्रबोधिनी एकादशी,
कालिदास समारोह,
उज्जयिनी, 10Nov. 1997

सम्पादिका
**डो. पूनम पङ्कज रावळ**
(U.S.A.)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# सहसम्पादक का निवेदन...

पण्डित घनश्यामकृत ''अभिज्ञानशाकुन्तल-सञ्जीवन टिप्पण का समीक्षित पाठसम्पादन कार्य मेरी स्वसा डो. श्रीमती पूनम पङ्कज रावळने अपनीPh. D. उपाधि के लिये किया था। यह 'सञ्जीवन-टिप्पण' का प्रकाशन करना विद्वत्समाज के लिए अतीव उपकारक तो था हि, लेकिन, उसके साथ 'अभिज्ञानशाकुन्तल'-नाटक का पाठ देना भी आवश्यक था। परन्तु 'शाकुन्तल'की किस आवृत्ति का पाठ दिया जाय? - यही यक्षप्रश्न है! क्योंकि इस नाटक की प्रकाशित विभिन्न आवृत्तियाँ, विभिन्न पाठपरम्परा का प्रतिनिधित्व करती है, अथवा एकाधिक पाठपरम्परा का संमिश्रण प्रस्तुत करती है! अत: घनश्याम की टिप्पण को देखते हुए घनश्याम ने जिस प्रकार के 'शाकुन्तल'का पाठ स्वीकार करके यह टिप्पण लिखी होगी, उसका हमने अनुमान करके यह पाठ सम्पादित किया है॥ सञ्जीवन-टिप्पण का अभ्यास करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि घनश्याम ने दाक्षिणात्य पाठपरम्परा का अनुसरण किया है।.

डो. रिचार्ड पीशल ने 'शकुन्तल'की बंगाली पाठपरम्परा का समीक्षित पाठसम्पादन किया है, और डो. एस. के. बेलवेलकरजी ने काश्मीरी पाठपरम्परा के 'शाकुन्तल'का समीक्षित पाठसम्पादन किया है। इसी तरह से भविष्यत्काल में जब भी दाक्षिणात्य पाउपरम्परा के 'शाकुन्तल' का समीक्षित पाठसम्पादन करने के लिए कोई भी विद्वान् प्रयत्न करेगा, तो उस समय पर जिस तरह से काटयवेम, श्रीनिवासाचार्य, अभिराम, चर्चाकार इत्यादि टीकाकारों की टीकायें एक सहायक सामग्री (Testimonium) के रूप में उपकारक सिद्ध होगी उसी तरह से घनश्याम की यह 'सञ्जीवन-टिप्पण'भी उपकारक बनेगी ऐसा हमे दृढ विश्वास है॥

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से श्रुतिमहती संस्कृतभाषा का पूजन-अर्चन करने का जो अवसर हमे मिला है वह बडे सौभाग्य की बात है। और आज मेरे परिवार के सभी सदस्य श्रीमहाकालेश्वर शङ्करके चरणों में नतमस्तक होके प्रणाम करते है॥

देवप्रबोधिनी-एकादशी

10, Nov. 1997, उज्जयिनी, (M.P.)

वसन्तकुमार म. भट्ट
7, Lecturers' Row Houses
Gujarat Univ. Campus,
Ahmedabad - 380 009.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

## अभिप्राय

"घनश्यामकृत अभिज्ञानशाकुन्तल सञ्जीवन-टिप्पण का समीक्षित पाठसम्पादन" - इस शोधप्रबन्ध के समीक्षक प्रोफे. डॉ. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, (डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश) ने लिखा था कि - In this thesis, the candidate has presented the critical edition of Sañjīvanaṭippaṇa by Ghanas'yāma - an unpublished commentary on Kālidāsa's Abhijñānaśākuntalam. A critical edition of this work by Ghanaśyāma a well-known commentator, playwright, and author, was long awaited and the author of this thesis deserves credit for bringing out the same. The work is really a worthy contribution to Indological sudies following a proper methodology of textual criticism. The candidate has also presented an analytical study of the work by Ghanaśyāma and has undertaken panis at comparing his readings of Śākuntalam with other editions. She has used four manuscripts of the work and has also consulted the publised editions of Kālidāsa's Śākuntalam. The thesis attests candidate's erudition, wide learning and proper applications of the principles of manuscript-editing. The account of variant reading (V. chap.) is her major contribution to Kālidāsa - criticism.

- Dr. Radhavallabh Tripathi
Prof. & Head, Deptt. of Sanskrit
Harisingh Gour univ. SAGAR (M.P.)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# अनुक्रमणिका


| प्रकरण | शीर्षक | पृष्ठांक |
|---|---|---|
| १. | प्रस्तुत सम्पादन का प्रयोजन | 1-4 |
| २. | घनश्याम का जीवन एवं कवन | 5-18 |
| ३. | "अभिज्ञानशाकुन्तल - सञ्जीवनटिप्पण" की हस्तिलिखित प्रतियों का विवरण, वंशवृक्ष एवं सम्पादन पद्धति | 19-32 |
| ४. | सञ्जीवन - टिप्पण का समीक्षित पाठ | 33-216 |
| | १. प्रथमोऽङ्कः | 34-59 |
| | २. द्वितीयोऽङ्कः | 60-75 |
| | ३. तृतीयोऽङ्कः | 76-90 |
| | ४. चतुर्थोऽङ्कः | 91-111 |
| | ५. पञ्चमोऽङ्कः | 112-130 |
| | ६. षष्ठोऽङ्कः | 131-161 |
| | ७. सप्तमोऽङ्कः | 162-182 |
| | सञ्जीवनटिप्पणस्य पाठान्तरादीनां प्रदर्शनम् | 183-216 |
| ५. | देवनागरवाचना एवं अन्य दाक्षिणात्य टीकारों के साथ घनश्याम के पाठ की तुलना | 217-275 |
| ६. | टिप्पणकार घनश्याम का मूल्यांकन | 276-288 |
| ७. | उपसंहार- | 289 |
| ८. | परिशिष्ट- | 290-293 |
| ९. | प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थसूचि | 294-296 |


Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# प्रकरण १

## प्रास्ताविक : प्रस्तुत सम्पादन का प्रयोजन

महाकवि कालिदास द्वारा विरचित "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक संस्कृत काव्यसाहित्य में तो मूर्धन्य स्थान पर विराजमान है ही, लेकिन जगत के नाट्य साहित्य में भी सर्वथा पांक्तेय है। युग-युग के काव्यरसिकों में इस नाटक ने अपना अद्वितीय स्थान बना रखा है। अनेक शतकों से प्रवर्तित पठन-पाठन की परम्परा में, साहित्यशास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में और नाट्याभिनय की राष्ट्रव्यापी प्रवृत्ति में इस नाटक सर्वदा अविस्मरणीय रहा है। अतः स्वाभाविक रूप से ही, जब से कालिदास ने इस नाटक का प्रणयन किया है तब से लेकर अद्यावधि उनकी अनेकानेक असंख्य हस्तलिखित प्रतियाँ बनती रही है और नाट्यरसिक विद्वानों ने उन पर व्याख्यान-टीका-टिप्पणादि साहित्य का भी विपुल मात्रा में सर्जन किया है।

पश्चिमी जगत् के सम्पर्क से, इन हस्तलिखित प्रतियाँ के आधार पर "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटकादिका लोहाक्षरों से मुद्रणकार्य आरम्भ हुआ है।[१] जिस के परिणाम स्वरूप अनेक विद्वानों ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में से "अभिज्ञानशाकुन्तल" की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करके, उसका तुलनात्मक अभ्यास करके और उस हस्तलिखित प्रति तैयार करनेवाले लेखक की प्रमादजन्य अशुद्धियाँ को दूर करके "अभिज्ञानशाकुन्तल" की अनेक संस्करणात्मक आवृत्तियाँ प्रकाशित की है। डा. श्री सत्यपाल नारंग, दिल्ली, ने अपनी Kalidasa Bibliography - (Heritage Publishers, New Delhi, 1976) में पृ. १६४ से १६६ पर इसका परिगणन किया है। इसी तरह से डा. श्री वनेश्वर पाठक ने भी "कालिदास साहित्य एवं सन्दर्भ" (ज्योति प्रकाशन, ज्योति संगम पथ, अपर बाजार, रांची, PIN 834001, प्रथम संस्करण, 1981) में पृ. ५५ से ६१ पर इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

"अभिज्ञान शाकुन्तल" की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ का संतुलनात्मक अभ्यास करने से विद्वानों को प्रतीत हुआ है कि कालिदास के "अभिज्ञानशाकुन्तल" का पाठ समग्र भारतवर्ष में एकरूप नहीं है। यह पाठ प्रायः पाँच विभिन्न परम्परा में सञ्चरित हुआ है। जैसे कि -

क. पूर्वभारत की बंगीय पाठपरम्परा,

---

१. द्रष्टव्य : सर विलियम जोन्स द्वारा ई. 1783 में कलकत्ता से प्रकाशित अंग्रेजी गद्यानुवाद। विदेशी भाषा में यह प्रथम अनुवाद है। इस के बाद मोनीयर विलीयम्स द्वारा ई. स. 1853 में ओक्सफोर्ड से देवनागरी - लिपि पाठ के साथ प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध होता है। इस का दूसरा संस्करण हर्टफोर्ड से 1876 ई. में प्रकाशित हुआ था।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ख. पूर्वोत्तरभारत की मैथिली पाठपरम्परा,

ग. उत्तरभारत की काश्मीरी पाठपरम्परा,

घ. पश्चिम भारत की देवनागरी पाठपरम्परा,

और ङ दक्षिण भारत की दाक्षिणात्य पाठपरम्परा ॥

इन में से प्रथम चार पाठपरम्परा की प्राप्य हस्तलिखित प्रतियाँ का विभिन्न विद्वानों ने गहन अध्ययन करके "अभिज्ञानशाकुन्तल" की नीम्नोंक्त चार वाचनाओं का समीक्षित सम्पादन प्रकाशित किया है। जैसे कि -

१. प्रोफे. रिचार्ड पिशलने -

**Kālidāsa's Śakuntala** - Critically edited in the original Sanskrit and Prakrit of the **Bengali recension** by the lated Richard Pischel, First edition in 1876, Kiel; Second edition Harvard University Press, 1922.

२. उपाध्याय श्री रमानाथ शर्मा ने -

**अभिज्ञानशकुन्तलं नाटकम् ( मैथिलपाठानुगम् )**

शंकरनरहरिकृत व्याख्याद्वय समलंकृतम्, मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन प्रकाशितम्, दरभंगा, बिहार, १९५७.

३. प्रोफे एस. के. बोलवालकर ने -

**"अभिज्ञानशाकुन्तल" काश्मीरी पाठानुसारम्,**

साहित्य अकादमी, न्यू दिल्ली, १९६५.

४. (क) मोनीयर विलीयम्स ने -

**Śakuntalā by Kālidāsa,** The Deva-nagari recension of the text, ed. by Monier Williams, Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi, 3 rd edition, 1961.

(ख) प्रोफे रेवाप्रसाद द्विवेदीजी ने -

**कालिदास ग्रन्थावली,** संपा. रेवाप्रसाद, परिवर्धित द्वितीय संस्करणम्, काशी हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८६

उपर्युक्त चतुर्विध वाचनाओं के समीक्षित पाठसम्पादन में यह ध्यानार्ह है कि अद्यावधि किसी भी विद्वान् ने दक्षिण भारत से प्राप्य सभी हस्तलिखित प्रतियाँ, (एवं. सभी दाक्षिणात्य टीकासाहित्य)को एकत्रित करके, उनके आधार पर दाक्षिणात्य वाचना या पाठपरम्परा का समीक्षित पाठसम्पादन प्रकाशित नहीं किया है। कोई एक विद्वान् ने केवल 'अभिराम' की टीका के साथ जो **अभिज्ञानशाकुन्तल प्रकाशित हुआ है**[२] उसी को "दाक्षिणात्य-पाठ" मान लिया.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



तो दूसरे विद्वान् ने काटयवेमभूप की "वसन्तराजीया" टीका के साथ प्रकाशित "अभिज्ञानशाकुन्तल[3]" को "दाक्षिणात्य पाठ" मान लिया है ।[4] लेकिन दक्षिणभारत में लिखी गई हो ऐसी सभी हस्तलिखित प्रतियाँ, एवं दक्षिणभारत के सभी व्याख्याकारों (जैसे की – काटयवेमभूप, चर्चाकार, अभिराम, घनश्याम पण्डित और श्रीनिवासाचार्य इत्यादि) की व्याख्याओं या टीका-टिप्पणादि में प्रतीक रूप से उद्धृत शाकुन्तल के पाठ का सर्वेक्षण करके, जिसको हम दक्षिण का, "समीक्षित पाठ" (Critically edited text) कह सके ऐसा संस्करण अभी तक नहीं निकाला है । यहाँ एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि दक्षिणभारत के टीकाकार घनश्याम पण्डित की "अभिज्ञानशाकुन्तल" पर एक सञ्जीवनाख्य-टिप्पण है, जो हस्तलिखित प्रति के रूप में तांजोर के महाराजा सरफोजी सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर (तमीलनाडु) में सुरक्षित है । इस टिप्पण का भी "समीक्षित-पाठ" अद्यावधि अनुपलब्ध था। और शाकुन्तल के दाक्षिणात्य पाठ का समीक्षण करने के लिए जो काटयवेम भूप, अभिराम, एवं चर्चाकार के टीकाटिप्पण साहित्य का प्रकाशन हुआ या, उस में एक न्यूनता थी, और वह थी घनश्याम पण्डित की "सञ्जीवनाख्य टिप्पण"की । जब तक यह सभी दाक्षिणात्य टीकाकारों की टीका-टिप्पणादि प्रकाशित स्वरूप में सुलभ न हो तब तक अभिज्ञानशाकुन्तल के दाक्षिणात्य पाठ की समीक्षित आवृत्ति तैयार नहीं की जा सकती । क्योंकि किसी भी कृति की यदि हमें समीक्षित आवृत्ति तैयार करनी हो तो – १. उस कृति की प्राप्य सभी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करने के उपरान्त, २. उस कृति पर लिखा गया टीका-टिप्पण साहित्य भी देखना पडता है ॥ इस दृष्टिकोण से काटयवेम, अभिराम चर्चाकार और श्रीनिवासाचार्य के साथ साथ घनश्याम पण्डित की सञ्जीवनाख्य टिप्पण का यदि "समीक्षित आवृत्ति" के रूप में प्रकाशन हो जाय तो वह "अभिज्ञानशाकुन्तल" के दाक्षिणात्य पाठ की समीक्षित आवृत्ति तैयार करने के लिए "सहायक सामग्री" के रूप में उपकारक बन सके । प्रस्तुत सम्पादन का यह प्रधान प्रयोजन है ।

प्रस्तुत महानिबन्ध में घनश्याम पण्डित की "अभिज्ञानशाकुन्तल" पर लिखी गई "सञ्जीवनाख्य टिप्पण" का समीक्षित पाठ तैयार करने का दूसरा यह भी प्रयोजन है

---

2. Abhijñāna Śākuntalam, with the commentary of Abhirama, Pub. by Sri. Vani Vilas press, Sri Rangam, Date not mentioned (Perhaps : 1917 A. D.)

३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, काटयवेमविरचितया वसन्तराजीयाख्याया व्याख्यया समेतम्, संपा. श्री चेलमचर्ल रंगाचार्य, आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद, १९८२.

४. "समीक्षित दाक्षिणात्य पाठ के अभाव में भी विदान् लोग ऐसा मान कर चलते हैं कि अभिज्ञान शाकुन्तल का जो देवनागरी पाठ है उसके साथ दाक्षिणात्यपाठ प्रायः समानता रखता है । लेकिन यह अवधारणा भी पुनः परीक्ष्य है ॥ इस विषय में प्रस्तुत महानिबन्ध के पञ्चम प्रकरण में चर्चा की जायेगी ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



"अभिज्ञानशाकुन्तल" की साहित्यजगत् में जो आलोचना परम्परागत टीकाकारों के द्वारा हुई है, उसी में घनश्याम जैसे कवि एवं पण्डित टीकाकार के द्वारा कैसी विवेचना हुई है वह भी प्रकाश में लाई जाय। और तीसरा यह भी आनुषंगिक प्रयोजन है कि प्रोफे. टी. जी. मांईकरजी (पूर्णे) की जो अवधारणा थी (जैसे की – "क्या ईश्वरकृष्ण और कालिदास एक ही है ?") उसकी पुनः समीक्षा की जाय ॥

यद्यपि प्रोफे. पी. वी. काणे महाशय ने भवभूतिकृत "उत्तररामचरित" नाटक पर घनश्याम ने जो टिप्पण लिखी है, वह प्रकाशित कर दी है।[५] परन्तु "अभिज्ञानशाकुन्तल" पर घनश्यामकृत सञ्जीवनाख्य टिप्पण अद्यावधि प्रकाशित नहीं हो पाई थी। अतः प्रस्तुत महानिबन्ध में मैंने उस सञ्जीवनाख्य टिप्पण की प्राप्य चारों हस्तलिखित प्रतियाँ (पाण्डु लिपियाँ – manuscripts) तांजोर एवं मद्रास से प्राप्त करके, उसके पाठान्तरादि का सर्वेक्षण एवं शुद्धीकरण करके एक "समीक्षित पाठ" तैयार किया है। इस टिप्पण के प्रकाशन से कालिदास के "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटक की विवेचना में नया दृष्टिकोण उद्घाटित होगा उस में कोई सन्देह नहीं है।

कविकुलगुरु कालिदास हमारे राष्ट्रकवि है। कालिदास की कृतियाँ, "क्षणे क्षणे यन्नवताम् उपैति"। इस उक्ति को सर्वदा सर्वथा चरितार्थ करती रही है। अतः कालिदास की कृतियाँ पर, जो कुछ भी टीका-टिप्पण साहित्य लिखा गया है, वह सब कुछ-यदि हस्त-लिखित प्रति के रूप में भी ग्रन्थभण्डारों में पडा हुआ है – तो भी उसको प्रकाशित करना हमारा उत्तरदायित्व है। इस दिशा में यह एक छोटा सा विनम्र प्रयास है ॥

---

५. उत्तररामचरितम् with the commentary of Ghanaśyāma, ed. by P. V. Kane, Pub. Motilal Banarsidass, Delhi, fourth revised edition, 1962.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# प्रकरण २

## घनश्याम का जीवन एवं कवन

भारतीय ज्योतिष - शास्त्र की गणना के अनुसार घनश्याम का जन्म १७०० ई. में हुआ था।[१] कवि श्री घनश्याम का जन्म महाराष्ट्री कुटुम्ब में हुआ होगा, लेकिन उन्होंने अपना जीवन तांजोर (थांजुवरम्) में ही व्यतीत किया था। क्योंकि -

कवि घनश्याम ने अपनी कृतियोँ में अनेक बार बताया है कि वह ताँजोर के महाराजा श्रीतुक्कोजि (प्रथम) के मन्त्री थे।[२] महाराजा तुक्कोजि ने १७२९ A. D. से १७३५ A. D. तक ताँजोर (तमीलनाडु) में शासन किया था।

श्री जतीन्द्र विमल चौधरी के मतानुसार[३] घनश्याम २९ वर्ष की आयु में तुक्कोजि के मन्त्री बने थे। और उन्होंने १५ वर्ष की आयु से ही काव्यादि की रचना का आरम्भ किया होगा। उन्होंने "युद्धकाण्ड" नामक कृति की रचना १८ वर्ष की आयु में की थी[४] यह सुन्दरी

---

१. लग्ने कीटेझषेष्वासन-दलनिलयौ भूर्जकेतू धनुर्हयंशे काव्योऽथ नक्रे क्रियघटकटकांशेषु सौम्येनचन्द्राः। सौरिर्मेषे तुलांशे वृषमिथुनदले सैंहिकेयोऽथ जीवः। कौलीरे सिंहभागे ध्यलियन नवमांशे यदीयोऽवतारः ॥ उत्तररामचरितम् की टीका में प्रास्ताविक - श्लोक - ४

यद्यपि प्रोफे. कुंजुन्नी राजा ने बताया है कि श्री घनश्याम का जन्म १७०६ में हुआ था। इस विषय में द्रष्टव्य है :-

घनश्याम alias Cauṇḍāji Panth, versatile and arrogant writer from Mahārāṣṭras who lived in Tanjore as a minister of King Tukkoji -I(1729-35) born in January 1706 A. D. (on his horoscope-See JOR Madras IV, pp. 71-77). -Catalogous Catalogorum Vol-VI, Ed. by Dr. K. Kunjanni Raja, Uni. of Madras, 1971, pp. 273.

२. [[मन्त्री चोळमहीभुजोऽति ग]]रिमा तुक्कोजिराजस्य यो नम्रः सप्तदिवा वदीति स घनश्यामः कवीनां कविः ॥ MS. 4309 - अभि. शाकु. टिप्पणः प्रास्ताविक श्लोक - ६.

३. द्रष्टव्य :- SANSKRIT POET GHANAŚYĀMA, by Jatindra Bimal Chaudhari, in the Indian Historical Quarterly, Vol. - 19. No. 3 Sept. 1943-44 A. D.

४. तेनाष्टदशवत्सरेण कविना चौण्डाजिपन्तेन च श्रीमानारचितश्चिराय जयतु श्रीयुद्धकाण्डो मुदा ॥ (द्रष्टव्यः MS. No. 4143-4145 of T. M. S. S. M. Library, Tanjore)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



साहित्यिक प्रवृत्ति १७१५ से लेकर १७५० तक प्रवर्तमान रही होगी । कवि घनश्याम का जन्म महाराष्ट्री कुटुम्ब में हुआ था । उनके पिताजी का नाम "महादेव" था और मातृश्री का नाम "काशी" था । घनश्याम के अग्रज भ्राता "ईश" थे, जो उत्तरवर्ती जीवनकाल में संन्यासी हो गये थे, और "चिदम्बर ब्रह्मचारी" नाम से विख्यात हुए थे । रामेश्वर-तीर्थ के समीप में महिषासुरमर्दिनी का एक मन्दिर है, उस मन्दिर के "देवीपाषाण" या "नवपाषाण" में श्री चिदम्बर निवास करते थे । घनश्याम को एक "शाकम्भरी" नाम की भगिनी भी थी ।[५] घनश्याम का प्रथम विवाह "सुन्दरी" नामकी कन्या के साथ हुआ था । उसके बाद घनश्याम जब ३० वर्ष के हुए तब उनका दूसरा विवाह हुआ । उस समय उनकी दूसरी पत्नी "कमला" या "कमजला" १३ साल की ही थी । श्री जे. बी. चौधरी के मतानुसार 'सुन्दरी' का जन्म १७०५ A. D. में हुआ था । घनश्याम जब महाराजा तुक्कोजि के मन्त्री बन गये थे उस समय "कमला" के साथ दूसरा विवाह संपन्न हुआ ।[६] उस समय तक तो कविने ५३ कृतियाँ की रचना भी कर ली थी । इस बात की जानकारी घनश्यामकृत भारतचम्पूसञ्जीवनी, अभि. टिप्पण और प्रबोधचन्द्रोदयसञ्जीवनी, के प्रथमाङ्ककी पुष्पिका से मीलती है । "चण्डानुरञ्जन" नामक प्रहसन में सबसे पहले "कमला" का नाम उल्लिखित हैं। अभिज्ञान-शाकुन्तल सञ्जीवन के प्रास्ताविक श्लोक (१८) में घनश्याम अपनी दोंनो पत्नीयाँ का सहर्ष निर्देश करते हैं :- प्रेयस्योर्मम सुन्दरी-कमलयोः कण्ठद्वये शोभताम् ॥

घनश्याम की यह दोनों पत्नीयाँ भी विदूषी थी, और साहित्य की मर्मज्ञ भी थी। अत एव दोनों ने मिल कर राजशेखर कृत "विद्धशालभञ्जिका" रूपक के उपर एक "चमत्कारतरङ्गिणी" नामक व्याख्या भी लिखी है । उस व्याख्या में वह दोनों, अपने पति का सगर्व उल्लेख करते हुए लिखते है कि - "नयनयोः सुखातिशयकरत्वात् अमृतवर्तिरिति व्यपदेशः । "इयममृतवतिर्नयनयोरि" ति नाथचरणव्याकृतोत्तररामचरिते ॥" (विद्धशा p. 64) एवं-भूयिष्ठं भूयः । स्फुटम् अतिप्रकाशम् इति यावद् । अत एव "अभिरूप-भूयिष्ठे" ति नाथचरण- व्याख्यातशाकुन्तले । (विद्धशा. p. 115)

---

५. यस्येशोऽग्रभवः पिता किल महादेवः स काशीप्रसूः ।
साधुः श्रेयसि सुन्दरी प्रयतमा शाकम्भरी च स्वसा ॥

६. पण्डितश्रेष्ठ श्री काणे पी. वी. महाशनय ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि- Ghanaśyāmas first wife was Sundari and after her death he had another wife called kamala. (Uttararamacarita, Introduction, page-42, Ed. by V. p. Kane, Pub. Motilal Banarsidass, Dehi, 1962) - यह सत्य नहीं है । क्योंकि दोनों पत्नीयाँ ने मिल कर राजशेखरकृत "विद्धशालभञ्जिका" पर "चमताकरतरङ्गिणी" नामक एक टीका भी लिखी है। द्रष्टव्यः The contribution of women to Sanskrit literature, El. J. B. Chaudhari, Calcutta 1943)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



एवं कमला ने विद्धशाल. प्रथमाङ्क की चमत्कारतरङ्गिणी टीका की पुष्पिका में अपने पति कविश्री, घनश्याम का कौटुम्बिक परिचय एवं साहित्यसर्जन की प्रवृत्ति का परिचय देते हुए लिखा है। :-

इति महाराज - पद - महनीय - तुक्कोजि - राज - महामात्य - मौन - भार्गव - कुला - कूपार - चन्द्र - चौण्डो - बालाजि - पौत्रस्य, कौडिन्य - गोत्र - पारावार - निष्कलङ्क - कौस्तुभ - तिम्माजि बालाजि दौहित्रस्य, काशी - महादेव - तनुजस्य, शाकम्भरी - परमहंस - चिदम्बर - ब्रह्मानुजस्य, पञ्चषष्टिप्रबन्धी - दशभाषा - भव्य काव्याष्टपदी - पद-पद्य - वर्ण - विलसदन्यूनाक्षर - मालिकस्य, स्तवन-कवन-धौरन्धरी-पारीणस्य-गीत-गाथा-सहस्र-चतुष्ट-चतुर-दिव्य-देवी-ताटङ्क -लिपि-कल्पकस्य, सुन्दरीकमलजाने:, १. वश्य-वचः, २. सर्वज्ञ ३. सरत्वती-नाम-त्रय-मण्डितस्य, घनश्याम-पण्डितस्य, सुवर्ण-ताटङ्क पुनरुक्त-भूषण-श्रुतिभ्यां सौभाग्यवतीभ्यां पत्नीभ्यां विरचिते नाथचरणकृत-विद्धशालभञ्जिका-प्राणप्रतिष्ठानुचर-चमत्कार-तरङ्गणी-नामधेये सुन्दरीकमलीये-सहजसमाख्याने व्याख्याने प्रथमोऽङ्कः ॥ (विद्धशाल. - पृ. ७५)

घनश्याम अपने वंश के सन्दर्भ में लिखते है कि - भार्गवगोत्रोत्पन्न चौण्डबालाजि उनके पितामह है, और पिताजी महादेव है। एवमेव कौण्डिन्यगोत्रद्भव श्री तिम्माजि बालाजि उनके मातामह है। घनश्याम के मातृवंश और पितृवंश के बारे में जानने के बाद यह भी जानना जरुरी है कि घन. की क्या सन्तति थी ? तो घन. को दो पुत्र थे : एक चन्द्रशेखर और दूसरा गोवर्धन। चन्द्रशेखर ने अपने पिता के "डमरुक" नामक प्रहसन पर एक व्याख्या लिखी थी। और दूसरे पुत्र गोवर्धन जो कि अन्ध था, उसेन "घटकर्पर काव्य" पर टिका लिखी थी। श्री जे. बी. चौधरीजी अनुमान करते है कि - यदि घनश्याम का यह पुत्र गोवर्धन "वेदान्त-चिन्तामणि" के कर्ता गोवर्धन से अभिन्न है तो, हमें मानना चाहिए की घनश्याम एवं उनका कुल वैष्णव सम्प्रदाय के स्थापक वल्लभाचार्य के प्रशंसक थे।[७] साथ में यह भी देखा जाता है कि स्वयं घनश्याम तो पञ्चायतन देवता का पूजन-अर्चन करते होगें। क्योंकि वह अपने "डमरुक" - प्रहसन के प्रारंभ में एवं "नीलकण्ठ विजयचम्पू" में "शिव" की स्तुति करते है, और प्रबोधचन्द्रोदय सञ्जीवनी - टीका में दुर्गा-देवी और सरस्वती-देवी की वन्दना करते है, तथा "भारतचम्पू सञ्जीवनी" और "धातुकोश" में श्रीगणेश स्तवन भी प्रस्तुत करते है। इसी तरह से परमात्मा, अपने अग्रज भ्राता चिदम्बर, श्रीकृष्ण, केशव, नारायण इत्यादि देव-देवीओं को भी वह प्रणाम करते है। घन. ने अपने "नवग्रहचरित" में नव ग्रहों की भी स्तुति की है, और वह अद्वैत-वाद से भी आकृष्ट हुए थे ऐसा लगता है।

७. द्रष्टव्यः पाद टीप-३

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



## घनश्याम की कृतियाँ

सरस्वती घनश्यामो घनश्यामः सरस्वती ।

घनश्याम ने संस्कृत - एवं प्राकृत में भी काव्य साहित्य का सर्जन किया है और व्याख्यान साहित्य भी लिखा है। विशेष में महाराष्ट्री इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं में साहित्यरचना की है। वह "नीलकण्ठचम्पू" में लिखते हैं कि उन्होंने ६४ ग्रन्थों का संस्कृत में प्रणयन किया है, २० ग्रन्थों का प्राकृतभाषा में और २५ कृतियों का प्रान्तीय भाषाओं में ग्रथन किया है। इनमें से अनेक कृतियाँ का नामोल्लेख स्वयं घनश्याम ने किया है, और उनकी पत्नीयाँ, सुन्दरी एवं कमला ने भी "चमत्कारतरङ्गणी" - टीका में अपने नाथचरण श्री घनश्याम की कृतियाँ का अनेक स्थानों पर नाम निर्देश किया है। और विद्धशाल. के उपर "चमत्कारतरङ्गिणी" टीका लिखते हुए प्रारंभ में वह दोनों अपने स्वामी कवि घनश्याम की कृतियाँ का परिचय इस प्रकार देते हैं :-

रामस्य त्रिगुणागुणस्य सुखदारामस्य दुर्वादलश्यामस्य प्रथते
शिशोः पतिघनश्यामस्य वाणीभरः ॥ ४ ॥
गणेशचरितं भाणः षडाननचरित्रकम् ।
युद्धकाण्डः सटीकश्च नवग्रहचरित्रकम् ॥ ५ ॥
सट्टकं सहटीकं च वेंकटेशचरित्रकम् ।
संस्कृता प्राकृताभाषा मञ्जरी कलिदूषणम् ॥ ६ ॥
सव्याख्यानं डमरुकं काव्ये प्राकृतसंस्कृते ।
प्रसंग लीलार्णववत् काव्यं षण्मणि-मण्डनम् ॥ ७ ॥
एषां व्याख्याः प्रहसनं कुमार-विजयं डिमः ।
व्यायोगोऽन्यापदेशानां सहस्रं राज-रंजनम् ॥ ८ ॥
जाति-संतर्जनं वर्ण-माला शाब्दिक-मोदनम् ।
त्रिमठी-नाटकान्यंबा-विजयं द्वैत-भंजनम् ॥ ९ ॥
दोषाकरः कु-कवि-सन्तापनं च गुणाकरः ।
सालभञ्ज्या भुवि प्राण-प्रतिष्ठाऽन्यैः सुदुष्करा ॥ १० ॥
सम-प्राकृत-काव्यार्या-बंधः श्लेषाषार्थ-चित्र-भाक् ।
अबोधाकरवद्भागवत - चम्पूश्च टीकया ॥ ११ ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



नल-चंपूर्हरिश्चन्द्र-चम्पूरर्थ-त्रयात्मकः ।
भगवत्पाद-चरितं धातु-कोशो रसार्णवः ॥ १२ ॥
अद्वैत-बोधोऽनुभव-चिन्तामण्याख्य-नाटिका ।
शाकुन्तलस्योत्तर-राम-चरित्रस्य टिप्पणम् ॥ १३ ॥
प्रबोध - चन्द्रोदयवद् - भोज - भारत - चंपुवत् ।
कादंबरी विक्रमोर्वशीययोर्वेणि - संहृतेः ॥ १४ ॥
प्राकृतायाः सप्तशत्याः कवि-राक्षस-पद्धतेः ।
स्व-पूरित-महावीर-चण्ड-कौशिकयोरपि ॥ १५ ॥
व्याख्या वासवदत्तायाः स्थल-माहात्म्य-पंचकम् ।
नाना-भाषास्वष्टपदी-पदादीनां तु नो मितिः ॥ १६ ॥
इत्यादयः कृता येन कृतयः परिदुर्घटाः ।
क्रियन्ते च करिष्यन्ते तेन गो-ब्रह्मणाशिषा ॥ १७ ॥
आत्मासौ शिवयोश्चिदंबर-महायोगीन्द्र-शाकंभरी-
-भ्राता स्त्री-द्वय-सुन्दरी-कमलजः काशी-महादेवजः ।
तुक्कोजि-क्षिति-वासवस्य सचिवः श्रीमान् कवीनां कविः ।
पुंभावैक-सरस्वती भुवि घनश्यामो विजेजीयते ॥ १८ ॥

यद्यपि उपर्युक्त ६४ संख्यावाली सभी कृतियाँ में से कुछ कृति कालग्रस्त भी हो गई है। याने घनश्याम की सभी कृतियाँ तो आज उपलब्ध नहीं होती है।

किन्तु घनश्याम द्वारा रची गई कृतियाँ का एक सर्वेक्षण श्री जे. बी. चौधरी ने इस तरह दिया है :

**क. रूपक साहित्य**

**१. नाटक**

१. नवग्रहचरितम्। इस नाटक में तीन प्रपञ्च है, और सूर्य, चन्द्र, राहु, गुरु आदि नवग्रह सम्बन्धी कथा का ग्रथन है।

२. त्रिमठी - नाटक

३. कुमारविजय (पांच अङ्कः)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. प्रचण्डराहूदय

२. सट्टक :-

१. वैकुण्ठचरितम् (सटीकम्)

२. आनन्दसुन्दरी सट्टकम् - इसमें आनन्दसुन्दरी नामकी एक नायिका का विवाह वर्णित है।

३. बिना शीर्षकवाला एक और सट्टक भी चमत्कारतरङ्गिणी के प्रास्ताविक-श्लोक में निर्दिष्ट है।

३. भाण - १. शीर्षक अज्ञात है

४. प्रहसन - १. डमरुकम् (सटीकम्)

२. चण्डानुरञ्जनम्[८] (इस कृति में घनश्याम की अन्य रचनाओं का नामनिर्देश मिलता है। जैसे कि - "अन्यापदेश शतकम्", "षड्भाषाकाव्यम्" और कुछ अन्य। यथा - "पटु षड्भाषाकाव्यं नाटकभाणौ च सट्टकं चम्पूः अन्यापदेशशतकं रचितं येनाशुखेलेन।

३. शीर्षक के बिना ही एक और प्रहसन का उल्लेख मिलता है।

५. डिम - नामनिर्देश नहीं मिलता है।

६. व्यायोग - नामनिर्देश नहीं मिलता है।

७. नाटिका - अनुभव चिन्तामणि

ख. (पद्य) काव्यरचनायें।

१. प्राकृत काव्य

२. संस्कृत काव्य

३. आर्याबन्धकाव्य

४. अष्टपदी-पदों (प्रान्तीय भाषाओं में)

५. भारतीविजयकाव्य

(जिस में १८ चित्रकाव्य संग्रहीत हैं।)

६. प्रसङ्गलीलार्णव

७. षण्मणिमण्डन

---

८. India Office Library : MS. No. 7400, एवं Tanjore MSS. Library Ms. No. 4629

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ग. साहित्यसंग्रह

१. अन्यापदेश - सहस्रम्

२. अन्यापदेश शतकम्

३. शब्दरञ्जन

घ. चम्पूकाव्य

१. रामायण चम्पू

(केवल "युद्धकाण्ड" मिलता है ।)

२. भागवत चम्पू

३. नल चम्पू

४. हरिश्चन्द्रचम्पू

(ङ) व्याकरणविषयक ग्रन्थ

१. संस्कृतभाषामञ्जरी

२. प्राकृतभाषामञ्जरी

३. शाब्दिकमण्डनम्

४. धातुकोशः

(च) अलंकारशास्त्र

१. रसार्णव

(छ) तत्त्वज्ञान विषयक

१. द्वैतभञ्जनम् एवं. २. अद्वैतबोध

(ज.) स्थल माहात्म्य

१-५ कुल पाँच लिखे थे, जिनके नाम आज नहीं मिलते हैं ।

(झ) जीवन वृत्तान्त

१. भगवत्पादचरितम्

(ञ) टीका-टिप्पण ग्रन्थों

१. गद्य ग्रन्थ पर -

१. दशकुमार चरित टिप्पण

२. वासवदत्ता-व्याख्या

३. कादम्बरी व्याख्या

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. पद्य काव्य पर :-

१. गाथासप्तशती व्याख्या

२. राक्षस पद्धति व्याख्या

३-६ प्राकृत काव्य, संस्कृत काव्य, प्रसङ्गलीला पर्व एवं सन्मति मण्डनम्

३. रूपक पर

१. विद्धसालभञ्जिका व्याख्या - "प्राणप्रतिष्ठा"

२. प्रबोध चन्द्रोदय-व्याख्या

३. अभि. शाकु. सञ्जीवन

४. उत्तररामचरित-सञ्जीवन

५. विक्रमोर्वशीय व्याख्या

६. वेणीसंहार व्याख्या

७. महावीरचरित व्याख्या

८. चण्डकौशिक व्याख्या

९. प्रचण्डराहूदय दीपिका

४. चम्पूकाव्य पर

१. भोजचम्पू व्याख्या

२. भारतचम्पू व्याख्या

३. नीलकण्ठविजयचम्पूव्याख्या

४. भागवतचम्पू व्याख्या

ट. प्रकीर्ण रचनाएं

१. गणेशचरितम्

२. कलि दूषणम्

३. जातिसन्तर्जन

४. वर्णमाला

५. अम्बाविजय

६. दोषकर

७. कुकविसन्तापन

८. गुणाकार

९. अबोधाकर

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



यह उल्लेखनीय है कि घनश्याम कृत "डमरुक" प्रहसन का दूसरा अङ्क ही "कलिदूषणम्" है, "कुकविसन्तापन" चौथा अङ्क है, "अबोधाकर" पाँचवा अङ्क है और आठवाँ जो अङ्क है वह "जातिसन्तर्जन" है। तथापि विद्धशालभञ्जिका की चमत्कारतरङ्गिणी टीका में सुन्दरी और कमला उपर्युक्त कृतिओं को स्वतन्त्र कृतियाँ कहती है।

श्री जे. बी. चौधरी लिखते है कि उन्होंने "India Office Library Catalogue" के ९०४ पृष्ठांक पर घनश्याम भट्ट के नाम के नीचे "मधुराष्टक विवृत्ति टिप्पण" नामक एक कृति का भी संनिवेश किया है। यद्यपि घनश्याम तो कैवलाद्वैत, मतावलम्बी है। उनकी "प्रबोधचन्द्रोदय" की सञ्जीवनी टीका में प्रथमाङ्क की पुष्पिका में वह लिखते है कि भगवत्पादप्रतिष्ठापिताद्वैतसुधा - समुद्राटन - महापाठीनेन - इससे उपर्युक्त बात का समर्थन होता है। फिर भी यह संभव है कि घनश्याम को वेदान्त के शुद्धाद्वैतवाद में भी रुचि रही हो। परिणाम स्वरूप घनश्याम का "भागवत-पुराण" और प्रचलित भागवतपुराण भी घनश्याम-कृत माना जा सकता है। दुर्भाग्यवश श्री चौधरीजी को विवृत्ति टिप्पण या "भागवतपुराण" उपलब्ध नहीं हुआ है। अत: इस विषय में कुछ आगे अनुसन्धान करना संभवित नहीं है। किन्तु इस "भागवतपुराण" को छोड कर, अन्य कृतियाँ जो उपरि भाग में निर्दिष्ट है वह नि:संदेह रूप से घनश्याम की रचनाएँ हैं।[९]

घनश्याम ने उक्त साहित्यरचनाएँ के साथ साथ ४ हजार गीत एवं अन्य साहित्य का भी तर्जन किया था। इस से प्रतीत होता है कि घन. ने अपने जीवन की प्रत्येक क्षण साहित्यसर्जन में ही व्यतीत की थी। इस घनश्यामकृत विपुल साहित्य राशि में से आज अल्प मात्रा में कुछ कृतियाँ उपलब्ध हुई है।

---

9. At page - 904 of the India Office Library Catalogue, I put under the name of Ghanaśyāma Bhaṭṭa Madhurāṣṭaka - Vivṛti - ṭippaṇi as well. The Gh. was eminetly adherent of the Advaitya school as his works on philosophy mentioned above show and as is also clear from his own statement.in the śuddhādvaita school as well...

"भगवत्पादप्रतिष्ठापिताद्वैतसुधासमुद्राटन - महीपाठीनेन' in the colophon to the first of the प्रबोधचन्द्रोदय सञ्जीवनी it is not unlikely that he got interested. in the śuddhādvaita school as well...

But the authorship of the other works mentioned above is undisputable. - SANSKRIT POET GHANAŚYĀMA, p. 244.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



## साहित्यसर्जक - घनश्याम

घनश्याम ने जो साहित्यसर्जन किया है, और उनमें से जो अंश आज उपलब्ध होता है उनमें से "धातुकोश"[१०] नामक कृति प्रारम्भकाल में लिखी होगी । क्योंकि उनके प्रास्ताविक श्लोकों में, वह अपना परिचय एक नवोदित कलिका के रूप में परिचय दे रहे हैं।[११] "रामायणचम्पू" काव्य की, रचना करते हुए घन. अपने को "बालक" एवं अष्टादशवर्षीय कह रहे है।[१२]

देव सुब्रह्मण्य की कथा को लेकर बीस बर्ष की आयु में "कुमारविजय" नाटक की रचना की थी।[१३] "अन्यापदेश-शतक" नामक कृति घनश्याम की चतुर्थ कृति है।[१४] और उनकी एक एक पाण्डुलिपि आज तांजोर सरफोजी महाराजा संस्कृत मेन्युस्क्रीप्ट लाईब्रेरी में विद्यमान है ऐसा श्री चौधरी जी बताते है। इसी तरह से "डमरुक" नामक प्रहसन के अन्त में घनश्याम लिखते है कि वह कृति उनकी आठवीं कृति है।[१५] यह प्रहसन की रचना २२ वर्ष की आयु में की गई थी। "घनश्याम की दशमी कृति" संस्कृत-भाषा-मञ्जरी है।[१६] इस कृति में भी कवि घन. ने अपनी पुरोगामिनी कृतियाँ जैसी कि -

सन्मणिमण्डन, कुमारविजय-नाटक, मदनक्तजीवनभाण, आनन्दसुन्दरी-सट्टक एवं डमरुक-प्रहसन का निर्देश है।

घन. की जो अष्टम कृति प्रतीत होती है उस "डमरुक" में "सरस्वती घनश्यामो" ऐसा कहकर अपने को देवी सरस्वती से अभिन्न बताते है। और दशमी कृति संस्कृतभाषामञ्जरी में अपने को "कण्ठीरघनश्याम कविना". कहते हैं। एक और स्थान पर, घनश्याम अपने को "आर्यक" कहते है।

---

10. Tanjore MSS, Library,
MS. No. 5703

११. तेषां ता कलिका एव...(श्लो. ८)

१२. चौण्डाबालाजिपौत्रो पतिवर-दयया बालकोऽपि प्रथीरः । ...और ....तेनाष्टदशवत्सरेण कविना। (द्रष्टव्या MS. No. 4143-45, Tanjore MSS. Library.)

१३. पौत्रोऽयं विभुरब्दविंशतिमितः चौण्डाजिपन्तः कविः ॥ (द्रष्टव्य MS No. 4344-Tanjore-MSS. Library)

१४. आख्यातप्रतिवस्तुपद्यकुला सेयं चतुर्ग्रन्थवतः । (द्रष्टव्यः MS No. 3889, Tanjore - MSS Library).

१५. श्रीचाय्य...महाकविरसावष्ट. प्रबन्धीश्वरः ।

१६. चिरं जयतु सत्कविर्भुवि दशप्रबन्धीकरः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



जैसे कि – डमरुक प्रहसन कि पुष्पिका में वह लिखते हैं :– सुरनीर – पण्डितघनश्याम नामक आर्य को... । "नवग्रहचरित" नामक नाटक उनकी ३३वीं कृति दिखाई पडती है । आनन्दसुन्दरी सट्टक भी कवि घनश्याम की आरंभिक समय की कृति लगती है । क्योंकि उनमें अन्य कोई स्वविरचित कृति का नामोल्लेख नहीं है । रूपकों पर घनश्याम ने जो टीकाटिप्पण लिखें है, उनमें से भारतचम्पूसञ्जीवनी का रचना क्रम त्रेपन का है । राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका" के उपर घनश्याम ने जो "प्राणप्रतिष्ठा" नामक टीका लिखी है, उनमें वह आत्मप्रशंसा करते हुए बताते हे कि उन्होंने ५३ कृतिआँ की रचना कर ली है । तब तक यहाँ पर प्रथमाङ्क की पुष्पिका में घन. लिखते हैं कि – इति महाराज–पद–महनीय–तुक्कोजि–राज–महामात्येन काशी–महादेव–तनुजेन शाकम्भरी–परमहंस–चिदम्बर–ब्रह्म–योगि–राजानुजेन त्रयाधिक–पञ्चाशत्–प्रबन्धीकरेण पद–सहस्र–देवीताटङ्क–लिपि–कल्पकेन सुन्दरी–कमला–जानिना घनश्यामेन विरचितायां शिवरात्रि–चतुर्थ–यामारब्ध–परिपूतायां विद्धशालभञ्जिका–प्राणप्रतिष्ठा–नाम व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥ (विद्धशाल. पृ. ७५)

इस "प्राणप्रतिष्ठा" टीका की रचना करते समय घनश्याम की आयु ५० साल की होगी। इसी तरह "अभिज्ञान–शाकुन्तल टिप्पण" उसकी ६३वीं रचना है । और "उत्तररामचरितटीका" में वह शाकुन्तल टिप्पण का उल्लेख भी करते है ।[१७] इसी तरह प्रबोधचन्द्रादयसञ्जीवनी टीका उनकी ६४वीं कृति है । क्योंकि घनश्याम "उत्तर टीका" को "६४ कृतियाँ के कर्ता की पुत्री" के रूप में प्रस्तुत करते है । अर्थात् ६४वीं कृति "प्रबन्ध चन्द्रोदयसञ्जीवनी" की रचना के तुरन्त बाद में उत्तर. टीका का प्रणयन किया होगा । इसी सन्दर्भ में श्रीजतीन्द्रबिमल चौधरीजी बताते हैं कि घनश्याम ने जब "नीलकण्ठ चम्पूव्याख्या" की रचना की थी उस समय पर घनश्याम के आश्रयदाता महाराजा तुक्कोजि दिवंगत हो गये थे ।[१८] और यह चम्पूव्याख्या प्रायः घनश्याम की अन्तिम कृतियाँ में से एक थी ।

घनश्याम की कृतियाँ का सर्वेक्षण प्रस्तुत करने के बाद श्री जे. बी. चौधरी लिखते है कि – घनश्याम ने अपने जीवन के आरम्भकाल में सर्जनात्मक काव्यसाहित्य का निर्माण किया था, और जीवन के उत्तरकाल में काव्यनाटक इत्यादि साहित्य पर टीका–टिप्पण लिखे थे ।[१९]

---

१७. अत एव "वयं तत्त्वान्वेषात्" इत्यस्मदव्याख्यातशाकुन्तले । उत्तररामचरितम् । (सं. काणे पी. वी. पृ. ९१)

१८. See : the Article : Sanskrit Poet Ghanaśyāma, p. 297. (by J. B. Chaudhari, in the Indian Historical Quarterly, Vol-9, Sept. 1943-44.)

१९. from the above survey, it is clear that Ghanaśyāma devoted the early part of his life to making original compositions whereas he dedicated the later part of his life to commenting upon the various dramas and kāvyas - ebid. p. 247.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



कवि, घनश्याम ने यह जो विपुल प्रमाण में साहित्यसर्जन किया है वह उनके लिए के द्वादश-श्लोक में लिखा है कि - एक लीला ही थी, यानें यह कोई सायास रचनाएँ नहीं थी। "चण्डानुरञ्जन"[२०] नामक प्रहसन में घनश्याम लिखते है कि - षड्भाषा काव्यादि की रचना उनके लिए एक खेल मात्र है। जैसे कि -

पटु षड्भाषाकाव्यं नाटकभाणौ च सट्टकं चम्पूं ।
अन्यापदेश - शतकं रचितं येनाशु खेलेन ॥

इसी प्रकार "संस्कृतभाषामञ्जरी" में भी लिखते है कि-

पटु षड्भाषाकाव्यं नाटकभाणौ च सट्टकं चम्पूं ।
अन्यापदेशशतकं प्रहसनमपि येन लीलया ग्रन्थितम् ॥

और वहाँ पर स्वयं अपनी काव्यप्रशंसा करते हुए लिखते है कि -

कलशम्भोधि-कल्लोल-गर्व-सर्वस्व हारिणी ।
घनश्यामकवेर्वाणी कस्य नानन्ददायिनी ॥

सुन्दरी एवं कमला अपने पति कवि श्रीघनश्याम को "कविओं के कवि" एवं "पुरुषविग्रह में रही हुई सरस्वती" ही मानती थी। जैसा वह दोनों चमत्कारतरङ्गिणी के प्रस्ताविक श्लोक - १८ में लिखती हैं कि -

तुक्कोजि-क्षिति-वासवस्य सचिवः श्रीमान् कवीनां कविः ।
पुंभावैकसरस्वती भुवि घनश्यामो विजेजीयते ॥

घनश्याम अपने "नवग्रहचरित" नामक नाटक में यह भी सगर्व कहते हैं कि जो नवीन कथावस्तु अन्य कवियों को दुर्लभ है ऐसी कुतुहलकर नवीन वस्तु जो कि कल्पनातीत है और केवल अनुभव से ही संवेद्य है ऐसी वस्तु ग्रथित करने की इच्छा से यह कृति रची गई हैं :-

यदन्यकविदुर्लभं यदपि संविधानोद्भुतं
कुतूहलकरं जगत्यनुभवैकवेद्यं च यत् ।
तदस्मदतिवित्मयावहमनेकवस्तूज्जवलं
नवं किमपि चिन्त्यमिति नवग्रहाणां मनः ॥

कवि घनश्याम ने जो विपुल काव्यादि साहित्य का सर्जन किया है उसके सन्दर्भ में कमला-सुन्दरी का एक अवलोकन अत्र उल्लेखनीय है। राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका के द्वादश श्लोक में लिखा है कि -

---

२०. द्रष्टव्यः India office Library, MS No. 7400

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



....वाचालत्वं ददानः कवयितृषु गुणं प्रातिभं सन्दधानः ।

प्रातस्त्यत्तूर्यनादः स्थगयति गगनं मांसलः पांसु-तलपाद...।

इस श्लोक के "गुणं" शव्द की चमत्कारतरङ्गिणी व्याख्या में बताया है कि -

गुणं कवनस्फुर्तिगुणम् । एतेन त्रिग्रन्थीकारस्य[२१] राजशेखरस्य प्रातरेव कवनस्फुर्तिरिति स्पष्टम् । पञ्चषष्टिप्रबन्धीकरणधुरंधराणामस्मत्सनाथानां नाथचरणानां तु घटिकानां षष्टिरपि निबन्धाम् निर्मातुम् नालमित्यनितरसाधारणोऽयं विशेषो वत्सर-शताय वत्सलद्भिरसूयारसिकैरनुग्राह्यः ॥ (विद्धशाल. पृ. २३)

अर्थात् राजशेखर ने तो तीन ग्रन्थों की ही रचना की है, और उनको केवल प्रातःकाल में ही काव्यस्फुरण होता था, लेकिन नाथचरण को तो काव्यनिबन्धन के लिए प्रतिदिन का षष्टघटिका समय भी पर्याप्त नहीं था । यानें कि घनश्याम को दिवस एवं रात में भी काव्यस्फुरण हुआ करता था ।

यहाँ पर घनश्याम का एक और वैशिष्ट्य भी उल्लेखनीय है । जैसे कि घनश्याम कि काव्यनिर्माण - या टीका - टिप्पण लिखने की प्रवृत्ति अत्यंत वेगवती एवं सातत्यपूर्ण थी। इसी लिए तो वह एकादशी की तिथि या आन्य कोई धार्मिक तिथि-विशेष की रात्रि में जागरणप्रसङ्ग के समय कोई कृतिविशेष का लेखन कार्य शुरु करके उसी रात्रि में ही परिपूर्ण भी कर लेते थे। जैसे विद्धशाल. प्रथमाङ्क की "प्राणप्रतिष्ठा" टीका की पुष्पिका में घनश्याम लिखते हैं कि -

इति महाराज-पद-महनीय-तुक्कोजि-राज-महामात्येन, काशी-महादेव-तनुजेन, शाकम्भरी परमहंस-चिदम्बर-ब्रह्म-योगि" राजनुजेन त्र्यधिक-पञ्चाशत्-प्रबन्धीकरेण, पद-सहस्र देवी-ताटङ्क-लिपि-कल्पकेन-सुन्दरी-कमला-जानिना, घनश्यामेन, विरचितायां, शिवरात्री-चतुर्थ-यामारब्धपरिपूरितायां, विद्धशालभञ्जिकाप्राणप्रतिष्ठानामव्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः ॥ (विद्धशाल. पृ.७५)

इसी तरह, प्रस्तुत "अभिज्ञान शाकुन्तल की सञ्जीवन टिप्पण" (में प्रथमाङ्क की पुष्पिका) में भी लिखा है कि -

...सज्जनाभिनन्द्येन सुन्दरीकमलाजानिना वश्यवचः सर्वज्ञ - सरस्वती-नामत्रयमण्डितेन घनश्यामपण्डितेन भीष्मैकादशीनिशीथजागरण एवारब्धपरिपूरिते शाकुन्तलसञ्जीवनाख्य-टिप्पणे प्रथमोऽङ्कः ॥

तथा "उत्तररामचरित" के टिप्पण में प्रथमाङ्क की पुष्पिका में लिखा है कि -

---

२१. इस सन्दर्भ में श्री जे. ली. चौधरीजीने आगे एक चर्चा प्रस्तुत की गई है । (द्रष्टव्य :- पृष्ठ २४९) वह चिन्त्य है । राजशेखर ने कुल मिला के छ कृतियाँ रची थी ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



इति महाराजपदमहनीयतुक्कोजिराजगृहामात्येन, भार्गवकुलाकूपार-चन्द्रचौण्डीबाळोजिपौत्रेण, कौण्डिन्यगोत्रपारावारनिस्तुलकौस्तुभतिम्माजिबाळाजिदौहित्रेण, काशीमहादेवतनूजेन शाकम्भरीपरमहंसचिदम्बर-ब्रह्मानुजेन नवरसभुवातिशायिचतुरचतुरधिकषष्टि प्रबन्धि दशभाषाभव्य-काव्याष्टपदी पदपद्यवर्णविलसदन्यूनाक्षरमालिकार्यस्तवनकवनघौरन्धरीपारीणेन, गीतगाथासहस्रचतुष्टय दिव्यदेवीताटङ्कलिपिकल्पकेन दुर्जनातिनिन्द्येन, सज्जनाभिनन्द्येन सुन्दरीकमलाजानिना वश्यवचः सर्वज्ञसरस्वतीनामत्रयमण्डितेन रामनवमीनिशीथजागरण एवारब्धपरिपूरिते उत्तररामचरितसंजीवनाख्य टिपण्णे प्रथमोऽङ्कः समासः । (उत्तर. संपा. काणे पी. वी. पृ. ३१)

यद्यपि, घनश्याम अपने लिए "वश्यवचः" "सर्वज्ञ" एवं "सरस्वती" जैसे उपनाम का अनेकस्थान पर प्रयोग करते है, फिर भी यह बताना भी आवश्यक है कि घनश्याम पण्डित को समयानुक्रम का कोई ज्ञान नहीं था, और वह कुत्रचित् वास्तविकता से विरुद्ध भी लिख देते है। जैसे कि – वह "अभि. शाकु. की सञ्जीवन टिप्पण" में लिखते हैं :- अथ सायण-मायणादिपुरातनकविसमानकालिको भाग्यनिमित्तवशात् कामुकराजकन्योपदेशेन श्यामलादेवी-लिखितबीजाक्षरसज्ञः कालिदास-कवि...मङ्गमलम् आचरति ।

यहाँ पर महाकवि कालिदास जो कि ईसा की प्रथम शताब्दी या ईसा की पाँचवी शताब्दी में हुए थे उनको १४वीं शताब्दीमें रख देते हैं और मायण एवं उनके पुत्र सायण का समकालिक बना देते हैं ॥ इसी प्रकार से भवभूति को भी कालिदास का समकालिक बताते हुए, घनश्याम लिखते हैं कि भवभूति को भोज का राज्याश्रय मिला था । यथा –

अथ कालिदासादिसमानकालिकः भोजराजाश्रयः श्रीकण्ठनामा, साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः । इति श्लोकनिर्माणवेलागुणवशाद् आनन्दभरितेन राज्ञैव भवभूतिरिति ख्यापितः कविः.... ॥ (उत्तर, संपा. काणे पी. वी. पृ. २), श्री जे. बी. चौधरीजी भी बताते है, कि घनश्याम ने "दशकुमारचरितटिप्पण" (MS. No. 4006, in Tanjore MSS. Library) में भी इसी प्रकार का मत पुनरुक्ति के साथ लिखा है :-

अथ भोजराजसभायां कालिदासभवभूतिप्रमुखवदखिलमानीयो बाण इव कादम्बरीसंज्ञां दशकुमारचरिताख्यां प्रहेलिकां रचयिष्यन् ॥

१७वीं शताब्दी में, भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर भाग में पण्डितराज जगन्नाथ कवि ने जिस तरह से (प्रो. पी. वी. काण महाशय[२२] के मतानुसार) ईसा. की १६२० से १६६० में विपुल संस्कृत साहित्य का सर्जन किया है उसी तरह १८वीं शताब्दी में दक्षिणभारत में कविश्री घनश्यामने भी संस्कृतभाषा में अनेकविधकृतियाँ का सर्जन करके गीर्वाणगिरा का यह साहित्य प्रवाह आधुनिक काल में भी अक्षुण्ण रखा है ।[२३]

---

२२. द्रष्टव्य : Kane, P. V. History of Sanskrit Poetics; p. 312

२३. टीकाकार के रूप में घनश्याम का मूल्यांकन प्रकरण-६ में प्रस्तुत किया जायेगा ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# प्रकरण - ३

## "अभिज्ञान शाकुन्तल सञ्जीवन टिप्पण" की हस्तलिखित प्रतियों का विवरण, वंशवृक्ष एवं सम्पादन पद्धति ॥

New Catalogus Catalogorum (Vol. I, p. 286, University of Madras, 1969 A. D.) में सम्पादकश्री डो. राघवन ने "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटक पर लिखी गई अनेक टीकाएँ का विवरण दिया है । उस में "घनश्याम पण्डित" द्वारा लिखी गई "अभिज्ञानशाकुन्तल सञ्जीवनटिप्पण" की जो विभिन्न हस्तलिखित प्रतियाँ (Manuscripts) विविध स्थानों पर संगृहीत है, उसका विवरण इस प्रकार दिया है :-

1. Adyar Library - II, p. 31a (Act-I)
2. Adyar Library - D. V. (Devanagari) (MS No. 1304-05) (inc.) वास्तव में जो PM. 1019 के रूप में हमें प्राप्त हुई है ।
3. T. D. 4309-11. अर्थात् A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Tanjore Maharaja Serfoji's Sarsvati Mahal Library (Tanjore),[1] [जो कि १९ भाग में प्रकाशित है, उस में तीन हस्तलिखित प्रतियाँ का निर्देश है ।]

★

**प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का विवरण :**

उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि (xerox copy or photo-state copy प्राप्त करने के लिए हमने मद्रास (चेन्नई), तांजोर इत्यादि स्थानों पर पत्राचार किया था । इस पत्राचार के उपरान्त[२] जो चार प्रतियाँ मिल सकी हैं, उसका विवरण नीम्न लिखित है :-

[1]अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास-चेन्नई- से "अभिज्ञानशाकुन्तल" पर घनश्याम पण्डितकृत सञ्जीवनाख्य टिप्पण की एक पेपर-मेन्यूस्क्रीप्ट की झेरोक्ष-कापी हमें प्राप्त हुई है । जिसका विवरण इस प्रकार है :

---

1. HZ. = Reports on Sanskrit Manuscripts in Southerna India, by E. Hultzsuch, 3 volumes, Government Press, Madras, १८९५, १८९६, १९०५ में E. Hultzsch ने जो तीन हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है वह संभवतः यही तांजोर की प्रतियाँ है ।

२. "शाकुन्तलसञ्जीवन टिप्पण" की ग्रन्थलिपि में लिखी गई एक खण्डित प्रति (Adyar Library MS. No. 67514) हमें प्राप्त हुई है । लेकिन ओरिएन्टल इन्स्टीट्यट ओफ बरोडा के ग्रन्थलिपिज्ञ के मतानुसार वह शाकुन्तल की टीका नहीं है ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



इस प्रति में कुल पृष्ठांक ११८ है। प्रत्येक पृष्ठ की इयत्ता ५" x ७" है, और पेपर (कागज) पर देवनागरी लिपि में लिखी गई है। इस हस्तलिखित प्रति अपूर्ण है। उस में अनेक स्थानों पर बडे बडे लुप्तांश दिखाई पडते हैं। तथा अनेक पृष्ठ उलट-पुलट भी हो गये है। उस ११८ पृष्ठों को नीम्नोक्त क्रम से पुनर्व्यवस्थित करना अनिवार्य है। जैसे कि - १ से ३८, इस के बाद ४३ से ६०, फिर कुछ लुप्तांश ६९, ७०, ७१, ७२, कुछ लुप्तांश ६५, ६६, ६७, ६८, कुछ लुप्तांश ७५, ७६, ७७, ७८, ६१, ६२, ६३, ६४, ७३, ७४, कुछ लुप्तांश, ७९ से ८२, ८६, ८५, ८४, ८३, ८७ एवं ८८ से १०२, १०५, १०६, कुछ लुप्तांश, १०७ से ११८, और उसके बाद ३९, ४०, ४१, ४२, १०३ एवं १०४. इस हस्तलिखित प्रति का लेखन समय प्रायः १९०० ईसवीं सन प्रतीत होती है। इस प्रति में लेखक का नाम इत्यादि कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि इस प्रति का अन्तिम भाग खण्डित हो गया है। फिर भी इस हस्तलिखित प्रति का लेखक प्रतिलिपिकरण कार्य में प्रायः सावधान दिखाई पडता है। तथापि भाषाशुद्धि की दृष्टि से वह अल्पज्ञ है। क्योंकि अनेक स्थलों पर नीम्नोक्त शब्दों या संयुक्ताक्षरों को वह अशुद्ध लिखता है। उदाहरण के रूप में :-

★ "स्थ के स्थान पर "स्छ" लिखा करता है। जैसाकि - प्रस्थिता->प्रस्छिता, नाटकस्थापि -> नाटकस्छापि इत्यादि।

★ "च्छ" के स्थान पर केवल "छ" लिखा गया है। जैसा कि गच्छेदानीम् -> गछेदानीम्। गच्छति -> गछति।

★ "ल" के स्थान पर "ळ" लिखा जाता है। जैसा कि - अंगुलिभिः -> अंगुळिभिः

★ "ष्ठ" के स्थान पर "ष्ट" लिखा गया है। जैसा कि - षष्ठी >षष्टी

इस तरह प्रतिलिपिकरण में भाषाशुद्धि नहीं दिखाई पडती। इस प्रति का अन्तिम भाग भी त्रुटित है, अतः पुष्पिकादि अप्राप्त है।

[२] तांजोर महाराजा सरफोजीझ सरस्वती महल लाईब्रेरी (तांजोर) - से अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक पर घनश्याम पण्डितकृत "सञ्जीवन" नामक टिप्पण की एक हस्तलिखित प्रति (MS No. 4309) की एक प्रतिलिपि (मार्च १९८२ में) प्राप्त हुई है।

सरस्वती-महल लाईब्रेरी, तांजोर की जो हस्तलिखित प्रति (MS No. 4309) की प्रतिलिपि मुझे प्राप्त हुई है वह उस समय के श्री एम. ए. राजेश्वर से प्रतिलिपि करवाई गई

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



थी और उस प्रतिलिपि कार्य का पुनःपरीक्षा श्री ए. राजलक्ष्मी ने किया था।[3]

इस (MS. No. 4309) हस्तलिखित प्रति के अन्त मे लिखा है कि -

इति महाराजपद. शाकुन्तल संजीवना- ख्या(ख्य)टिप्पणे सप्तमोऽङ्कः। बहुधान्य नाम संवत्सरे उत्तरायणे माघमासे शुक्लपक्षे तृतीयातिथौ शुक्रवासरे इदं पुस्तकं नारायण द्राविडेन लिखितम् ॥

यह "बहुधान्य" नामक संवत्सर विक्रम संवत १८६४ (माघमास शुक्लपक्ष १ से १५ तिथि) ईसवी सन १८०८ की 28 January गुरुवार से शूरु होकर 11 February गुरुवार तक चलता है। अर्थात् यह ४३०९ हस्तलिखित प्रति का लेखनकाल 29 January १८६४ ईसवी सन शुक्रवार है। और इस लेखक का नाम "नारायण द्राविड" है। यहाँ पर हस्तलिखित प्रति किस स्थल में लिखी गई थी उसका निर्देश नहीं है। किन्तु लेखक का "नारायण द्राविड" ऐसा जो नाम दिया गया है उसमें यह प्रतीत होता है कि संभवतः वह दक्षिण भारत में लिखी गई होगी।

इस प्रति में कुल मिला के ७३ पृष्ठ (folios) है। [इस हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि मुझे प्राप्त हुई है, अतः मूल हस्तलिखित प्रति के पृष्ठ की पंक्ति संख्या या अक्षरसंख्या आदि का विवरण यहाँ नहीं दिया गया है।] यह हस्तप्रत प्रायः पूर्ण रूप में प्राप्य है। फिर भी इस हस्तलिखित प्रति में सप्तमाङ्क के अन्तिम भाग में लुप्तांश दिखाई पडता है। जैसा कि - यथा गजो नेति समक्षरूपे....तथाविधो मे मानसो विकारः ॥ अर्थात् शाकुन्तल अङ्क-७, श्लोक-३१ में जो राजा की उक्ति है, उसके बाद की व्याख्या नहीं मिलती है ॥ इसी तरह से, मुझे जो दुसरी हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है वह भी अपूर्ण है।

---

3. T.M.S.S.M. Library में कुल तीन हस्तलिखित प्रतियाँ विद्यमान है (MSS No. 4309, 4310, 4311) मैंने MS. No. 4310 और 4311 को प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयत्न किये थे। लेकिन उसमें मुजे काफी समय तक सफलता नहीं मिलीं थी। जिसके कारण मैं कुछ मन्दोत्साह भी हुई थी। ११-१०-१९९० के पत्र में वहाँ के डायरेक्टर श्री एम. सदाशिवम् ने लिखा है कि - अद्यतन नियम के अनुसार हम किसी संशोधक को किसी भी हस्तप्रत को पूर्ण रूप में नहीं दे सकते ॥ इस पत्र से प्रायः निराश होने के बाद भी मैंने फिर से एक अन्तिम प्रार्थना-पत्र लिखा। वहाँ के पदाधिकारीयों ने यह प्रार्थनापत्र का स्वीकार करके, १४-१२-१९९० के दिन MS. ४३१० एवं MS. ४३११ की xerox-copies भेज दी। इससे पाठसमीक्षा का मेरा कार्य नवपल्लवित हो गया। मैं T. M. S. S. Library, तांजोर के पदाधिकारियों की आभारी हुँ और हृदय सें कृतज्ञता प्रकट करती हूँ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



फिर भी यह कहना आवश्यक है कि, जो अड्यार लाईब्रेरी, मद्रास से प्राप्त हुई प्रथम हस्तलिखित प्रति है, उसकी अपेक्षा से यह तांजोरवाली MS. 4309 नंबर की प्रति अनेक स्थलों पर अड्यारवाली हस्तलिखित प्रति के लुप्तांशो को पुनर्जीवित करने में सहायकबन सकती है ॥

उपर्युक्त दूसरी हस्तलिखित प्रति के लेखक नारायण-द्रविड ने प्राप्त हस्तलिखित प्रति का जो लेखनकार्य किया है उसकी लेखनशैली का कुछ वैशिष्ट्य इस प्रकार है :-

१. मङ्गलम्, अलीकम्, हला, अंगुलीयकम् आदि शब्दों के "ल" को "ळ" के रूप में लिखा है। जैसा कि - मङ्गळम्, अळीकम्, हळा इत्यादि ॥

२. प्राकृति उक्ति में जहाँ समानाक्षर की द्विरुक्ति होती है, वहाँ लेखक ने वर्तुलाकार चिह्न रखा है। जैसा कि - अज्जउत्त, इयं ह्मि। (आर्यपुत्र इयम् अस्मि।) के लिए "अ० अ० ..."इत्यादि। इसी तरह से -

"णिरोहे विस० जणे इत्यत्र विरोह० मि० विसा० जण० मीति पाठे णयमवार्थः।" तथा - "अत एव गंड० सोवारि अवरो फुडिउ० भेदो" इति राजशेखरः ॥

३. अन्यत्र संयुक्ताक्षर लिखने में अनेकविध दोष दिखाई पडते है। जैसा कि - "समुज्झित्य" के स्थान पर "समुझिझत्य" लिखते है। "महाराष्ट्राः के लिए - महाष्ट्राः, महाराष्ट इत्यादि लिखते है ॥

४. प्रथमाङ्ककी पुष्पिका में ग्रन्थकार घनश्याम पण्डित ने अपना जो विस्तृत परिचय दिया है वह इस प्रकार हैं :-

इति महाराजपदमहनीय तुक्कोजिराजमहामात्येन

मौनभार्गवकुलाकूपारचन्द्रचौण्डौ बाळाजिपौत्रेण

[[कौडि(ण्डि)न्य गौत्रपारावारनिस्तुलकौस्तुं(स्तु) भतिमाजिबाळाजिदौहित्रेण]] काशीमहादेवतनुजेन शाकंभरीपरमहंसचिदंबरब्रह्मानुजेन षष्टिप्रबंधी दशभाषाभव्य काव्याष्टपदीपदपद्यवर्णविलसद्न्यूनाक्षरमालिकार्यास्तव [[न]]कवनधौरंधरीपारिणेन गीतगाथासहस्रचतुष्टय-चतुरदिव्यदेवीनाटंक (?) लिपिकल्पकेन दुर्जनातिनिन्द्येन सज्जनाभिनन्द्येन सुन्दरीकमलाजानिना वश्यवचः-सर्वज्ञ-सरस्वती-नामयत्रयमंडिणे घनश्यापंडितेन भीष्मैकादशीनिशीथजागरण एवारब्धपरिपूरिते शाकुंतलसञ्जीवनाख्यटिप्पणे प्रथमोऽङ्कः ॥

-ऐसी एक लम्बी पुष्पिका, प्रथमाङ्क की समाप्ति पर दिखाई देती है। लेकिन इस हस्तलिखित प्रति की प्रतिलिपि बनानेवाले नारायण द्रविड लेखक ने (अथवा कदाचित् मूल ग्रन्थकार घनश्यामपंडित ने ही ) द्वितीय-तृतीय आदि अङ्को की समाप्ति में इस को संक्षेप से प्रस्तुत किया है। जैसा कि -

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



"इति महाराजपद....श(शा)कुन्तलसञ्जीवनाख्यटिप्पणे द्वितीयोऽकः ॥"

५. इस हस्तलिखित प्रति के लेखक ने प्रायः अनेकस्थलों पर पदों को संहिताजन्य ध्वनिविकारों से मुक्त करके, यानें पदों को पृथक्कृत करके – लिखा है । जैसा कि –

"लंघनात् अतिक्रमात् । बलवती अवस्था यस्याः ।" यहाँ पर "लङ्घनाद् अतिक्रमात् । बलवत्यवस्था यस्याः ।" ऐसा सन्धि करना अनिवार्य था ।

"प्रकर्षेण शिथिले अङ्गकार्श्येनेति भावः । यहाँ पर – "प्रकर्षेण शिथिलेऽङ्गकार्श्येनेति" – ऐसा पूर्वरूपैकादेश सन्धि आवश्यक था ।[४]

[3]तांजोर महाराजा सरफोजीझ सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर (T.M.S.S.M. Library Thanjavur) से एक दुसरी हस्तलिखित प्रति की झेरोक्ष कोपी (१४-१२-१९९० के दिन) प्राप्त हुई है । इस हस्तलिखित प्रति का क्रमांक MS. No. 4310 है । इस हस्तलिखित प्रति के आरम्भ में या अन्त में प्रतिलिपिकरण कर्ता लेखक ने लेखनक़ार्य का स्थलसमयादि, या अपना नाम इत्यादि कुछ लिखा नहीं है ।

यह हस्तलिखिंत प्रति परिपूर्ण रूप में प्राप्त होती है । उस में कुल मिला के ७४ पृष्ठ (folios) है और वह कागज पर लिखी गई है ।

यह एक ही हस्तलिखित प्रति है जिस में ग्रन्थकार द्वारा लिकी गई अन्तिम पुष्पिका सुरक्षित है । जिस में लिखा है :-

इति महाराजपद ०शाकुंतलसंजीवनाख्यटिप्पणे सप्तमोऽङ्कः । सम्पूर्णमिदं घनश्याम पंडितीयं शाकुंतलव्याख्यानं ॥

यह हस्तलिखित प्रति की लेखनशैली का वैशिष्ट्य इस प्रकार है : १. "स्थ" के लिए "स्छ", २. "च्छ" के लिए केवल "छ", लकार के लिए ळकार, और ४. प्रायः सन्धि विनिर्मुक्त पदों का प्रयोग किया है ।

[४.]तांजोर महाराजा सरफोजीझ सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर (T.M.S.S.M. Library, Thanjavur) से एक तीसरी हस्तलिखित प्रति की झेरोक्ष कोपी १४-१२-९० को दि. प्राप्त हुई है । इस हस्तलिखित प्रति का क्रमांक MS. No. 4311 है । यह हस्तलिखित प्रतिमें कुल मिला के ८६ पृष्ठ (folios) होंगे । लेकिन आज उन में से ३६ पृष्ठ (folios) ही मिलते है । यानें की यह हस्तलिखित प्रति अपूर्ण है । उस में दो अंश है । (क) तृतीय अङ्क के आरम्भ से चतुर्थ अङ्क के आरम्भ तक की टिप्पण (पृष्ठ २३, २४, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ और ३२) मिलती है । (ख) दूसरे अंश में – षष्ठाङ्क के "प्रवेशक" से आरम्भ करके सप्तमाङ्क की प्रायः पूर्ति पर्यन्त की टिप्पण (पृष्ठ ५८ से ८६) मिलती है । लेकिन पुष्पिका का भाग उसमें खण्डित हुआ है । अन्तिम पङ्क्ति में – "नीललोहितः परमेश्वरः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहित इति ।" इतना लिखा है ॥

---

४. प्रस्तुत समीक्षित सम्पादन में, दो पदों के मध्य में प्राप्त सन्धिकार्य प्रायः किया गया है।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मूल ग्रन्थकार घनश्याम पण्डित ने अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक पर जो ''सञ्जीवनाख्य टिप्पण'' की रचना की है, उस टिप्पण का स्वहस्तलेख तो आज अनुपलब्ध है क्योंकि वह कालग्रस्त हो गया होगा। लेकिन उस मूल ग्रन्थकार के स्वहस्तलेख की प्रथम प्रतिलिपियाँ होती रही होगी। उन अनेक प्रतिलिपियाँ में से जो चार प्रतिलिपियाँ आज अवशिष्ट रह गई है, और जो मुझे झेरोक्ष कोपी के रूप में प्राप्त हो सकी है - उनके बीच में कीस प्रकार का आनुवंशीक संबंध हो सकता है ? इस विषय में कुछ चर्चा करनी आवश्यक है। अत: सब से पहेले मुझे प्राप्त हुई चारों हस्तलिखित प्रतियाँ के लिए एक संकेत (Abbreviation) निश्चित कर लेते है। जैसे कि -

[१.]अड्यार लाईब्रेरी, मद्रास से जो एक पेपर (कागज) पर लिखी हुई हस्तलिखित (PM No. 1019 प्रति प्राप्त ही है उसके लिए ''ए'' (A) संकेत रखा जाय ॥

[२.]तांजोर महाराजा सरफोजीझ सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर से जो प्रथम हस्तलिखित (MS. No. 4309) प्रति प्राप्त हो सकी है, उसके लिए ''टी-१'' (T-1) ऐसा संकेत निश्चित किया जाय ॥

[३.]तांजोर महाराज सरफोजीझ सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर से जो दुसरी हस्तलिखित (MS No. 4310) प्रति प्राप्त हुई है उसके लिए टी-२ (T-2) ऐसा संकेत निश्चित किया जाय ॥ और -

[४.]तांजोर महाराजा सरफोजीझ सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर से जो तीसरी हस्तलिखित (MS No. 4311) प्रति प्राप्त हुई है उसके लिए ''टी-३'' (T-3) ऐसा संकेत रखा जाय।

[५.] मूल ग्रन्थकार घनश्याम पण्डित के स्वहस्तलेख, जो कि आज कालग्रस्त हो जाने से अप्राप्त है, उसीको 'घ' ऐसा संकेत दिया जाय ॥

[६.] प्रतिलिपीकरण की लम्बी परम्परा में किसी समयबिन्दु पर बनी हुई कोई एक काल्पनिक हस्तलिखित प्रति के लिए ''★क्ष'', ''★ज्ञ'', ''★श'', ''★ष'' - ऐसे संकेत रखे जाय॥

★

अब, यह प्राप्त पूर्वोक्त चारों हस्तलिखित प्रतियाँ ए, टी.-१ टी-२ एवं टी-३ का परस्पर में कोई अन्तर संबंध है या नहीं तथा मूल ग्रन्थकार के स्वहस्तलेख - ''घ'' के साथ उन चारों हस्तलिखित प्रतियाँ का किस प्रकार का आनुवंशिक संबन्ध हो सकता है इसकी चर्चा करनी आवश्यक है :-

(क.) प्राप्त चारों हस्तप्रतों में प्राय: साम्य होने के साथ साथ यदि कुत्रचित् अर्थपूर्ण विभिन्नता भी दिखाई रही हो तो संभव है कि - कोई एक ही समान स्रोत में से पाठ्यग्रन्थ - प्रकृत में शाकुन्तल पर घनश्याम द्वारा लिखी गई ''सञ्जीवन'' नामक टिप्पण - का पाठ संक्रान्त होके ए, टी-१ टी-२ एवं टी-३ जैसी चार हस्तलिखित प्रतियाँ बनी हो। जैसे कि -

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



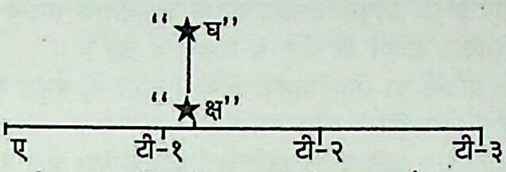


अर्थात् - इस चित्र के अनुसार हो सकता है कि प्राप्त चारों हस्तलिखित प्रतियाँ "समान पूर्वज" वाली भी हो। यहाँ "★क्ष" नामक कोई काल्पनिक, हस्तलिखित प्रति को समान पूर्वज (sub-archetype) कह सकते है॥ यहाँ ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि मूल ग्रन्थकार के स्वहस्तलेख से आरम्भ करके प्रतिलिपीकरण की जो एक लम्बी परम्परा बनी होगी उसमें कोई समयबिन्दु पर तैयार हुई कोई एक "★क्ष" जैसी प्रतिलिपि में से ही अन्य प्रतिलिपियाँ तैयार की गई होगी।

(ख). लेकिन चारों हस्तलिखित प्रतियाँ के पाठ की तुलना करने पर यदि ऐसा प्रतीत हो कि - उन चारों में से कोई दो-दो हस्तलिखित प्रति में पाठान्तरों के विषय में साम्य है, अर्थात् कोई दो हस्तलिखित प्रतियाँ में जैसा अमुक पाठ है वैसा ही पाठ अन्य दो हस्तलिखित प्रतियाँ में नहीं है। वहाँ अन्य दो हस्तलिखित प्रतियाँ में परस्पर में साम्य रखता हुआ कोई अन्य ही पाठान्तर मिलता है तो सम्भव है कि यह चारों हस्तलिखित प्रतियाँ दो स्वतन्त्र परम्परा में प्रचलित हुए पाठ को सुरक्षित रखती हो जैसे कि -

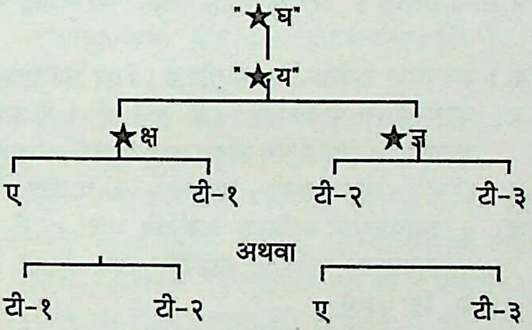


यहाँ ★ "य" प्रतिलिपि की दृष्टि से इन चारों हस्तलिखित प्रतियाँ में "समान वंशजत्व" है ऐसा कह सकते है॥ - क्योंकि यहाँ देखा जाता है कि ग्रन्थकार के स्वहस्तलेख में से प्रवर्तमान हुई प्रतिलिपीकरण की एक लम्बी परम्परा में बनी हुई कोई एक हस्तलिखित - जिस को हम "मूलादर्श" (Ur-Text) पाठ" कह सकते हैं और जिसको हमने ★ "य" ऐसा संकेत दिया है - उस में से ही, कोई एक समयबिन्दु पर अलग हुई दो विभिन्न एवं परस्पर स्वतन्त्र ऐसी परम्परा की प्रतिनिधि रूप यह दो दो हस्तलिखित प्रतियाँ (प्राप्त ए. एवं टी-१, तथा टी-२ एवं टी-३) का युग्म बनाता है। अर्थात् इन दोदो हस्तलिखित प्रतियाँ के दो युग्म को हम "समान वंशज" कह सकते है॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



अब यह गवेषणीय है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के आनुवंशिक संबन्ध में से कौन सा संबन्ध यह चारों हस्तलिखित प्रतियाँ के बीच में दिखाई दे रहा है।

चारों हस्तलिखित प्रतियाँ का संतुलनात्मक अभ्यास करने से, प्रमुख रूप से तीन विशेषताएँ दिखाई पडती है। जैसा कि -

(१.) हस्तलिखित टी-३ प्रति यद्यपि खण्डित स्थिति में प्राप्त होती है। फिर भी जितेन भी अंश में वह प्राप्त होती है उसकी टी-२ के साथ संतुलना करने से ऐसा दिखाई पडता है कि टी-२, एवं टी-३ नामक हस्तलिखित प्रतियाँ में लेखक की प्रमादजन्य अशुद्धियों को छोडकर सार्वत्रिक साम्य है।

यह भी कहना आवश्यक है कि यहाँ एक प्रति अन्य दूसरी प्रति की साक्षात् आदर्शप्रति, यानें जन्मदात्री नहीं है। क्योंकि टी-२ एवं टी-३ के कुछ स्थलों में पूर्ण एकरूपता नहीं मिलती। उदाहरण के लिए "यवनिकेति प्रायः परिचरणविषये यवना जागरूका इत्यनुभवसिद्धम् ॥" - ऐसा पाठ टी-३ एवं "ए" में मिलता है। परन्तु टी-२ में. "जागरूपका" (और टी-१ में "रागरूका") ऐसा पाठान्तर दिखाई पडता है॥ यदि टी-२ एवं टी-३ में सार्वत्रिक सम्पूर्ण साम्य (Ditto - graphy) हो तभी एक को दुसरे की तदंगज/ आदर्शप्रति कही जा सकती है। अन्यथा उन दोनों को केवल समानपूर्वजवाली कहनी चाहिए॥ - (२.) "ए" से संकेतित की गई हस्तलिखित प्रति भी अपूर्ण है,एवं उसके पृष्ठ उलट-पुलट भी हो गये है। फिर भी टी-२ एवं टी-३ के साथ उसकी संतुलना करने से अधिकांश स्थलों में साम्य मिलता है, और कुत्रचित्, पाठान्तर भी दिखाई पडते है। उदाहरण के रूप में -

(क.) एवं त्वया राजकार्याणि **समुझ्झि** (**ज्झि**)**त्य** एतादृशआकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना भवितव्यम्। (टी-२ में, टी-३ में अप्राप्त) - एवं त्वया राजकार्याणि **समुझ्झिय तादृश** आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना भवितव्यम्। ("ए" - में) [द्रष्टव्य : प्रकरण - ४, पादटिप्पणी ४२७, ४२८]

(ख) - राजत्वप्रयुक्ता भयंकरता **नास्तीति** भावः। (टी-२)
-राजत्वप्रयुक्ता भयंकरता **नास्मीति** भावः। (ए.) [द्रष्टव्यः प्रक, ४, पा. टि. ५३७]

(ग.) - स **गान्धर्वो** विवाहो, यो भोगायोभयसंमत इति केदारः। (ए)
- स **गान्धार्वो** विवाहो, यो भोगायोभयसंमत इति केदारः। (टी-१,टी-२, टी-३) [द्रष्टव्य : प्रक. ४, पा. टि. ७२९]

(घ.) -तवासुराः **शख्यां**। (टी-१, टी-२, टी-३)
-तवासुराः **सरव्याः**। (ए.) [द्रष्टव्य पा. टि. १८१४)

(३) चारों हस्तलिखित प्रतियाँ का समग्रतया अभ्यास करने से प्रतीत होता है कि - टी-१ से संकेतित की गई हस्तलिखित प्रति प्रायः कोई विभिन्न परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है। क्योंकि जहाँ पर प्राप्य ऐसे टी-२ एवं टी-३ के पाठ में एकरूपता है, वहीं पर टी-१ में कभी कभी सर्वथा विभिन्न पाठ मिलता है॥ उदाहरण रूप से -

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



क. - तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता ।
(टी-२ एवं ए.) तापसकन्या शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता । (टी-१) [द्रष्टव्यः : प्रक-४, पा. टि. ३९४]

ख. - परिवृतः इत एवागच्छति वयस्यः । (टी-२ एवं ए)
-परिवृत इत एवागच्छन्ति वयस्याः । (टी-१)
[द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ४०३]

ग. - शकुन्तलाया गुरवो मृगा मया पूज्या इति भावः । (टी-२ एवं ए.)
-शकुन्तलाया गुरवो मृगा यया पूज्या इति भावः । (टी-१)
[द्रष्टव्य- प्रक. ४ पा. टि. ४३५]

घ. - अपचितं कृशमपि व्यायतत्वात्, व्यायामवत्त्वात् । (टी-२ एवं ए)
-अपचितं कृशमपि व्यायतत्त्वात्, न्यायमदत्वात् । (टी-१)
[द्रष्टव्यः प्रक. पा. टि. ४४८]

ङ -माक्षिकं च पानमित्यपि कवेर्भावः । (टी. २ एवं ए.) माक्षिकं च पानमित्यपि कवेर्मतिः । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ५०४]

च. भोक्तारं तस्या इति शेषः । (टी-२, ए)
-भोक्तारं तस्या इति दोषः । (टी-१, ए)
[द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ५०५]

छ. -शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिन इति. ।
(टी-२, टी-३ एवं ए.)
-शक्यमञ्जलिभिः तातुं वाताः कैतकगन्धिन इति । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ५८८]

ज. -अनेन कार्श्यातिशयो व्यज्यते । (टी-२, टी-३) (ए. में लुप्तांश है)
-अनेन कार्यातिशयो व्यज्यते । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ६५५]

झ. -पौरव, रक्ष विनयं, मदनसंतप्तापि आत्मने न प्रभवामि । (टी-२, टी-३, ए)
-पौरव रक्ष विनयं, मदनसंतप्ता प्रियात्मने न प्रभवामि । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ७२७]

ञ. -आयासयित्री इदानीं वां भविष्यामि । (टी-२, टी-३, एवं ए.)
-आयासयित्री इदानीं भविष्यामि । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ६२५]

ट. -पुत्रश्चासौ कृतकश्च । (टी-२, एवं ए)
-पुत्र श्चासौ कृतश्च । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ९१७]

ठ. -प्रतीपं प्रातिकूल्यम् । (टी-२, ए.)
-प्रतीपं प्रातिकूलम् । (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. ९५६]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ड. -अभिजातं युक्तं यथा तथा। (टी-२, टी-३ एवं ए.)
-अभिज्ञातं युक्तं यथा तथा। (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. १७०६]

ढ. -पिण्डभाजः पिण्डादाः। (टी-२, टी-३ एवं ए.)
-पिण्डभाजः पिण्डोदरः। (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. १७७५]

ण. -एवमनिर्वाच्यं निर्वृत्तिं सुखम्। प्ररूढः सञ्जातः। (टी-२, टी-३, एवं ए,)
-एवमनिर्वाच्यं निर्वृत्तिं सुखम्। प्रकटः सञ्जातः। (टी-१) [द्रष्टव्यः प्रक. ४, पा. टि. १९६१]

इस त्रिविध निष्कर्षो से ऐसा प्रतीत होता है कि - मूल ग्रन्थकार घनश्याम के स्वहस्तलेख ★ "घ" से आरम्भ करके उनकी कृति (शाकुन्तल सञ्जीवनाख्य टिप्पण) का जो पुनः पुनः प्रतिलिपीकरण हुआ होगा, उसमें कोई समयबिन्दु पर, कोई एक हस्तलिखित प्रति ★ "य" में से दो विभिन्न पाठपरम्परा का आरम्भ हुआ होगा। जैसे कि कल्पना से कहे तो ★ "क्ष" एवं ★ "ज्ञ" इन दो विभिन्न पाठ्यपरम्पराओं में स एक (★ "ज्ञ") परम्परा का प्रतिनिधित्व यह टी-१ नामक हस्तलिखित प्रति कर रही होगी॥ दूसरी और से ★ "क्ष" पाठपरम्परा में जो अनेकबार प्रतिलिपीकरण हुआ होगा, उनमें से कदाचित् ★ "श" एवं ★ "ष" ऐसी अंशतः विभिन्न पाठपरम्परा प्रवर्तित हुई होगी। जिन में से ★ "ष" परम्परा का प्रतिनिधित्व करनेवाली हस्तलिखित प्रति जो है वह है "ए", नामक हस्तलिखित प्रति। और ★ "श" परम्परा का प्रतिनिधित्व करनेवाली अवशिष्ट दो हस्तलिखित प्रतियाँ है :- टी-२ एवं टी-३॥ इस अनुमान को नीम्नोक्त वंशवृक्ष से दिखाया जा सकता है :-

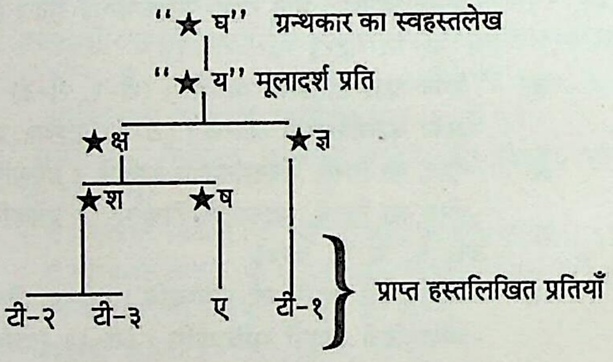


हस्तलिखित प्रति टी-१ का जो पाठ अनेक स्थलों पर विभिन्न पाठान्तर को प्रस्तुत करता है, एवं टी-२ और टी-३ से स्वल्पांश में कुत्रचित् विभिन्न पाठान्तर दर्शनेवाली ए, हस्तलिखित प्रति का परस्पर में उपर्युक्त प्रकार का आनुवंशिक संबन्ध अनुमित करने से प्राप्य चारों हस्तलिखित प्रतियाँ का साम्यवैषम्य अच्छी तरह से सुलझाया जा सकता है॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# समीक्षित सम्पादन

## *( क. ) प्रस्तुत सम्पादन में आदर्शप्रति के रूप में टी -२ का स्वीकार*

प्राप्त चारों हस्तलिखित प्रतियाँ के आधार पर "अभिज्ञान-शाकुन्तल" के "सञ्जीवन" नामक टिप्पण का समीक्षित सम्पादनकार्य करने के लिए सब से पहले चारों हस्तलिखित प्रतियाँ का संतुलनात्मक अभ्यास किया गया है। और उसके बाद टी-२ नामक हस्तलिखित प्रति का प्रस्तुत सम्पादन में "आदर्शप्रति" के रूप में स्वीकार किया गया है।

हस्तलिखित प्रति टी-२ को आदर्शप्रति के रूप में स्थापित करने के प्रमुख पाँच कारणों हैं। जैसे कि -

( १. ) टी-३ नामक हस्तलिखित प्रति खण्डित रूप में प्राप्त होती है। उसमें तृतीय-चतुर्थ अङ्क का एक अंश, और दूसरा षष्ठ-सप्तम अङ्क का अंश मिलता है। अर्थात् यह प्रति अपूर्ण है।

( २. ) ए. नामक हस्तलिखित प्रति भी अपूर्ण है, और उसके अनेक पृष्ठ उलट-पूलट हो गये है। सप्तमाङ्क की पूर्ति का महत्त्वपूर्ण भाग भी उस में से अप्राप्य है। ए. हस्तलिखित प्रति की तरह टी-१ में भी लुप्तांश तो है ही, तथापि टी-१ की अपेक्षा से ए. के लुप्तांश अधिक एवं लम्बे लम्बे गद्यखण्डो (पेरेग्राफ)वालों है। (उससे विपरीत टी-१ के लुप्तांश तो एक या दो वाक्यों तक ही सीमित है)। द्रष्टव्य है : प्रकरण -४ की पादटिप्पणी - १२७, ३२९, ३४९, ३७९, ४०४, ४०७, ५६८, ६१२, ६६२, ७९२ और १०३१.

( ३. ) प्राप्त चारों हस्तलिखित प्रतियाँ में से केवल टी-२ नामक प्रति ही साद्यन्त एवं प्राय: परिशुद्ध रूप में प्राप्त होती ह। उसी की सहायता से ए., टी-१ एवं टी-३ के लुप्तांशों को पुनर्जीवित किया गया है।

( ४ ) यद्यपि ए. नामक हस्तलिखित प्रति की अपेक्षा से टी-१ अधिकांश में पूर्ण कही जा सकती है। फिर भी इस टी-१ में भी सप्तमाङ्क का अन्तिम भाग अनुपलब्ध है। तथा टी-१ नामक हस्तलिखित प्रति में रहे हुए लुप्तांशों को पुनर्जीवित करने में यह ए. एवं टी-२ (यथासंभव टी-३) नामक हस्तलिखित प्रतियाँ काफी सहायक भी बनती है। उदाहरण के रूप में देखें तो

१. कविर्यशसे व्युत्पत्तिकनकनिकषो[[पल]]प्रायं[५] नाटकं शाकुन्तलं नाम चिकीर्षुः। द्र. प्रक. ४, पा. टि. ११५.

२. किं निमित्तं वा सुकुमारेण [[शरीरेण]]तपोवन [गमन]परिश्रमस्यात्मा पात्रतामुपनीतः। द्र. प्रक. ४, पा. टि. २४९

३. इवेत्य ळी (ली) क इति॥ [[वामनः। अनसूये गमिष्यामि तावदहम्। प्रकृतकार्ये विलम्बस इति]]भावः॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. १७४

---

५. इस [[ ]] कोष्टक में दर्शाये हुए शब्द केवल ए. एवं टी-२, और कुत्रचित् टी-३ में ही मिलते हैं।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. वर्ज्याः ते[["मे"]]"व" इत्याद्याः पादादौ छन्दसां बुधैरिति काव्यलक्षणे श्रीनाथः ॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. १९८

५. ......बाळाजिपौत्रेण [[कौडि (ण्डि) न्यगोत्रपारावारनिस्तुल-कौस्तं (तु)भ - तिमाजिबाळाजिदौहित्रेण]]काशीमहादेवतनुजेन...द्र. प्रक. ४ पा. टि. २३०

६. सखि, कस्मै वाऽन्यस्मै कथनीयम् । आयासयित्रीदार्नीं [[दां]] भविष्यामि ॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. ३७१

७. वर्धित एव वर्धितकः स्वार्थे [[ऽल्पार्थे]]वा "क" प्रत्ययः । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ४३१

८. अभिज्ञानेन [[अनेन]]ते संदेहम् अपनेष्यामि । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ६२२

९. जानुक चिरयति खल्वावृत्तः । द्वितीयः [[जानुक इत्यर्थः ननु अवसरोपसर्पणि (णि) या राजानः ।]]जानुक स्फुरतो मे हस्तावस्य....॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. ७४१

१०. आकाशयानं [[विमानम्]]। अत्र सानुमतीप्रवेशासूचनम् .... । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ७७४

११. राजर्बेर् उदं [[तं प्रत्यक्षी]]करिष्यामि ॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. ७७६

१२. मैव [मु]. [[नन्वङ्गुळी (ली) यकमेव]]निदर्शनम् । द्र. प्रक. ४, पा. टि.७९६

१३. अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावना [[मपेक्षे (क्ष) ते । अन्यत्र शकुन्तलायां संक्रान्तं हृदयं यस्य । प्रथमा संभावना]]उपचारो यस्याम् ॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. ९१४

१४. अहम [[त्रभवन्तं]]पश्यामि ॥ द्र. प्रक. ४, पा. टि. ९७०

१५ .....[[नेपथ्य इति]]मा खलु चापलं कुरुष्व । द्र. प्रक. ४, पा. टि. १०४०

१६. ऋषिकुमार इति [[तार्कयामि इति]]भावः । द्र. प्रक. ४, पा. टि. १०९६ - इत्यादि ॥

(५.) टी-२ एवं ए. (तथा कुत्रचित् टी-३) की दुसरी मूल्यवत्ता यह भी दिखाई देती है कि कभी कभी टी-१ हस्तलिखित प्रति के अशुद्ध स्थलों का संशोधन करने के लिए भी टी-२ एवं ए. हस्तलिखित प्रतियाँ से सहायता मिलती है । जिसके कतिपय उदाहरण नीम्नोक्त हैं :-

१. टी-१ में -> यैरेषां पदरेणवः शिरसि सन्त्वत्र बौद्धान्तकद ।
गीताभाष्यसहस्र नामविवृती ये ते प्रमाणं तताम् ॥
टी-२ एवं ए. में ->....बौद्धान्तकृद् । .....सताम् । द्र. प्रक. ४, पा. टि. २५, २६

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. **टी-१ में -> कतमो देशो विरहपत्युत्सुकजनः कृतः ।**
टी-२ एवं ए में -> कतमो वा देशो **विरहपर्युत्सुकजनः** कृतः । (द्र. प्रक.४, पा. टि. १३७, १३८)
कौस्तं(त्तु)भ-तिमाजिबाळाजितदौहित्रेण]]काशीमहादेवतनुजेन..द्र. प्रक. ४,

३. **टी-१ में -> तीव्रस्तीक्ष्णो निदय इति यावत् । ताव्रं भृशं वा ।**
**टी-२ एवं ए में -> तीव्रस्तीक्ष्णो निदग्र इति यावत् । तीव्रं भृशं वा ।**
द्र. प्रक. ४, पा. टि. २१०, २११

४. **टी-१ में -> निदर्शानं दृष्टान्तः । मेदो मांसवृद्धावि इत्यमरमाला । लघु अस्थलम् ।**
टी-२ एवं ए. -> निदर्शनं दृष्टान्तः मेदो मांसवृद्धावित्यमरमाला । लघु अस्थूलम् । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ३००, ३०१, ३०२

५. टी-१ में -> **वर्त्तिकेया** लेखनसाधनीभूततूलिकया करणेन ।
**टी-२ एवं ए. में** -> वर्त्तिकया लेखनसाधनीभूततूलिकया करणेन । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ८२४

६. टी-१ में -> **निरुपंमव्योक्तिता लिखिनु** चतुराननोऽपि नालम्, अहं किणनित्याह यदिति ॥
**टी-२ एवं ए. में** -> अथ निरुपमव्यक्ति तां लिखितुं चतुराननोऽपि नालम्, अहं कियानित्याह-यदिति । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ८२६-८२८

७. **टी-१ में -> भो इदानीं मित्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्तो । सर्वाः दर्शनीयाः ।**
कतमात्र तत्रभवती **शकुन्तलां** ।
**टी-२ एवं ए. में ->** भो इदानीं तिस्रस्तत्रभवत्यो दृश्यन्ते सर्वाः दर्शनीयाः ।
कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला । द्र. प्रक. ४, पा. टि. ८३५, ८३६

इस तरह से टी-१ के कुछ लुप्तांश पुनर्जीवित करने में, या टी-१ के कुछ अशुद्ध पाठों के संशोधन में टी-२, ए. (और यथा संभव टी-३) से काफी सहायता मिलती है । अतः टी-२ को ही, प्रस्तुत सम्पादन में "आदर्शप्रति" बनाई गई है ॥

## ( ख. ) पाठ-सम्पादनविधिः

पाठ्यग्रन्थ - अभिज्ञानशाकुन्तल पर घनश्यामकृत "सञ्जीवनाख्य टिप्पण" का - समीक्षित पाठ नीम्नोक्त विधि-नियम के अनुसार सम्पादित किया गया है :-

१. संतुलानात्मक अभ्यास के बाद प्राप्त चारों हस्तलिखित प्रतियाँ में से, आदर्शप्रति के रूप में टी-२ का पाठ साद्यन्त सुरक्षित एवं प्रायः परिशुद्ध मिलता है, तथा टी - २ का पाठ प्रायः ए. नामक हस्तलिखित प्रति एवं (यथा संभव) टी-३ नामाक हस्तलिखित प्रति के साथ एकरूपता रखता है, अतः उसे मूल में "समीक्षित-पाठ" (Critical-test) के रूप में स्थापित किया गया है ॥

---

५. इस [[ ]]कोष्ठक में दर्शाये हुए शब्द केवल ए. एवं टी-२ और कुत्रचित्र टी-३ प्रतियाँ में ही मिलते है ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



वहाँ पर टी-२ का अशुद्ध पाठ पादटिप्पणी में रखा गया है ।

३. यदि चारों हस्तलिखित प्रतियाँ में अशुद्ध पाठ मिलता है ऐसे स्थान पर टी-२ आदर्श प्रति का अशुद्ध पाठ मूल में रख कर, बाद में -

(क.) संशोधित (emendation) पाठ को (  ) इस तरह के कोष्ठ मे रखा है,

(ख) यदि कोई शब्दादि का संनिवेश (addition) आवश्यक हो तो, उसे [  ] इस तरह के कोष्ठ में रखा है,

(ग.) यदि कोई शब्द या वाक्यांश अस्वीकार्य अथवा पुनरुक्त हो तो, उसकी अस्वीकृति (omission) बताने के लिए { } इस तरह के कोष्ठ में ऐसे शब्दादि को निर्दिष्ट किया है,

(घ.) अशुद्ध, दुर्बोध या पूर्वापर सन्दर्भ में विसंगत पाठ को कोष्ठ में प्रश्नार्थ चिह्न के साथ (?) इस तरह से बताया है ॥

४. टी-१ अथवा ए. इन दोनों में से किसी एक ही हस्तलिखित प्रति में यदि को लुप्तांश मिलता हो, और अन्य दुसरी (टी-२) हस्तलिखित प्रति में वह पाठ लुप्त नहीं हुआ हो, याने अमुक पाठ केवल कोई एक या दो हस्तलिखित प्रति में मिलता हो तो उसको [[ ]] इस तरह के कोष्ठ में निर्दिष्ट किया गया है ।

यदि इस एकाकिनी हस्तलिखित प्रति में सुरक्षित रहा हुआ पाठ भी यदि कुत्रचित् अशुद्ध हो गया हो तो उसके संशोधनादि के लिए भी पूर्वोक्त (  ), [ ], { }(?) इत्यादि प्रकार के कोष्ठों का प्रयोग किया गया है । तदनन्तर वहाँ पर पादटीप में "टी-१ इत्यत्र नोपलभ्यते। "अथवा" ए. इत्यत्र नोपलभ्यते ।" ऐसी सूचना लिखी गई है ।

५. टी-३ नामक हस्तलिखित प्रति के दो त्रुटित अंश मिलते है। उस प्राप्यांश को दिखाने के लिए (तृतीय-चतुर्थ एवं षष्ठ-सप्तम अङ्को की टिप्पण में) <<  >> ऐसे कोष्ठ का प्रयोग किया गया है ।

६. यह संजीवन-टिप्पण की प्राप्य चारों हस्तलिखित प्रतियाँ में दो पदों के मध्य में प्राय: सर्वत्र सन्धिकार्य का अभाव है। यानें दो पदों को मध्यमें सन्धि प्राप्त ध्वनिविकारों - ध्वनिपरिवर्तनादि नहीं किया गया है। लेकिन प्रस्तुत समीक्षित सम्पादन में प्राय: सर्वत्र सन्धिकार्य कर दिया गया है ।

समीक्षित सम्पादनकार्य के इस विधि-नियम का अनुसरण करते हुए प्रकरण ४ में "अभिज्ञान शाकुन्तल" नाटक पर घनश्याम पण्डित द्वारा लिखी गई "सञ्जीवन" नामक टिप्पण का पाठ (Text) सम्पादित करके प्रस्तुत किया गया है ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ श्रीः ॥

# महाकवि-कालिदास-प्रणीतम्

( दाक्षिणात्यपाठानुगम् )

# अभिज्ञानशाकुन्तलम् ॥

तत्र

घनश्यामकृतं सञ्जीवनाख्यस्य

टिप्पणस्य पाण्डुलिपिभ्यः

समुद्धृतं समीक्षात्मकं संस्करणम् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

॥ श्रीः ॥

# अभिज्ञानशाकुन्तलम्

## ॥ प्रथमोऽङ्कः ॥

### अथ घनश्यामकृतम्

### अभिज्ञानशाकुन्तल-सञ्जीवनटिप्पणम्

**श्री गणेशाय नमः ॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥**

**[[ शाकुन्तला( ल ) – व्याख्यान प्रारंभः ]][1]**

नत्वा[2]नागमुखं मुदं कृतमयीं (मिमां) कुर्मः पर[3] स्मै ध्रुवां कीर्तिं कुर्महं आत्मने, मनसि नः का भुक्तिमुक्तयोः कथा ।

निर्वाणाय[4] नटीभवन्नतिकृतामस्माक[5]-मास्ते शिवो नारीभूय म (ज) यन्नलिम्प[6] – रतये नारायणो वा प्रभुः ॥ 1 ॥

किञ्च –

'वाग्देवता जयति याऽनुसरीसरीतिमां दिक्प्रतीतकृतिमेव चरीकरीति । [[स (सं) लापिनी सह मया[7]]]विजरीहरीति [[मामर्भकं]]व (च) कटिसीम्नि दरीधरीति ॥ 2 ॥

अपि च

लोकप्राणदशूलचक्रधरयोर्गौरीरमाकान्तयोः
श्रीभाजोर्गजवर्धनप्रसित [[योः स्कंदाब्जभू]][9]जातयोः ।
गौरागौरपिनाकशार्ङ्गधनुषो रुक्षाहिभुग्या[10]नयो-
र्दिक्कौशेयवसोर्मिळ (ल)त्तनुवृषाकप्योः पदाभ्यां नतः ॥ 3 ॥

अन्यच्च –

आद्यां मत्कृतविद्धसालविवृतिं भुव्यद्वितीयां मुहुर्यो वीक्षेत स एव मूलविदयं टीकासपत्नीं मम । कुर्याच्चेन् मधुवैरि[12]-दक्ष-नयन-ज्येष्ठा(ष्ठ)– त्मजस्यातिथिः । संसृत्या[13] भविताऽशु यत्प्रतिद्यतः[14] सा शूलिनी पातु माम् ॥ 4 ॥

पुनस्समाधाय –

एकस्मिन्नपि सूत्रके न विदिते कुण्यत्मनः[15] साब्दिकाद् दुर्वादावळि(लि) कंठपाठहठतो व्युत्पत्त्यरेस्तार्किकात् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



श्रेष्ट(ष्ठा) दुर्जनर्निंदिता जगति ये प्रामाणिकै[16] रोहिताः ।
शब्दब्रह्मजुषो[17] जयन्ति यशसा तेभ्यः कविभ्यो नमः ॥ 5 ॥

आत्मा यः शिवयो[18] श्चिदम्बर महायोगीन्द्र शाकम्भरी भ्राता, स्त्रीद्वयसुन्दरी[19] कमलजः काशीमहादेवतः ॥[20]

[[गन्त्री चोलमहीभुजोऽति ग[21]]]रिमा तुक्कोजिराजस्य यो ।
नम्रः[22] सततदिवावदीति स घनश्यामः[23] कवीनां [24] कविः ॥ 6 ॥

कृष्णो वेत्ति[25] पदाम्बुजे स भगवान् गोब्राह्मणा[26] वः कि (क्रि ?)यान् मादृक्कानुनतिः प्रदक्षिणयुता काशीमहादेवयोः ।

भक्तिश्चेतसि सुंदरी[27] – कमलयोः का वा न जाने यतः ।
शिष्यो नन्वहमेव भूषु विजये षष्टि[28] प्रबन्धीकरः ॥ 7 ॥
लक्ष्मीशो न विकल्पते तदितरः सर्वोत्तमत्वे हरे ।
गौरीशोऽपि[29] न कल्पते तदितरः सर्वोत्तमत्वे हरौ ॥
यैरेषां पदरेणवः शिरसि नः सन्त्वत्र बौद्धान्तकृद्[30] ।
गीताभाष्यसहस्रनामविवृती ये ते प्रमाणं सताम्[31] ॥ 8 ॥
नव्यग्रन्थनिरीक्षणे बुधजनः सेर्ष्यः प्रसिद्धेतर–[32]
ग्रन्थार्थेष्वलसो[33] गतानुगतिको लोको यतस्तन्मया ।
तोयेऽगाधतरे तरीरिति नयादामंदमापंडितं
बोधे व्याक्रियते स्थले[34] न सुलभे शाकुन्तलं नाटकम् ॥ 9 ॥
वृत्तव्याकृतिलक्ष्यलक्षणकलादक्षैरिदं[35] वीक्ष्यताम् ।
ग्रन्थानामतिविस्तरे विरचिते न स्यादुपादेयता[36] ॥
प्रा ग्रन्थाक्षरपंक्तिलेखनविधावन्यैः समानोऽस्मि
(स्मी) हा (ह), पाठे पाठनलेखयोस्त्रिचतुराः[37] स्युर्वा न वा ॥ 10 ॥
सन्ध्यंगसालंकृतिवृत्तफक्किकारसार्थभावोक्तिसुशब्दधोरणिः[38] ।
पश्यन्तु सन्तोऽनुपमान मत्कृतप्रचण्डराहूदयदीपिकादिषु[39] ॥ 11 ॥

सूर्येण दीप इव शिष्यशिशोस्त्वयेयं व्युत्पन्नता[40]–तमम वागभिनन्दनीया
व्युत्पत्ति[41] – हीनजडलेखकवानं (काभ्यां)[42] नमोऽस्तु, सद्वर्ण[43]पंक्तिपरिदूषणमाचरद्भ्याम् ॥12॥
यो ना(नां) द्यन्ते सूत्रधारा इतीव ब्रूते[44] यो वा नान्द्यन्ते सूत्रधारः ।
सर्गैः काव्यं नाटकं[47] वेत्ति योकैं (योंकै) र्वेदेतं[48] मे ग्रन्थचांपेय[49]–भृंगम् ॥ 13 ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मायां[50]-वारमृगीदृशो धनहरा पाटच्चरीयं[51] पदं जानीतेऽत्रमलिम्लुचो[52] भुजगमो जानाति बैलेशयम्[53] ।

विंते[54] मर्ममहाकविर्वरकवेरातः प्रसादात्सतां व्याकुर्मोऽत्र यथा तदाशयमिमाः शाकुन्तलीया गिरः[56] ॥ 14 ॥

शाखा चंक्रमणैः[57] किमन्यद(द्र) चितै[58] देंव्याः प्रसा[59]दाद्वयं निर्यत्नं नवनीततंतुकृषिवद्भावान्कवेर्ब्रूमहे ॥

किं दतैः कुचमर्दनादिभिरपि[60] द्रव्यैश्चकोरीदृशः स्मारे सुन्दरमन्दिरे सुखरसानन्दो न जातो यदि ॥ 15 ॥

प्रज्ञानान्न[61] कुसारसी मुदि मृषा प्रामाण्यवाक्यावळिः(लिः) पापात्मेव लिखामि वाग्भगवती[62] निर्माति[63] नानाकृतीः ।

तन्मे गाः शृगुत[64] प्रिया भजत भो भुङ्ध्वं[65] न वारांगना मातृस्तन्यरसैर्हि जीवति[66] शिशुः क्षारैर्न खारैर्जलैः ॥ 16 ॥

अन्नं[67] सद्रुचि विद्धसालविवृतिश्चोष्यं च लेह्यं
पुनर्भोजानं तमिराकलेदधिरसोऽयं धातुकोशो नवः ।

षष्ठिग्रन्थकृतः कवेर्मम दशग्रन्थीकृता काळि(लि)दासेनोक्तस्य वचो ध्वनो(नेः) विवरणं ह(है)य्यंगवीनायते ॥ 17 ॥

सन्मान्ये विलसन्महाकृतिचतुःषष्ट्यंगशय्योज्व (ज्जव)[68]ले मुख्ये[69] मत्कविता प्रिये तव कृते स्वं लेखकोष्वर्प्यन्ते[70] ।

प्रेयस्योर्मम[71] सुन्दरीकमलयोः कण्ठद्धये शोभताम् ।
तुंग मंगलसूत्रमण्डनयुगं खे पुष्पवन्ताविव[72] ॥ 18 ॥
अथैतन्नाटकस्थायि[73]-संविधानावबोधने ।
संक्षेपणेन वस्त्वादिनिर्देशः क्रियतेऽधुना ॥ 1 ॥
अष्टमूर्त्यङ्कितो नान्दीश्लोकः सूत्रधारो नटी[74] ।
प्रस्तावनायां तदनु सूतो दुष्यन्तभूपतिः ॥ 2 ॥
वैखानसो[75] द्वौ तच्छिष्यौ[76] मालिनीतीर आश्रमः ।
कण्वस्य काश्यपाख्या[77] च ज्ञेया कुलपतेरिह[78] ॥ 3 ॥
शकुन्तलेति[79] कन्येयं हार्दात्कण्वेन पोषिता ।
शकुन्तलायाः[80] सख्यौ द्वे[81] अनसूयाप्रियंवदा(दे)[82] ॥ 4 ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

राजर्षिः कौशिकस्तात[:] साक्षान्माता तु मेनका ।
अस्यास्तु गौतमी[84] धात्री प्रथमाङ्के माता अमी ॥ 5 ॥
विदूषकस्तु मांडव्यो द्वास्थो[85] रैवतकाभिधः[86] ।
सेनापतिर्भद्रसंज्ञ उभावृषिकुमारकौ ॥ 6 ॥
राज्ञो मातर अर्या८७ स्तत्प्रेष्यः कारभको मतः ।
द्वितीयाङ्के कुशीशिष्यः (?)[89] तृतीयाङ्के तु पूर्ववत् ॥ 7 ॥
नारदो गौतमाश्चोभौ ज्ञेया[90] – वृषिकुमारकौ ।
काश्यपर्षिः शार्ङ्गरवः[91] शिष्योऽस्याङ्के चतुर्थके ॥ 8 ॥
भोगिनी हंसपदिका, देवी वसुमती मता ।
कंचुकी सोमराताख्य उपाध्यायो महीपतेः[92] ॥ 9 ॥
प्रतिहारी[93] वेत्रवती[94] – त्युक्तौ वैताळि[95](लि) [का]वुभौ ।
शारद्वतः काश्यपस्य शिष्यश्चाङ्के तु पञ्चमे ॥ 10 ॥
तिस्रो नागरिकःस्यालो[97] राष्ट्रियश्चेति कीर्त्तिताः ।
संज्ञा मित्रावसोरेव पुरुषः कोऽपि धीवरः ॥ 11 ॥
सूचको जानुकश्चेति रक्षिणौ स्यालसेवका ।
सानुमत्यप्सरः श्रेष्टा (ष्ठा) [98] मेनकायाः सखी मता ॥ 12 ॥
एषा शकुन्तलायां रक्ता, चेट्यौ स्मृते च परभृतिका ।
मधुकरिकेति द्वे, अथ वातायन इति कञ्चुकी कथितः ॥ 13 ॥
अमात्यस्त्वार्यपिशुनो ज्ञेयोऽथ परिचारिका ।
प्रोक्ता चतुरिका, शक्रावतारं[100] तीर्थमत्र [101] यत् ॥ १४ ॥
शची[102] सरस्वती–सोमपष्ठप्सरस्तीर्थादि नाम तत् ।
दुष्यन्तं नेतुमिन्द्रेणाज्ञप्तो मातलिरागतः ॥ 15 ॥
षष्ठेऽङ्के[103] वृद्धशाकल्यः शिष्यो मारीचयोगिनः ।
भरतः सर्वदमनो दौष्यन्ति[104] बाल उच्यते ॥ 16 ॥

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.
Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वभूतप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥ १ ॥

( नान्द्यन्ते )

सूत्रधार :—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये ! यदि नैपथ्यविधानमवसितं तर्हीतस्तावदागम्यताम् ।

( प्रविश्य )

---

तापत्यावस्य धात्र्यौ द्वे मार्कण्डेयाभिधो बटुः[105] ।
संबोधनं भद्रमुखेत्युक्तं भूमिपतिं प्रति ॥ 17 ॥
मरीचिपुत्रो मारीचो दाक्षायण्यदितिस्तथा ।
देवमाताऽथ मारीचशिष्यो[106] गालवसंज्ञकः ॥ 18 ॥
सप्तमाङ्के फलं ग्रन्थे[107] दौष्यन्तेश्चक्रवर्तिता ।
पुनरुक्ति[108] विना सारः कथितो वस्तुसंग्रहः ॥ 19 ॥
व्युत्पन्नैरेव[109] तदिदं संविधानं[110] पुनः पुनः ।
विभाव्य प्रथमं, पश्चान्नाटकं परिशील्यताम् ॥ 20 ॥

अथ सायणमायणादिपुरातनकवि[111] –समानकालिको भाग्यनिमित्त[112]–तशात् कामुकराज[113] – कन्योपदेशेन श्यामलादेवीलिखितबीजाक्षररसज्ञः कालिदास[114]– कविर्यशते व्युत्पत्तिकनकनिकषो (पल)[115]–प्रायं नाटकं शाकुन्तलं नाम चिकीर्षुरविघ्नपरिपुरणाय संप्रदायानुभवसिद्धं चतुर्दशभुवनात्मकश्रीमदीशानसंप्रार्थनारूपं मंगळ(ल)म्[116] आचरति ॥

येति ॥ आद्या सृष्टिरापः, "अप[117] एव ससर्जादाविति" स्मरणात् । या अग्निरूपा तनुरिति[118] शेषः । हविराज्यादिकम्[119] । होत्री यजमानरूपा । होता तु यजमाने स्याद् ऋग्विद्यपि च होमिनीति[120] केदारः । ये द्वे चन्द्रसूर्यात्मिके तनू इत्यर्थः । कालं रात्रीं दिवसं च । विधत्तः कुरुतः । श्रुत्योर्विषयो गोचरः गुणः शब्दो यस्याः[121]सा ।

या[122]व्योम[123]–रूपा । तारापथः शब्दगुण[124] इत्यमरः । विश्वंजगत् । विश्वं जगत्यपीति धरणिः । सर्वमिति कश्चिदाह, तत्र, तस्य विशेष्यसापेक्षत्वात् । यां तनुं भूतानां[125]चराचराणां प्रकृति –धात्री धारिणी वा पृथ्वीत्यर्थः । चराचरेषु भूताः[126] स्युर्देव[127]–योनिभिदासु चेति प्रकृतिर्धारिणी धात्री प्रधानेषूपमातरीति जयरुद्रौ । अत एव भूतधात्रीत्यमरः । आहुर्वदन्ति । यथा वायुरूपया तन्वा प्राणिनो जन्मिनः प्राणवन्तः शक्तिमन्तः । शक्तिः पराक्रमः प्राण इत्यमरः । अत्र नीलं नभ इति प्रतीत्या व्योम्नस्तरुशाखादिचलनेन[129] वायोः प्रत्यक्षत्वमित्यालंकारिकाः । ईशोऽष्टमूर्तिं ॥ नान्दीपदनियमः[130] प्रायिक इति केचित् । "निरङ्कुशाः कवयः" इति बहवः ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**नटी –** अय्य इअं मि । आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिठीअदुत्ति । (आर्य ! इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति ।)

**सूत्रधार :–** आर्ये ! अभिरू पभूयिष्ठा परिषदियम् । कालिदास-ग्रथितवस्तुना नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः । तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः ।

**नटी –** सुविहिदप्पओअदाए अज्जस्स ण किंवि परिहीआद । (सुविहितप्रयोगतया आर्यस्य न किमपि परिहीयते ।

**सूत्रधार :–** आर्ये ! कथयामि ते भूतार्थम् ।

**आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।**

**बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ॥ २ ॥**

**नटी –** अज्ज एवं णेदं । अनन्तरकरणिज्जं दाव अज्जो आणवेदु । (आर्य एवमेतत्। अनन्तरकरणीयं तावदार्य आज्ञापयतु ।)

---

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकमिति[131] लक्षणादाह – आर्ये इति । नैपथ्यं विधानं[132] वेषविधिर् अवसितं ज्ञातं भवत्विति[133] शेषः । अवसितम् अवसानं प्राप्तमिति कश्चिदाह, तन्न। अश्लीलत्वात् । तावदादयो वाक्यालङ्कारे ॥

अ0 अ0 इत्यादि ॥ आर्यपुत्र । इयमस्मि । अ (आ) ज्ञापयतु[134] आर्यः, को नियोगोऽनुष्ठीयताम्।[135] "म्ही"त्यत्र "स्म-स्य म्ह"[136]इति म्हत्वम् । "अ0 जो" इत्यत्र "र्यस्य ज"[137] इति जत्वम् । "नियोग" इत्यत्र "नो णः"[138] इति णत्वम् । "कगचजतदपयवानां प्रायो लोप"[139] इति गलोपः ।

अभिरूपा बुधा, भूयिष्ठा बहुला यस्याम् । वस्त्विति । "वस्तु स्यादितिवृते च प्रतिपाद्ये च नाय (ट)क[140] इति शब्दकोशः । नवेनेति । सायण-मायणादिपुरातनकविप्रणीतानि नाटकान्यपि सन्तीति[141] भावः । पात्राणि "वेषायोगा (?)[142] भाजनवेषेषु पात्रमिति" अगस्त्यः ।

सुविहितप्रयोगतयाऽऽर्यस्य न किमपि परिहीयते। "परिभव0सदि" इति पाठे परिभविष्यति। तिरस्करिष्यतीत्यर्थः । भवन्तमिति शेषः । "परिभावस्तिरस्क्रियेत्यमरः । किमपि संविधानमिति भावः । तथा च सर्वमनुकूलं भविष्यतीति फलितोऽर्थः । [[भूतार्थः ।]][143] भूतार्थं सिद्धप्रयोजनं सिद्धनिष्कर्षं वा ।

भूतं तु त्रिषु सिद्धे स्यादतीते चेति प [[दमाला[144] । भूतार्थाश्च विपद्यंत इत्यादिकविः । "वस्तुनिष्कर्षयोः अर्थ " इति रत्नमाला । अथवा भूतं प्राप्यं, साम्प्रतं योग्यपरिषन्मेलनादिति भावः । अर्थमभिधेयं कथनीयमिति यावदित्यर्थः । प्राप्तं भावितमासादित (तं) च, भूतं चेति। अर्थोऽभिधी (धे) ये (य) [इ]ति चामरः । वस्तुतस्तु भूत उचितः, स चासावर्थः कारणमिति[146] बोध्यम् । भूतं क्ष्मादौ पिशाचादौ जन्तौ क्लिबं त्रिषूचिते । प्राप्ते वृत्ते समे सत्ये, देवयोन्यंतरेऽपिना कुमारेऽपीति । अर्थोऽर्थनाविषययोर्धनकारणवस्तुष्विति चागस्त्यकेदारौ । [[अयमेव कवे र्भावोऽत्र

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**सूत्रधार :** — किमन्यदस्याः श्रुतिप्रसादनतः ।

**नटी** — अज्ज ! कदमं उण उदुं अहिकरिअ गाइस्सं ? (आर्य ! कतमं पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि ?)

**सूत्रधारः** — नन्विममेव नातिचिरप्रवृत्तमुपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमधिकृत्य गीयतां तावत्। संप्रति हि —

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥ ३ ॥

**नटी** — तह । (तथा ।) (इति गायति)

इसि चुम्बिआइ भमरेहिं सुउमारकेसरसिहाइं ।
ओदंसअन्ति पमदाओ दअमाणा सिरिसकुसुमाइं ॥ ४ ॥

---

विशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक् ॥ प्रयोगो]]नाट्याभिनयः, तस्य विज्ञानं शिल्पम् । बलवत् सुष्ठु। "विज्ञनिष्णातशिक्षिता" इत्यमरः । आत्मानि स्वस्मिन् विषये । चेतो हृदयम् । एवमेतत्। ए0 वमित्यत्र "सेवादिषु वेति "[148] द्वित्वम् । अनन्तरकरणीयं तावदार्य आज्ञापयतु ॥ अस्याः परिषदः । श्रुतिस्त्वद्गीतश्रवणमेवैतेषां प्रसाद इत्यर्थः । मनोज्ञे सुभगं त्रिष्विति केशवः ।[149] भगसलिलेति कवेरचातुर्य[150] मिति केचित् । "भगवती भवतीमसूत, राजा प्रजापतिसमो," 'नानाविधवागुदयभा सुरा भूसुरा' इत्यादिदंव मर्षणीयमित्यन्ये ।

वस्तुतस्त नाटके शृंगारवीरयोरन्यतरस्य रसस्य प्राधान्यादन्येषामंगतया[151] ग्रहणादत्र भगसलिलेत्यस्य हास्यरसत्वेन प्रवेशोपपत्तेरत एव करुणरसैक[152]प्राधान्याद् "उत्तररामचरितं" नातिचतुरमिति कवीनां समय इति दिक् ॥ पाठ ( ट ) लेति । पाटलकुसुमानीत्यर्थः । छायाबहुत्वे

प्रच्छायमिति श्रीनाथः । प्रकृष्टा च्छाया यस्मिन् स्थलविशेष[153] इति केचित् । परिणामो दिनावसान[154] इति यावत् ॥

तथा .. "तहे" त्यत्र "अनादीनामसंयुक्तानाम् खघथधफभां ह"[155] इति हत्वम् । ऋतुं कंचिद्रुपादाय कैशिकीं वृत्तिम् आश्रयेदिति लक्षणाद् आह - इसीति ।

ईषच्चं (च्चुं)[156]बितानि भ्रमरैः
सुकुमार-केसर शिखानि[157] ।
अवतंसयति (न्ति) दयमानाः[158] ।
प्रमादाः[159] शिरीषकुसुमानि ॥

केसरशिखाः किंजल्कांचलानि, स्याद्दशांचलयोः शिखेति यादवः । खण्डरूपमिदं द्विपदीवृत्तम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(ईषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि ।
अवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानि ॥)

**सूत्रधार :** — आर्ये, सुष्ठु गीतम् । अहो गीतानुबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रङ्गः । तदिदानीं कतमत्प्रकरणम् आश्रित्यैनमाराधयामः ॥

**नटी** — णं अज्जमिस्सेहिं पढमं एव्व आणत्तं अहिण्णासाउन्दलं णाम आडअं पओएण अहिकरीअदुत्ति । (नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकं प्रयोगेणाधिक्रयतामिति ।

**सूत्रधार** :— आर्ये ! सम्यगनुबोधितोऽस्मि । अस्मिन् क्षणे विस्मृतं खलु मया तत्सर्वम् । कुतः ?

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः ।
एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा ॥ ५ ॥

(इति निष्क्रान्तौ)

॥ प्रस्तावना ॥

(ततः प्रविशति मृगानुसारी शरचापहस्तो राजा, रथेन सूतश्च ।)

**सूतः** — (राजानं मृगं चावलोक्य) आयुष्मन् !

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ॥ ६ ॥

**राजा** — सूत ! दूरममुना सारङ्गेण वयमाकृष्टाः । अयं पुनरिदानीमपि

---

यदुक्तं दण्डिना । "यथा[160] कथंचिद्वर्णानां संख्या साम्याद् दलद्वयम् । यत् स्यात्तद्[161] द्विपदीवृत्तं विज्ञेयं खण्डरूपकमिति "॥ आलेखितश्चित्रार्पितः । आलिखित[162] इति वा पाठः। "मंचाः क्रोशन्ति" इतिवतु (त्) रंगशब्देन रंगस्थो[163] जनो विवक्ष्यते । प्रकरणम् रूपकम् ॥

नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तं[164] "अभिज्ञानशाकुन्तलं" नामापूर्वं नाटकं प्रयोगेणाधिक्रियतामिति । मिश्रैः पूज्यैर्भवद्भिरिति भावः । प्रथमं प्राक् (ग्) आज्ञप्तं नवेनेत्यादि प्रागुक्तमिति यावत् । अभिज्ञानं वक्ष्यमाणमंगुळी (ली) -यकमिति बोध्यम् । अपूर्वं चमत्कारि नवं च अधिक्रियताम् । अधिक्रियताम्[165] अधिकं यथा तथा निरूप्यतामित्यर्थः । सप्तम्यर्थेऽधिकेऽप्यधीति श्रीनाथः । क्षणे समयविशेष उत्सवे च गीतानां दरपुद (?)[166] पद्यादीनां रागः अ(आ ?)हार्यादिः । तथा चोक्तं भरताचार्यैः । अहारिकांबोधि[167] मुखारि भैरवीरागा भृशं श्रोतृवशीकृतौ क्षमा इति । मनोरमं[168] हारीत्यमरशेषः ॥[169]

प्रसभं यथा तथा, प्रसभं सबला क्रियमिति नानार्थमाला । नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वेति लक्षणादआह-एष इति । सारंगो मृगः । अति - अतिशयेन रंहो वेगो यस्य । अत्यतीवातीवतरामिति त्रिरूपः ।[170] अति हि नाम गर्जसीति श्रीकण्ठः ॥[171]

निष्क्रान्तौ । नटी-सूत्रधारावित्यनुषंगः । प्रस्तावनेति[172] स्वकार्यं प्रस्तुताक्ष्ये(क्षे) पि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्[173] । प्रस्तावना[174] वा तत्र स्यादिति रूपकादेर्शोक्तेः[175] ॥

कृष्णसारे मृगेऽधिज्यम् अधिरोपितमौर्वीकं[176] कार्मुकं यस्य, त्वयि च चक्षुः दृष्टिं ददद् वितरन्, अहमित्या(त्य)र्थात्सिद्धम् ! मृगेति - स्कांदादिपुराणगम्येयं कथा । साक्षात् प्रत्यक्षम् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभिया भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥ ७ ॥

(सविस्मय) कथमनुपतत एव मे यत्नप्रेक्षणीयः संवृतः ।

सूत :— आयुष्मन् ! उत्खातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः । तेन मृग एष विप्रकृष्टान्तरः संवृत्तः संप्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरासदो भविष्यति ।

राजा — तेन हि विमुच्यन्तामभीशवः ।

सूतः — यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन् ! पश्य पश्य ।

मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकायाः
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः ।
आत्मोत्थितैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ॥ ८ ॥

राजा — सत्यम् । अतीत्य हरितो हरीन् वर्तन्ते वाजिनः । तथा हि —

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत् ।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किंचित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ॥ ९ ॥

---

[व]यमाकृष्टा इति, ग्रीवाभंगेति च दोषावतीतचरिततया, क्षन्तव्याविति कवयः । **ग्रीवाया भंगो**, वक्रता,[177] तयाभिरामं यथा तथा मंत्रः । तरंगे वक्रत्वे विदारे च पराभव इति शब्दार्णवः । भूसया स्फीतेनाभिवृद्धेनेति यावत् । इदं पश्चार्थे (र्धे) नेत्यस्य विशेषणम् । मर्यादा भूयसीति दीक्षितः[178] । भूयसेत्यव्ययं भूय इत्यर्थ इति केचिदा[179]हुस्तन्न, अमूलकत्वात् । अर्धमवलीठैः (ढैः) भक्षितैः । अर्धं समेंशक इत्यमरः । स्तोकम् अल्पं यथा तथा । विप्रकृष्टो दूरः । तेतक[180] अभीशवो[181] रश्मयः, निर्भयशव इति दोषः क्षन्तव्यः ॥ नितरां (राम्) आयता निरायताः । चामराणाण्यलंकारोपयुक्तानि । निभृता विनीताः । द्वितीयचरणं (णम्) एकपदं द्विपदं वा । अक्षमा[182] अक्षान्तिः, रथ्या रथाश्वाः ॥

हरितो दिशाः हरीन्वायून्[183] । अनेन जवातिशयो व्यज्यते । हरिः सदागतिर्वायुः सर्वग[184] इत्यमरमाला । हरितो[185] हरित वर्णान्हरीन् सूर्याश्वान्नित्यर्थः: । हरितो हरिदिति, हरिर्वाजीत्यमरमेदिन्यौ । **यत्( द् ) आलोके** पश्यामि । "आलोकते तथा लोकयते" इति केदारः। विच्छिन्नं खण्डितं,

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



सूत ! पश्यैनं व्यापाद्यमानम् । (इति शरसन्धानं नाटयति ।)

(नेपथ्ये)

भो भो राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।

सूतः – (आकर्ण्य विलोक्य) आष्युमन् ! अस्य खलु ते बाणपातवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विनः संप्राप्ताः ।

राजा – (ससंभ्रमम्) तेन हि निगृह्यन्तां वाजिनः ।

सूतः – तथा । (इति रथं स्थापयति)

(ततः प्रविशत्यात्मना तृतीयो वैखानसः ।)

वैखानसः – (हस्तमुद्यम्य) राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाताः वज्रसाराः शरास्ते ॥ १० ॥

तत्साधु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम् ।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ॥ ११ ॥

राजा – एष प्रतिसंहृतः । (इति यथोक्तं करोति ।)

वैखानसः – सदृशमेतत् पुरु वंशप्रदीपस्य भवतः ।

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव ।
पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ॥ १२ ॥

इतरौ – (बाहू उद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि ।

राजा – (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतं ब्राह्मणवचनम् ।

वैखानसः – राजन् ! समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् ! एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते । न चेदन्यकार्यातिपातः प्रविश्यात्र प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः । अपि च –

---

तत्कृतसंधानं संयुक्तमिवेत्यर्थः । समरेखं सरळं(लम्) । जवाद्ध(द्धे) तोः । अस्तीति शेषः ॥

ते तव, अन्तरे मध्ये । आत्मना तृतीय इत्यनेन द्वावितरौ च प्रविष्टाविति भावः ॥ **न खल्विति।** वीप्सायां द्विरुक्तिः । ते तेव । श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त इति केचित् । **वः पौरवाणां** युष्माकं, त इति च पाठः । प्रदीपहंसचंद्रेन्दु[187] शेखराद्या[188]वरार्थका इति हेमचन्द्रः । इदं संहितसायक(कं) प्रतिसंहरणं तव युक्तरूपम् उचितं यस्य पुरोर्वंशे जन्मेति योज्यम् । अन्यथा तच्छब्दाभावादसांगत्यापतेः (त्तेः) । युक्तरूपोऽन्विते[189] युक्तमिति धरणिः । एवंगुणोपेतम् इत्येकं पदम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



धर्म्यास्तपोधनां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य ।

ज्ञास्यसि कियद्भभुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ॥ १३ ॥

राजा – अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः ?

वैखानसः – इदानीमेव दुहितरमतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः ।

राजा – । भवतु तां द्रक्ष्यामि । सैव विदितभक्तिं मां महर्षेः कथयिष्यति ।

वैखानासः – साधयामस्तावत् ।

( इति सशिष्यो निष्क्रान्तः ।)

राजा – सूत ! चोदयाश्वान् । पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे ।

सूतः – यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (भूयो रथवेगं निरू पयति)

राजा – (समान्तादवलोक्य) सूत ! अकथितोऽपि ज्ञायत एव तथाऽयमा-भोगस्तपोवनस्य ।

सूतः– कथमिव ?

राजा – किं न पश्यति भवान् । इह हि –

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धा क्वचिदिङ्गुदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः ।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा –

स्तोयाधारपथाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाङ्किताः ॥ १४ ॥

---

निश्चिते सर्वथा ध्रुवमिति शाश्वतः । अन्विति । मालिनी नाम नदीतीरमनुसृत्येत्यर्थः: ॥ क्रियाः श्रौतास्मार्तादिका ध्वनिः दोषश्च । किणाः किट्टाः घट्टे इति महाराष्ट्राः ॥

शकुन्तलामिति वस्तुकथाया[190] उपक्षेप इति बोध्यम् । महर्षेरिति संबन्धे षष्ठी । साधयामो गच्छामः । आभोगः परिपूर्णता, [अ]यमाभोग इति ध्वनिः । नीवारास्तृणधान्यानि । ''कोटरं'' तु तरोर्बिलमिति रत्नमाला । प्रस्निग्धा अतिमसृणाः । अभिन्ना सर्वसाधारणी । तोयाधारपथा जलाशयमार्गाः[191] । शिखा वस्त्रदशाः, ताभ्यो निष्यंदो गळ(ल)नं यासां[192] तादृशो[193](श्य:) रेखास्तंतुशकलाः । शिखा वस्त्रदशा चूडाहेतिष्विति, रेखा तु तंतुखण्डाळि(लि) रीतिष्विति रुद्रवामनौ ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



अपि च —कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला
भिन्नो रागः किसलयरुचामाज्यधूमोद्गमेन ।
एते चार्वागुपवनभुवि च्छिन्नदर्भाङ्कुरायां
नष्टाशङ्का हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ॥ १५ ॥

सूतः — सर्वमुपपन्नम् ।

राजा — (स्तोकमन्तरं गत्वा) सूत ! तपोवनवासिनामुपरोधो मा भूत् । एतावत्येव रथं स्थापय । यावदवतरामि ।

सूतः — धृताः प्रग्रहाः । अवतरत्वायुष्मान् ।

राजा — (अवतीर्य) विनीतवेषप्रवेश्यानि तपोवनानि नाम । इदं तावद्गृह्यताम् (इति सूतहस्ते धनुश्चाभरणानि चोपनीय) यावदाश्रमवासिनः प्रत्यवेक्ष्योपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठाः क्रियन्तां वाजिनः ।

सूतः — यदाज्ञापयत्यायुष्मान् ।

(इति निष्क्रान्तः)

राजा — (परिक्रम्यावलोक्य च) इदमाश्रमपदम् । यावत्प्रविशामि । (प्रविश्य, निमित्तं सूचयन् ।

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य ।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ॥ १६ ॥

(नेपथ्ये)

इदो इदो सहीओ । (इत इतः सख्यौ ।)

राजा — (कर्णं दत्वा) अये ! दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते । यावदत्र गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) अये ! एतास्तपस्विकन्याः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटै र्बालपादपेभ्यः पयो दातुमित एवाभिवर्तन्ते (निपुणं निरू प्य) अहो मधुरमासां दर्शनम् ।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यतिजनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ॥ १७ ॥

यावदिमां तरुच्छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि (इति विलोकयन् स्थितः ।)

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला)

शकुन्तला — इदो इदो सहीओ । (इत इतः सख्यौ ।)

अनसूया — सहि सउन्दले ! तुवत्तो वि तादकस्सवस्स अस्समरू वक्खआ पिअदरत्ति तक्केमि । ! जं णोमालिआकुसुमपेसला तुमं वि एव्व दाणं आलवालसेअणे णिउत्ता । (सखि शकुन्तले ! त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्याश्रमवृक्षाः प्रियतरा इति तर्कयामि यन्नवमालिकाकुसुमपेलवा त्वमपि तेषामालवालसेचने नियुक्ता ।)

---

कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरिदित्यमरः । कालवे इति महाराष्ट्राः[194] रागोऽरुणिमा । भिन्नो मलिनः[195] । संप्रत्यर्वाग् इदानीं चेति ध्वनिमंजरी । नष्टाशंका इति सुपाठः । नष्टाशंकमिति केचित्तन्न । क्रियाविशेषणद्वयस्यानुचितत्वात् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला** — ण केवलं तादणिओओ । मम वि क्खु सोदरसिणेहो एदेसु । (न केवलं तातनियोगः, ममापि खलु सोदरस्नेह एतेषु ।)

( वृक्षसेचनं रूपयति ) ।

**राजा** — कथमियं सा कण्वदुहिता । असाधुदर्शी खलु तत्रभवान् काश्यपः य इमामाश्रमधर्मे नियुङ्क्ते ।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपु —
स्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥ १८ ॥

भवतु । पादपान्तरित एव विस्रब्धं तावदेनां पश्यामि । (तथा करोति) ।

**शकुन्तला** — सहि अणसूए ! अदअपिणद्धेण थणवक्कलेण पिअंवदाए दिढं णिअंदिदम्मि । सिढिलेहि दाव इमं । (सखि अनसूये ! अदयपिनद्धेन स्तनवल्कलेन प्रियंवदया दृढं नियन्त्रितास्मि शिथिलय तावदिमम् ।)

**अनसूया** — तह ! (तथा ।) (इति शिथिलयति) ।

**प्रियंवदा** — (सस्मितं) एत्थ दाव पओहरबित्तारइत्तअं अत्तणो जोब्बणं उवाळंह । (अत्र तावत् पयोधरविस्तारयितृकमात्मनो यौवनमुपालभस्व ।)

---

उपपन्नं युक्तम् । अन्तरम् अवकाशम् । यावदवतरामि अवतरिष्यामीत्यर्थः प्रग्रहा रश्यमः । नाम प्रसिद्धो । "अये" इत्याश्चर्ये[196] । निर्जने शान्तमिति पदार्थमाला । शान्तमिति ध्वनिदोषः । द्वाराणि सूचानानि, द्वारं मध्यस्थे[197] द्वारि सूचन इति हारावळी(ली) ॥

इत इतः प्रियसख्यौ । इदो[198] इत्यत्र "तो द"[199] इति दत्वम् । पिअसहीत्यत्र[200] "सर्वत्र लवराणामिति"[201] रलोपः ।

प्रमाणं वयः । प्रमाणं तु वयो मानं प्रमाकरणोक्तिष्विति[202] रत्नमाला । मधुरं स्वादुरम्योरिति सारस्वतः । शुद्धान्तशब्देनान्तःपुरस्त्रियो लक्ष्यन्ते[203] । गुणैः सौकुमार्यादिभिः ॥

इत इतः सख्यौ । हला शकुन्तले ! त्वत्तोऽपि तातकाश्यपस्य आश्रमवृक्षाः[204] प्रियतरा इति तर्कयामि । यन्नवमल्लिकाकुसुमपेलवा त्वमप्येतेषाम् आलवालपूरणे नियुक्ताऽसि । हलाऽह्वाने सखीं प्रतीति हैमः । पेलवा सूक्ष्मा, द्रविडभाषायां ध(ध्व)निः । पेशलेति वा पाठः । न केवलं तातनियोगो ममापि सोदरस्नेहोऽस्त्येतेषु । अन्तरितः आच्छादितः ।

अनसूये ! अदय[205] - पिनह्ने(द्धे)न स्तं(स्त) नवल्कलेन प्रियंवदया दृढं नियंत्रिताऽस्मि, शिथिलय तांच (ताव) देनम् । थणेत्यत्र "स्तस्य थ"[206] इति थत्वम् । तथा - अत्र पयोधर[207]विस्तारयितृकम्[208] आत्मनो यौवनम् उपाल [भ]स्व, मां किम् उपलभसे[209], । आ०पणो इत्यत्रं (त्र) "आत्मनि प"[210] इति पत्वम् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजासम्यगङ्हमाह — इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कंधप्रदेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण ॥ १९

राजा — अथवा काममननुरूपमस्या वपुषो वल्कलं न पुनरलङ्कारश्रियं न पुष्णाति। कुतः ?

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ २० ॥

शकुन्तला — (अग्रतोऽवलोक्य) एसो वादेरिदपल्लवंगुलीहिं तुवरावेदि मं केसररुक्खो। जाव णं संभावेमि। (एष वातेरितपल्लवाङ्गुलीभिस्त्वरयति मां केसरवृक्षकः। यावदेनं सम्भावयामि ।) (इति परिक्रामति ।)

प्रियंवदा — हला सउन्दले ! एत्थ एव्व दाव मुहुत्तं चिट्ठ ।
(हला शकुन्तले, अत्रैव तावन्मुहूर्तं तिष्ठ)

शकुन्तला — किं णिमित्तम् ? (किं निमित्तम् ?)

प्रियंवदा — जाव तुए उवगदाए लदासणाहो विए अअं केसररूक्खो मे पडिभादि। (यावत्त्वयोपगतया लतासनाथ इवायं केसरवृक्षो मे प्रतिभाति ।)

शकुन्तला — अदो क्खु सि पिअंवदा। (अतः खल्वसि प्रियंवदा ।)

राजा — प्रियंवदा प्रियमपि तथ्यमाह। अस्याः खलु —

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धन् ॥ २१ ॥

---

कल्पिते स्यादुपहितमिति त्रिकाण्डी । ग्रन्थि गांढि इति महाराष्ट्राः। परिणाहो विशालता। पिनद्धं बद्धम् । पाण्डुपत्रोदरेणे[211]त्येकं पदम् । पाण्डु कुसुममिन (ति) केचित (त्त) त्र । शुभ्रता पुष्पसामान्य इति कल्पलतावाक्येन पौनरुक्त्यप्रसंगात् । न पुष्यतीति न पुष्पत्ये वेत्यर्थः ।

अनुविद्धं संबद्धमिति[212] यावत् । लक्ष्मीः शोभाम् । लक्ष्मीः[213] संपद्रमाभास्विति रभसः ॥ एष तावद्वातेरितपल्लवांगुळी (ली) भिस्त्वरयतीव मां केसरवृक्ष को[214] यावदेनं संभवयामि। अल्पार्थे कप्रत्ययः। हला शकुन्तले[215]। अत्रैव मुहूर्तं तिष्ठ। यावत्व (त्त्व)योपगतया लतां(ता)सनाथ इवायं केसरवृक्षः प्रतिभाति ॥ अतः खल्वसि त्वं प्रियंवदा॥ लोभनीयं प्रार्थनीयमिति यावत्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अनसूया** – सहि सउन्दले । इयं सअंवरबहू बालसहआरस्स तुए किदणामहेआ बणजोसिणित्ति णोमालिआ । एणांविसुमरिदासि । (हला शकुन्तले ! इयं स्वयंवरवधूः बालसहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका खलु । एनांविस्मृतासि ।)

**शकुन्तला** – तह जइ अत्ताणं विसुमरिस्सं । (लतामुपेत्यावलोक्य च) सहि, रमणीए क्खु काले इमस्स लतापाअवमिहुणस्स सअंवर संवुत्तो जं णवकुसुमजोव्वाणा वणजोसिणी बद्थपल्लवदाए उवभोअक्खमोबालसहआरो । (पश्यन्ती तिष्ठति ।) (तथा यद्यात्मानं विस्मरिष्यामि । सखि, रमणीये खलु कालेऽस्य लतापादपमिथुनस्य स्वयंवरः संवृत्तः, यतो नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना बद्धपल्लवतपोपभोगक्षमो बालसहकारः ।)

**प्रियंवदा** – अणसूए, जाणासि किं णिमित्तं सउन्दला वणजोसिणिं अदिमत्तं पेक्खदिति । (अनसूये, जानासि किं निमित्तं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति ।)

**अनसूया** – ण क्खु विभावेमि । कहेहि । (न खलु विभावयामि, कथय ।)

**प्रियंवदा** – जह वणजोसिणी अणुरूपेण पाअवेण सङ्गदा एव्वं णाम अहं वि अत्तणो अणुरूवं वरं लहेअंत्ति । (यथा वनज्योत्स्ना अनुरूपेण पादपेन संगता एवं नामाहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति ।)

**शकुन्तला** – एसो णूणं तुह अत्तगदो मणोरहो । (एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः ।) (इति कलशमावर्जयति ।)

**राजा** – अपि नाम कुलपतेरिमसवर्णक्षेत्रसम्भवा स्यात् ? अथ वा कृतं सन्देहेन ।

---

हला शकुन्ताळे (ले) ! इयं स्वयंवरवधूः । बालसहकारस्य त्वया कृतनामधेया बनजेत्स्नि[216] (ज्योत्स्ने)ति नवमल्लिका खलु । एनां विस्मृतासि । तथा यदि तावदात्मानं विस्मरिष्यामि । हला रमणीये खलु काले[217] अस्य [218] लतापादपमिथुनस्य स्वयंवरः संवृत्तः । संजात इत्यर्थः । नवकुसुमयौवना वत(न) ज्योत्स्ना बद्धपल्लवतयोपभोगक्षमो बालसहकारः ।[219] "जोसिणीतिं(ति) "प्राकृतमंजर्यां "बालाबाळि" इत्यादिरूपद्वयस्याभिधानादीदंतप्रयोगः ॥ अनसूये, जानासि किम्[220] [निमित्तं]शकुन्तला वन जो (ज्यो) त्स्नाम् अतिमात्रं पश्यति । न खलु विभावयामि तर्कयामीत्यर्थः । कथय कथय ।

यथा वनजो (ज्यो)त्स्ना[221]ऽत्मनोऽनुरूपेण पादपेन संगता,[222] एवमहमप्यात्मनोऽऽनुरूपं वरं लभेयेति ॥ पुरोवर्त्तितया एवमिति निर्देशः । तथेति क्वचित्पाठः । हळा (ला) एष नूनं तवात्मगतो मनोरथः । आत्मा बुद्धि । कलशं जलकुंभम् । अपि नामेति संभावनायाम् । सवर्णं सजातीयं च तत् क्षेत्रं पत्नीत्यर्थः । स्यादिति तदा स्वस्य प्रयोजनं नास्तीति भावः । **असंशयं** ध्रुवं यद्यस्मात् । आर्यं युक्तकार्यं[223] प्रवर्त्तीति यावत् । वस्तुषु पदार्थेषु । संदेहानां[224] पदेषु स्थानेषु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ २२ ॥

तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये ।

**शकुन्तला** – (ससंभ्रमम्) अम्हो ! सलिलसेअसंभंतो णोमालिअं समुज्झिआ वअणं मे महुअरो अहिवट्टइ । (अहो ! सलिलसेकसंभ्रान्तो नवमालिकाम् समुज्झित्य वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते ।) (इति भ्रमरबाधां निरूपयति ।)

**राजा** – (विलोक्य – सस्पृहम्)

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करौ व्याधून्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ २३ ॥

**शकुन्तला** – सहीओ ! परित्ताअह परित्ताअह इमं इमिणा दुव्विणीदेण महुअरेण अभिभूअमाणाम् (सख्यौ ! परित्रायेथां परित्रायेथां इमामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेणाभिभूयमानां माम् ।)

**उभे** – (सस्मितम्) का वअं परित्तादुं । दुस्सन्दं अक्कन्द । राअरक्खणिज्जाइ तवोवणाइ णाम । (के आवां परित्रातुम् ? दुष्यन्तमाक्रन्द । राजरक्षणीयानि तपोवनानि नाम ।

**राजा** – अवसरोऽयमात्मानं दर्शयितुम् । कः कोऽत्र भोः (इत्यर्धोक्ते विचार्य) राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत् । भवतु, एवमभिधास्ये ।

**शकुन्तला** – ण एसो दुट्ठो विरमदि ता अण्णदो गच्छम्हि । (अपदान्तरे स्थित्वा, सदृष्टिक्षेपम्) कहं इदो वि मं अणुसरदि । (नैष दुष्टो विरमति तावदन्यतो गच्छामि । कथमितोऽपि मामनुसरति ।)

---

सत्सु । प्रवृत्तयः[225] आसक्तयः । प्रमाणमिति, "वेदाः प्रमाणमिति", तदनुसंधेयम् । अत एव वयमपि कळ (ल) त्रमिति भगवत्पादाः । तथा च, सतां युक्ते वस्तुनीच्छा, न त्वयुक्ते भविष्यतीति भावः ॥ तत्व (त्त्व) तो निश्चयात् । उपलप्स्ये[226] ज्ञास्यामि ॥

अम्हो सलिलसेकसंभ्रान्तो नवमल्लिकां समुझिझत्य वदनं[227] मे मधुकरोऽभिवर्त्तते[228] । अनेनेयं पद्मिनीति व्यज्यते । अम्हो भयाश्चर्ययोरिति वररुचिः ।[229] चलापांगं चंचलनेत्रांचलं यथा तथा, अपांगमिति ध्वनिः । वेपथुः सात्वि (त्त्वि) करसैनेति भावः । रतिः सौख्यम् । अधरं नीचमिति ध्वनिरिति कश्चिदाह – त्त (त) त्र ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** – (सत्वरमुपसृत्य)

क: पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम् ।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ॥ २४ ॥

(सर्वा राजानं दृष्ट्वा किंचिदिव संभ्रान्ता: ।)

**अनसूया** – अज्ज ण क्खु किं चिद् अच्चाहिदं । इअं णा पिअसही महुअरेण आउलीकिअमाणा कादरीभूदा । (इति शकुन्तलां दर्शयति) (आर्य न किमप्यत्याहितम् । इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता ।)

**राजा** – (शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) भवति ! अपि तपो वर्धते ?

(शकुन्तला साध्वसावनतमुखी तिष्ठति ।)

**अनसूया** – दाणिं आदिहिबिसेसलाहेण । साअदं अज्जस्स । सहि सउन्दले ! गच्छ उडअं । फलमिस्सं अग्घ उवहर । इदं पादोदअं भविस्सदि । (इदानीमतिथिविशेषलाभेन । स्वागतमार्याय । सखि शकुन्तले ! गच्छोटजम् । फलमिश्रमर्घ्यमुपहर । इदं पादोदकं भविष्यति ।)

**राजा** – भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम् ।

**प्रियंवदा** – तेण हि इमस्सि पच्छाअसीअलाए सत्तवण्णवेदिएआ उविसिअ परिस्समविणोदं करेदु अज्जो । (तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायामुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्य:।

**राजा** – ननु यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ता: ।

**अनसूया** – सहि सउन्दले ! उइदं णो पज्जुवासणं अदिहीणं । तत्तो एत्थ उववसिम्ह । (सखि शकुन्तले ! उचितं न: पर्युपासनमतिथीनाम् । तस्मादत्रोपविशाम: ।) (सर्वे यथोचितमुपविशन्ति ।)

**शकुन्तला** – (सविमर्शमात्मगतम्) किं णु क्खु इमं पेक्खिअ तवोवणविरोहिणो विआरस्स गमणीअह्मि संवुत्ता । (किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता ।)

**राजा** – (सर्वा विलोक्य) अहो समवयोरूपरमणीयं सौहार्दं भवतीनाम् ।

---

"स्मितं कुलनतभ्रुवाम् (?) अधर एवेतिवदुपपत्ते: । वयमिति निर्वेदाद् बहुवचननिर्देश: । हता इत्यादिकथनं नाटकादिषु न युक्तम् इति लाक्षणिका: । **यतो यतो** यत्र यत्र । विवर्ततेऽपि च परिभ्रमतीति केदार: । ततस्तत: तत्र तत्र । यतो यतोऽधस्तुंगमित्यनंतकवि: । दृष्टिविभ्रमं दर्शनविलासम् । परित्रायध्वम् अमुनो(ना) दुवि (र्वि) नीतेनाभिभूयमानां माम् । के[230] आवां परित्रातुम्, दुष्यन्तम् आक्रन्द, राजरक्षितानि तपोवनानि नाम । राजभावो राजत्वम् । नैष दुष्टो

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रियंवदा** – (जनान्तिकम्) अणसूए ! को णु क्खू एसो चदुरगम्भीराकिदी महुरं पिअं आलवन्तो पहवस्तो विअ दीसइ । (अनसूये ! को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरमालपन् प्रभावान्निव दृश्यते ?)

**अनसूया** – (जनान्तिकम्) सहि ! मम वि अत्थि कोदूहलं । पुच्छिस्सं दाव णं (प्रकाशम्) अज्जस्स महुरालावजणिदो वीसासो मं मन्तावेदि । कदमो अज्जेण राएसिवंसो अलंकरीअदि । कदमो वा विरहपज्जूसुअजणो किदो देसो । किं णिमित्तं वा सुउमासरीरेण तवोवणगमणपरिस्समस्स अत्ता पत्तदं उवणीदो । (सखि ! ममाप्यस्ति कौतूहलम् । पृक्ष्यामि तावदेनम् ।

(प्रकाशम्) आर्यस्य मधुरालापजनितो विश्वासो मां मन्त्रयते । कतम आर्येण राजर्षिवंशोऽलंक्रियते ? कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः ? किं निमित्तं वा सुकुमारेण शरीरेण तपोवन गमन परिश्रमस्यात्मा पात्रतामुपनीतः ?)

**शकुन्तला** – (आत्मगतम्) हिअह मा उत्तम्म । जं एसा तुए चिन्तिदं अनसूया मन्तेदि । (हृदय ! मा उत्ताम्य । यदेषा त्वया चिन्तितमनसूया मन्त्रयते ।)

**राजा** – (आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि कथं वात्मापहारं करोमि ? भवतु । एवं तावदेनां वक्ष्ये । (प्रकाशम्) भवति, यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमाश्रमिणामविघ्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमायातः ।

**अनसूया** – सणाहा दाणिं धम्मआरिणो । (सनाथा इदानीं धर्मचारिणः ।)

(शकुन्तला शृङ्गारलज्जां नाटयति)

---

विरमति । तस्माद् अन्यतो गमिष्यामि । [[कथमि[231]]]तोऽपि माम् [232] अनुसरति ।[233] आर्य,[234] न किमप्यत्याहितं महाभीतिरित्यर्थः: । "अ0 चाहिदम्" इत्यत्र "त्यत्थद्यां चछजा[235] इति चत्वम् । इयं नः प्रियसखी मधुकरेणाऽऽकुलीक्रियमाणा[236] कातरीभूता । इदानीम् अतिथिविशेषलाभेन । गच्छोटजम् । फलमिश्र[237] – मर्घ्यम् उपहर । इदं तावत्पादोदकं भविष्यति । सूनृतम्[238] प्रिय [म्]इत्यमरः । तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायाम् आर्य उपविश्य परिभ्रमा[239]पनोदनं करोतु । परि0 समविणोदणामिति पाठे परिश्रमस्य विशेषेण नोदनम् अपसारणमित्यर्थः । सप्तपर्णो[240] विशालत्वगित्यमरः । अनेन जलाहरणादिना कर्मणा कृत्येन । उचितं खलु नः पर्युपासनम्[241] अतिथीनाम्, तस्माद् अत्रोपविशामः । किं नु खलु इम(मं) प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता[242] । अधीनं गमनीयं च वश्यमिति मुकुटः । रहस्यार्थे जनान्तिकमिति भरतः । अनसूये को नु खल्वेष चतुरगंभीराकृति – र्मधुरं प्रियम् आलपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते । चतुरश्चा[243]साविति बोध्यम् । ममाप्यस्ति कौतूहलम् । प्रक्ष्यामि[244] तावेदनम् । आर्यस्य मधुरालापजनितो विश्वासो मां मन्त्रय]][246]– ते । कतमो वाऽऽर्येण राजर्षिवंशोऽलंकृतः, कतमो [[वा]]देशो विरहपर्यु[248]त्सुकजनः कृतः)। किं निमित्तं वा सुकुमारेण [[शरीरेण]]तपोवन [[गमन]] परिश्रमस्याऽऽत्मा पात्रतामुपनीतः । हृदय, मा उत्ताम्य[251] मा उत्ताम्य । एषा त्वयेदानीं चिन्तितमनसूया मन्त्रयते । अपहारम् अपचयम् ! भवतीति संबोधनम् । सनाथाः[252] खल्विदानीं धर्मचारिणः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**सख्यौ** – (उभयोराकारं विदित्वा। (जनान्तिकम्) सहि सउन्दले ! जइ अज्ज तादो संणिहिदो भवे ? (सखि-शकुन्तले ! यद्यद्य तातः सन्निहितो भवेत् ?)

**शकुन्तला** – (सरोषम्) तदो किं भवे ? (ततः किं भवेत्)

**सख्यौ** – इमं जीविदसव्वस्सेण अदिहिं किदित्थं करिस्सदि। (इमं जीवितसर्वस्वैनाप्यतिथिं कृतार्थं करिष्यति।)

**शकुन्तला** – हला ! अवेमि। किं वि हिअए करिए मंतेध। ण वो वअणं सुणिस्सं। (हला अवैमि। किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे। न वां वचनं श्रोष्यामि।)

**राजा** – वयमपि तावद्भवत्योः सखीगतं किञ्चित् पृच्छामः।

**सख्यौ** – अज्ज अणुग्गहो खु अब्भत्थणा। (आर्य अनुग्रहः खल्वभ्यर्थना याः)

**राजा** – भगवान् काश्यपः शास्वते ब्रह्मणि स्थित इति प्रकाशः। इयं च वां सखी तदात्मजेति कथमेतत् ?

**अनसूया** – सुणादु अज्जो। अत्थि कोसिओत्ति किंदगोत्तणामहेओ अहप्पहाओ राएसी। (शृणोत्वार्यः। अस्ति कौशिक इति कृतगोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः।)

**राजा** – अस्ति, श्रूयते।

**अनसूया** – तदो णो पिअसहिए पहवं अवगच्छ। तेण उज्झिआए सरीरसंवड्ढणादिहिं तादकस्सवो से पिदा। (तस्मात् नः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छ। तेन उज्झितायाः शरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्याः पिता।)

**राजा** – उज्जितशब्देन जनितं मे कुतूहलम्। आ मूलाच्छ्रोतुमिच्छामि।

---

यद्यार्यस्तातः सन्निहितो भवेत्। सरोषम् इति बलवदनुरागो[253] व्यज्यते॥ ततः किं भवेत्। इमं जीवितसर्वस्वेनातिथिं[254] कृतार्थ(र्थं)255 करिष्यति। सर्वस्वेनेति शकुन्तलाभिप्रायेणोक्तम्॥ अवैमि अवैति।[256] द्वाभ्यां किमपि हृदये कृत्वा मन्त्यते। तस्मान्न वां श्रोष्यामि। वचनं श्रोष्याम्ये[257] - वेति भावः। "वो" इति द्विवचने बहुवचनमिति बहुत्वम्॥ आर्य ! अनुग्रहः खल्वभ्यर्थनायाः। आवयोरिति शेषः। भगवान्माहात्म्यवान्[258] कीर्तिमान्वा। प्रकाशोऽतिप्रसिद्धेऽपीत्यमरः। व इति पूजायां बहुत्वम्। शृणोत्वार्यः। अस्ति कोऽपि कौशिक इति कृतगोत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षिः। तस्मात् प्रियसख्याः[259] नः प्रभवम् अवगच्छ।[260] तेनोझिझ (ज्झि) तायाः शरीरसंवर्धनादिभिः[261]। पुनः तातः काश्यपोऽ[261]स्याः पिता। "वृद्धेर्व. ढ"[264] इति ढत्वम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अनसूया** – सुणादु अज्जो । गोदमीतीरे पुरा किल तस्स राएसिणो उग्गे तवसि वट्टमाणस्स किं वि जादसङ्केहिं देवेहिं मेणआ णाम अच्छरा णिअमविग्धकारिणी पेसिदा। (शृणोत्वार्यः । गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशङ्कैर्देवैर्मेनका नामाप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता ।)

**राजा** – अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवानाम् । ततस्ततः ।

**अनसूया** – तदो वसंदोदारसमए ताए उम्मादइत्तअं रूपं दिट्ठीण (इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति) (ततो वसन्तोदाररसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं दृष्ट्वा ।)

**राजा** – परस्तादवगम्यत एव । सर्वथाप्सरःसंभवैषा ।

**अनसूया** – अह इं । (अथ किम् ।)

**राजा** – उपपद्यते ।

**मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ।**
**न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥ २५ ॥**

**( शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति ।)**

---

शृणोत्वार्यः, गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेर् उग्रे तपसि वर्त्तमानस्य किमपि जातशंकैर्देवैर् मेनका नाम अप्सरा नियमविघ्नकारिणी प्रेषिता । यद्यपि अप्सरा इति कवेः प्रमाद एव । स्त्रियां बहुष्वप्सरस इत्यमरसिंहेना[265] – भिधानात् । तदपि अप्सरसि गौर्यामिति बाणप्रयोगवद्दयनीयः । ततो वसंतोदारसमये तस्या उन्मादयितृकं रूपं दृष्ट्वा[266] । "दे० खिअ"[267] शब्दो देशीयः । देख इति महाराष्ट्राः ।[268] अवगम्यत एवेति गुरुजना शिक्षितविद्येति भावः । अथ किम् अंगीकारे । **प्रभाभिस्तरलं** चकचकितम् । लब्धेति[269] नेयम् ऋषिसंभूतेति भावः । वरेति अणु(नु) रूपं वरमिति प्रियंवदया[270] पूर्वमुदाहृतां प्रार्थनामिति बोध्यम् । किं पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः: । अलं विचार्य । अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम ॥ [[वैखानसं]]वैखानससंबन्धी [[ति यावत्]] ।[272] वैखानसैः[273] किं मतै[274] (व्रतै ?) – रिति हरदत्ताचार्यः: । व्रतं जितेन्द्रियत्वमिति भावः । आहो अथवा एषा आत्मसदृशेक्षणाः । अत एव वल्लभाः प्रियाः । आत्म[27]शब्देन शकुन्तला गृह्यते । अथवा आत्मनः सदृशे उचिते ये ईक्षणे तयोर्वल्लभाः[276] समानास्ताभिरित्यर्थः । वल्लभस्तु[277] समाने भर्त्तरि प्रिय इति जयः । हरिणांगनाभिः मृगीभिरित्यर्थः । नेत्रयोरम्बुजादीनि मृगा[278] – स्तुल्याश्य तादृश[279] इति समयार्णवः । समम् अविशेषम् । यथा तथा निवत्स्यति, निवासं करिष्यति[280]० किमिति काकुः ।[281] निर्बन्धिनी[282]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** – (आत्मगत्) लब्धावकाशो मे मनोरथः । किन्तु सख्यः परिहासोदाहृतां वरप्रार्थनामस्याः श्रुत्वा धृतद्वैधीभावकातरं मे मनः ।

**प्रियंवदा** – (सस्मितं शकुन्तलां विलोक्य नायिकाभिमुखी भूत्वा ।) किं वि वत्तुकामो विअ अज्जो । (किमपि वक्तुकाम इवार्यः: ।)

**( शकुन्तला सखीमङ्गुल्या तर्जयति ।**

**राजा** – सम्यगुपलक्षितं भवत्या । अस्ति नः सच्चरित्रश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम् ।

**प्रियंवदा** – अलं विआरिअ । अणिअन्तणाणुओओ तवस्सिणओ णाम । (अलं विचार्य । अनियन्त्रणानुयोगस्तपस्विजनो नाम ।)

**राजा** – सखीं ते ज्ञातुमिच्छामि ।

**वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।**

**अत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभि-राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः ॥ २६ ॥**

**प्रियंवदा** – अज्ज धम्माचरणे वि परवसो अअं जणो । गुरु णो उणसे अणुरूववर पदाणे संकप्पो । (आर्य ! धर्माचरणेऽपि परवशोऽयं जनः । गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने सङ्कल्पः ।)

**राजा** – (आत्मगतम्) न खलु दुरवापेयं प्रार्थना ।

**भव हृदय साभिलाषं संप्रति सन्देहनिर्णयो जातः ।**
**आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ॥ २७ ॥**

**शकुन्तला** – (सरोषमिव) अणसूए ! अहं गमिस्सं (अनसूये ! अहं गमिष्यामि ।)

**अनसूया** – किं णिमित्तं ? (किं निमित्तम्)

---

किमथवा पशुजातिवदियं[283] मदनरसानभिज्ञैव स्थास्यतीति विनोदचमत्कारोक्तिः । अत्यन्तमेवेत्यादिरयुक्तः पाठः, नाशार्थकत्वात् । पुरुषसंगाभावेन[284] पानाप्रसक्तेर्मदिरेक्षणत्वकथनम् असमंजसमित्यालंकारिकाः । अत एव मृगीदृशां[285] दृशां शौक्ल्यं प्रसादे शोणिमारूषि (?) । स्वभावे नीलिमा पानयोगे मदिरता मतेति डिण्डिमः[286] । मदिरेक्षणवल्लभा शकुंतला आभिर्हरिणाङ्गनाभिरिति केचित् तन्न । सिद्धमन्नं परित्यज्य[287] भिक्षाम् अटति दुर्मतिरित्यादिवद् ऋजुमार्गं विहाय वक्रमार्गे[288] पदन्यासस्य परिक्लिष्टत्वात् ॥ [[तस्मात्]] आहो किमात्मसदृशेक्षणवल्लभाभिरेषा निवत्स्यतीत्येव ष्कंटकः पन्थाः ।[290] कवेरप्येवंकारमेवाशय इति दिक् । आर्य ! धर्माचरणेऽपि परवशोऽयं जनः । गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने संकल्पः । संदेहे सति निर्णय इति विवेकः । संदेहदशायां ब्रह्मबीजेत्यग्नित्वेन[292] निर्णयदशायां क्षत्रबीजेति[293] रत्नत्वेन निरूपितमिति बोध्यम् । सरोषमिवेति संतोष एवेति भावः । इवेत्यळी – (ली) क इति [[वामनः । अनसूये गमिष्यामि तावदहम् । प्रकृतकार्ये विलम्बस इति]][294]भावः । किन्निमित्तम् ॥ इमाम–[295]संबंद्धप्रलामि (पि) नीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयितुम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला –** इमं असंबद्धप्पलाविणिं पिअंवदं अज्जाए गोदमिए णिवेदेदुं । (इमामसम्बद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयितुम् ।)

**अनसूया –** सहि, ण जुत्तं अकिदसक्कारं अदिहिविसेसं उज्झिअ आस्समवासिणो जणस्स सच्छन्ददो गन्दुं । (सखि ! न युक्तमकृतसत्का मतिथिविशेषम् उज्झित्वाऽऽश्रमवासिनो जनस्य स्वच्छन्दतो गन्तुम् ।)

(शकुन्तला न किंचिदुक्त्वा प्रस्थिता)

**राजा –** (आत्मगतम्) आः कथं गच्छति । (गृहीतुमिच्छन्निगृह्यात्मानं) अहो चेष्टाप्रतिरूपिका कामिनां मनोवृत्तिः । अहं हि,

अनुयास्यन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः ।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः ॥ २८ ॥

**प्रियंवदा –** (शकुन्तलां निरुध्य) सहि ण दे जुत्तं गन्दुं । (सखि न ते युक्तं गन्तुम् ।

**शकुन्तला –** (सभ्रूभङ्गम्) किं णिमित्तं ? (किं निमित्तम् ?)

**प्रियंवदा –** रूक्खसेअणाइ दुवे मे धारेसि । एहि दाव इदो अत्ताणं मोइअ गमिस्ससि । (वृक्षसेचने द्वे मे धारयसि । एहि तावत् अस्मादात्मानं मोचयित्वा गमिष्यसि ।) (इति बलादेनां निवर्तयति)

**राजा –** भद्रे ! वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये । तथा

---

असंबद्धा उपरिप्लवाः । अतलस्पर्शिन इति यावत् । ते च ते प्रलापाः ते यस्यां सन्तीती कर्मधारयः । कोक प्रीती[296] त्यादि मुरारिः । प्रलापोऽनर्थकं वच इत्यमरः । वृथा जल्पाके इति भावः । "पिअंवदमिति" – प्रियं वदति[297], नाद्यापि मां कार्यपारगां करोतीत्यौत्सुक्यातिशयो व्यज्यते ॥ सखि न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं समुझिझ (ज्झि) त्य स्वच्छन्दतो गमनमाश्रमवासिनो जनस्य । सत्कारो मनः प्रीणनम् । अतिथीतिआन्तरङ्गोऽतिथिर्नायं[298] बाह्य इति भावः । स्वच्छन्देति[299] पराधीनसीत्याशयः । आश्रमेति कथनं विविक्तसूचकम् । "विसेसम्" इत्यत्र "शषोः[300] स" इति सत्वम् । नेति किंचित्किमपि नोक्ता । अनुक्त्वेत्यर्थः । किंचिदुक्त्वा न[301] प्रस्थिता ।[302] तूष्णींशीला[303] प्रस्थि {तम्}[304] – तेति च बोध्यम् ।

चेष्टायाः शारीरस्य[305] चेष्टनस्य प्रतिरूपिका । अनुकूला प्रतिकृतिः । स्वाधीना प्रतिरूपिकेति[306] पदार्णवः । चेष्टैव रूपम्, तस्याः प्रतिरूपं मनोवृत्तिः । चेष्टायाः प्रत्यक्षतया मुख्यत्वेन रूपत्वारोपणममिति भावः । चेष्टैव प्रतिरूपिका यस्यास्तादृशी मनोवृत्तिः, यद्धि मनसा ध्यायतीत्यादिश्रुतेरिति वा बोध्यम् । सहसश्चासावविनय[307] – स्तेन[308] **अनुयास्यन्[309]** हसो हास इत्यमरः । सहसा अतर्कितम् । विनयेन वारितप्रसर इति पदैक्येन पदद्वयेन चार्थो[310] ज्ञेयः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ह्यस्या :—

स्रस्तांसावत्रतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणा-
द्द्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः ।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने घर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः ॥ २९ ॥

तदहमेनामनृणां करोमि (इत्यङ्गुलीयं दातुमिच्छति) ।

(उभे नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः ।)

**राजा** – अलमन्यथा सम्भाव्य । राज्ञः परिग्रहोऽयम् ।

**प्रियंवदा** – ण हि एदं अङ्गुळीअअं अगुळीविओअं अज्जस्स अरुहदि । तुह वअणेणेव्व अणिणा णाम एसा । (किंचिद्विहस्य) सहि सउन्दले ! मोइदा सि अणूअम्पिणा अज्जेण अह वा महाराएणा । गच्छ दाणिं । (न ह्येतदङ्गुलीयकमङ्गुलीवियोगमार्यस्यार्हति। तव वचनेनैवानृणा नामैषा । सखि शकुन्तले ! मोचितास्यनुकम्पिनार्येण अथवा महाराजेन। गच्छेदानीम् ।)

**शकुन्तला** – (आत्मगतम्) जइ अत्तणो पहविस्सं (प्रकाशम्) का तुमं विसज्जिदव्वस्स वा रूधिदव्वस्स वा ? (यद्यात्मनः प्रभविष्यामि । का त्वं विसर्जयितव्यस्य वा रोद्धव्यस्य वा ।)

**राजा** – (शकुन्तलां विलोक्य, आत्मगतम्) किं नु खलु यथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान् प्रति स्यात् ? अथवा लब्धावकाशा मे प्रार्थना ।

---

आवेशे प्रसरो मत इत्यमरमाला ।[311] हळा(ला) न ते युक्तं गन्तुम् । किन्निमित्तम् । वृक्षसेचने द्वे इमे धारयसि । वृक्षद्वयसेचनं त्वया कर्तव्यमिति भावः । तस्माद् एहि तावत् । अत आत्मानं मोचयित्वा गमिष्यसि । अतः – सेचनादित्यर्थः[312] । अस्मादतिथेरिति च ध्वनिः । "मोइअ तदो गमि०ससी" त्ययुक्तः पाठः । तत्रभवतीं[313] पूज्याम् । **स्तनेति** – श्वासाधिक्येन वायुविकारस्याधारस्योरसो[314] वेपथुधारणावश्यकत्वादा[315] – धेययोरुरोजयोरपि वेपथु[317] – संभव-नियमादिति भावः । आयासजनिते कम्पे[318] वेपथुरित्यनेकार्थ मञ्जरी पूर्वप्रमाणादित्यर्थः । जालकं वृन्दम् । स्रंसिनीति गमनागमनादिभिरित्यूह्यम् । कक्षे कुम्भधारणा[319]देकेत्युक्तम् । अनृणां मुक्तम् ।[320] परिग्रहः संबंधः ।[321] पत्निति च नायिकाविषये व्यज्यते । अयमिति परिग्रहा[322]–भिप्रायेण निर्देशः । संबन्धे ग्रहणे चैव कलत्रे च परिग्रह इति केदारः ॥

तेन हि नार्हत्येतदंगुळी (ली) यकमुंगळी(ली) वियोगम् । राजसंबन्धादस्माभिर्न ग्राह्यमिति भावः । अत्र शकुन्तलाभिप्रायेण राज्ञा परिग्रहोऽयमिति चमत्कृते, ते तव न ही ति प्रियंवदया परिहासगर्भमनसा प्रतिचमत्कृतमिति सूक्ष्मदृग्भिरवगन्तव्यम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



कुत :—

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे ।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखी सा
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः ॥ ३० ॥

(नेपथ्ये)

भो भोस्तपस्विनः ! सन्निहितास्तपोवनसत्त्वरक्षायै भवतः । प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो दुष्यन्तः ।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्तजलार्द्रवल्कलेषु ।
पतति परिणतारुणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ॥ ३१ ॥

अपि च —

तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसञ्जातपाशः ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारङ्गयूथो
धर्मारण्यं व्रजति च गजः स्यन्दनालोकभीतः ॥ ३२ ॥

(सर्वाः कर्णं दत्त्वा किञ्चिदिव सम्भ्रान्ताः ।)

राजा — (आत्मगतम्) अहो धिक् । सैनिका मदन्वेषिणस्तपोवनमुपरुन्धन्ति । भवतु । गमिष्यामि तावत् ।

---

व र्ज्याः 'ते' "[['मे']]'व'[323] इत्याद्याः पादादौ छन्दसां बुधैरिति काव्यलक्षणे श्रीनाथः । तव वचनेनैव अनृणा नामैषा । हळा (ला) मोचितासि त्वम् अनुकम्पिना आर्येण । अथवा महाराजेन[324] गच्छेदानीम् ॥ यदि आत्मने प्रभविष्यामि । परवशास्मीति भावः । "अ0 पणो" इत्यत्र "चतुर्थ्याः षष्ठीति[325] षष्ठीनिर्देशः । का त्वम् अत्र निरोधे[327] वा विसर्जने वा । अस्मिन्नेव मनः कीलितमिति भावः । "णिरोहे विस0जणे" इत्यत्र विरोह0मि विसा0जण0 मीति पाठेऽप्ययमेवार्थः ।[329] यथा अनुरक्ता इति शेषः । एवं तथेति प्रति उद्दिश्ये त्यर्थः[330] । स्यादिति अनुरक्तेति शेषानुषंगः ।

अभिमुखं यथा तथा । कामं यथेप्सियम् । मदेति ध्वनिः । तुकारः पादपूरणे । पूर्वास्माद्वैषम्यं द्योतयतीति केचित् । आकाशे गगन इति कश्चिचत्तत्र । अप्रविष्टैः[331] सहालापस्त-त्स्यादाकाशभाषितमिति लक्षणात् । सदिति सत्सु निहितं नियमेन हितं यत्तपस्तस्यावनं विघ्नेभ्यः परिपालनं तद्वत् सत्ररक्षायै रक्षणाय । प्रत्यासन्नः संनिकृष्टः । तदेवोपपादयति तथाहीति[332] । वल्कलेष्विति समस्तपदं मध्यमम् । व्यस्तं विशेषणं चार्विति कल्पलतोक्तेः । परिणतारुणः सायंतनसूर्यः: । महादीपः प्रदीपक इति हलायुधः । दादिवठी[333] इति महाराष्ट्रः[334] । तीव्रस्तीक्ष्णो निर्दय[335] इति यावत् । तीव्र[336] भृशं वा । आघातः प्रहारः ।[337] लग्नेति अनागरिकत्वादनिकृत्तया साग्रदन्त इति लक्ष्यते । व्रततिवलयानां लताजलानां आसमन्तात्सङ्गः संबन्ध एव सञ्जातः, पाशो यस्य । सेना रक्षास्तु सैनिका इत्यमरः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अनसूया** — अज्ज, इमिणा आरण्णगअउत्तन्देन पज्जाउलह्म। अणुजाणाहि णो उडअगमणस्स। (आर्य, अनेनारण्यगजवृत्तान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि नः उटजगमनाय।)

**राजा** — गच्छन्तु भवत्यः। वयमप्याश्रमपीडा यथा न भविष्यति तथा प्रयतिष्यामहे।

(सर्वा उत्तिष्ठन्ति)

**सख्यौ** — अज्ज, असम्भावितसक्कारं भूओ वि पेक्खणणिमित्तं लज्जेमो विण्णविदुं। (आर्य! असम्भावितसत्कारं भूयोऽपि प्रेक्षणनिमित्तं लज्जामहे विज्ञापयितुम्।)

**राजा** — मा मैवम्। दर्शनेनैव भवतीनां सत्कृतोऽस्मि।

---

आर्य! अमुना आरण्यकवृत्तान्तेन पर्याकुलाः[339] स्मः। अनुजानीहि नः उटजगमनाय। ''उडे''त्यत्र ''टो ड''[340] इति डत्वम्। आर्य! असंभावितसत्कारं भूयोऽपि प्रत्यवेक्षणनिमित्तं लज्जामहे आर्यं विज्ञापयितुम्। असंभावितः सत्कारो यस्मिन्विषये इति विवेकः। मनोरथपूरको यः सत्कारो भवत्यतिथिविशेषे क्रियते स एव भुवि संभावित इति भावः। प्रत्यवेक्षणं निमित्तं हेतुर्यस्मिन् कर्मणि। वर्धतेऽन्योन्यम् उत्कण्ठा यत्र तत् प्रत्यवेक्षणमित्यगस्त्यः। निमित्तं हेतुशकुनलक्षणेष्विति नानार्थमंजरी। दर्शनेन[341] सत्कृतोऽस्मीत्युपचारपर[342] एकोऽर्थः:। भवतीनां दर्शने अवलोकने न सत्कृतोऽस्मि। शुष्कफलदर्शने[343] सति किं फलमिति[344] ससमीपदविभागेनाऽन्योऽर्थः। अनुयात्रिकान् अनुयात्राशीलान् सैनिकानिति यावत्। ''मम हि'' इति। वातं वातं प्रति[345] **प्रतिवातम्** यथायथा[346] वातस्तथा [[तथा]]तथेति वार्थः।

नीयमानस्य[348] केतो[349] - ध्वजस्य चीनांशुकं सान्द्रपटमिव। सान्द्रं घनं चीनमपेलवं च निरन्तरं चेति केदारः। मम शरीरं कलेवरं, शरीरमिति निर्वेदकृतः प्रयोगः। पुरो यत्र सैनिकास्तत्रेत्यर्थः। गच्छति[350] व्रजति। असंस्कृतम् अविषयं विमुखं चेतो मनः। पश्चात् यत्र शकुन्तला तत्रेत्यर्थः। धावति पलायते। हि खेदे। हि प्रसिद्धौ च खेदे चेति केशवः। तथा च बहुभिर्बहिरङ्गैर्धारितं शरीरं चेतस्त्वन्तरङ्गमसहायभूतं[351] शकुन्तलायामेव लग्नमित भावः। वातमिति, शरीरं गच्छतीति,[352] [अ?]संस्कृतं चे [[त]]इति च प्रबन्धुः। कवेरचातुर्य [म्]इति बहवः। अतीतचरिततया न दोषा इति केचित्। इह ''गच्छती''ति[354] श्लोकस्य ''मम[355] हि'' इति पूर्ववाक्येन सह संबन्धो मान्यः। अत एव एकान्वयत्वं वाक्यानां पद्यानां च नो दोषकृदिति[356] दण्डी। चीनं शुभ्रमिति कोऽपि बभ्राम, तन्न। ''तन्वी नक्तमियं[357] चकास्ति शुचिनी चीनांशुके बिभ्रतीति[358] राजशेखरवाक्यविरोधात्। न च वाच्चं शुचिनी पवित्रे इति, तर्हि जो (ज्यो)त्स्ना[359]-ऽभिसारिकात्वं भंगापत्तेरिति दिक्॥

इति महाराजपदमहनीयतुक्कोजि[360] राजमहामात्येन मौनभार्गवकुलाकूपार[361]चन्द्रचौण्डो बाळाजिपौत्रेण [[कौडि(ण्डि)न्य[362]गोत्रपारावारनिस्तुलकौस्तुभर्ति[363]माजि बाळाजिदौहित्रेण]][364] काशीमहा[365] देवतनुजेन शाकम्भरीपरमहंसचिदंबरब्रह्मानुजेन - षष्टिप्रबंधी दश-[366]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य सह सखीभ्यां निष्क्रान्ता)

राजा — मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयात्रिकान् प्रत्यवेक्ष्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयामि। न खलु शक्नोमि शकुन्तलाव्यापारादात्मानं निवर्तयितुम् मम हि —

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्कृतं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥ ३१ ॥

इति निष्क्रान्ता:र्वे सर्वे।

## इति अभिज्ञानशाकुन्तले प्रथमोऽङ्कः ॥

---

भाषाभव्यकाव्याष्टपदीपदपद्य[368] वर्णविलसदन्यूनाक्षरमलिका[369]- यांस्तिव [[न]]-

कवनधौरंधरीपारिणेन गीतगाथासहस्रचतुष्टयचतुरदिव्य[371] - देवी ताटंक (?)[372] - लिपिकल्पकेन दुर्जनातिनिन्द्येन सज्जनाभिनन्द्येन सुन्दरीकमलाजानिना वश्यवचः सर्वज्ञ[373] - सरस्वतीनामत्रयमण्डितेन घनश्याम[374] - पण्डितेन भीष्मैकादशीनिशीथजागरण एवारब्धपरिपूरिते शाकुन्तलसञ्जीवनाख्यटिप्पणे प्रथमोऽङ्कः ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# ॥ अथ द्वितीयोऽङ्कः ॥

( ततः प्रविशति विषण्णो विदूषकः )

**विदूषकः** – (निश्वस्य) हा हदोह्मि एदस्स मिअआलीस्स रण्णो वअस्सभावेण। अअं मिओ अअं वराहो अअं सद्दूलो त्ति मज्झंदिणे गिह्मविरलपाअवच्छाआसु वणराईसु आहिण्डीअदि। पत्तसंकरकसाआइ कदुण्हाइ गिरिणईजलाइ पिज्जिन्दि। अणिअदवेलं सुल्लमंसभूइट्टं आहारं अण्हीअदि। तुरआणुधावणसंखुहिदसंधिणो मे रत्तिं वि णिआमं सइदव्वं णत्थि। तदो महन्ते एव्व पच्चूसे दासीएउत्तेहिं सगणलुद्धएहिं वण्णग्गहणकोलाहलेण पडिबोधिदो ह्मि। एदावन्तेण वि पीडा ण णिक्कमइ। तदो गण्डस्स उवरि पिडओ संवुत्तो। हिओ किल अहमेसु आहीणेसु तत्तहोदो मिआणुसारिण अस्समपदं पविट्ठस्स तावसकण्णआ सउन्दला णाम मह अधण्णदाए दंसिदा।

संपदं णअरगमणस्स कहं वि ण करेदि। अज्ज सविसेसं तं एव्व चिंतअंतस्स मे पहादं आसी अच्छीणं। का गई। जाव इमं किदोवचारपरिकम्माणं पेक्खामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एसो बाणासणहत्थाहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं जवणीहिं पडिउदो इदो एव्व आआच्छदि वअस्सो। होदु। अङ्गभङ्गविअलो विअ भविअ चिट्ठिस्सं। जइ एव्वं वि णाम विस्समं लहेअं। (इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः।) (हा हतोऽस्मि एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्यन्दिने ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिष्वाहिण्डयते। पत्रसङ्करकषायाणि कदुष्णानि गिरिनदीजलानि पीयन्ते। अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठमाहारोऽश्यते। तुरगानुधावनसंक्षुभितसन्धेर्मे रात्रिमपि निकामं शयितव्यं नास्ति। ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः श्वगणलुब्धैर्वन्यग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि। एतावतापि पीडा न निष्क्रामति।

---

अथ वृत्तावृत्तकथोपक्षेपात्मकं द्वितीयाङ्कस्याङ्गं प्रवेशकमारभते ॥ तत इत्यादि ॥ हा हतोऽस्मि एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन। हा हतोऽस्मीत्यादिकमश्लीलं नाटकादिषु न प्रयोज्यम्। तदपि मृतस्व[375] शिशोर्द्विजस्ये[376] – ति सर्वं च भक्ष्यं[377] कुलमित्यादिवद्द्यनीयम्॥ अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्यंदिने ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिष्वाहिंडय (ड्य)[378] ते। विलळाः (लाः) स्वल्पाः। आसमन्तात् हिंडनं[379] संचारः। पत्रसंकरकषायानि (णि) कदुष्णानि गिरिनदीजलानि पीयन्ते। संकरो मिश्रता। अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठम्[380] आहारोऽश्यते। शूले प्रोतं पक्वमग्नौ मांसं शूल्यमिति हेमचन्द्रः।

भूयिष्टं (ष्ठं) यथा तथा। आहारमिति भ्रान्तः पाठः। अशनं भक्षणम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः । ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारिण आश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता । साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति ।

अद्य सविशेषं, तदेव चिन्तयतो मे प्रभातमासीदक्ष्णोः । का गतिः ? यावदिमं कृताचारपरिकर्माणं पश्यामि । एष बाणासनहस्ताभिः वनपुष्पमालाधारिणीभिः यवनीभिः परिवृतः इत एवागच्छति वयस्यः । भवतु । अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि । यद्येवमपि नाम विश्रामं लभेय ।)

॥ इति प्रवेशकः ॥

---

तुरंगानुधावनकंटकितसन्धेर्मे रात्रिंदिवमपि[382] शयितव्यं नास्ति । कंटकिता संजात[383]कंटकाः सन्धयः पादसन्धयो यस्य । कंटक[384] शब्देन तत्कृत उपद्रवो लक्ष्यते । शयितव्यं शयनं कर्तव्यमित्यर्थः । स्वाप इति यावत् । स्यान्निद्रा शयनं स्वाप इत्यमरः । यतो महत्येव प्रत्यूषे[385] दासीपुत्रैः श्वगणिकलुब्धै र्वनगाहनकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि । प्रत्यूष उषसि श्वगणा[386] येषां सन्ति ते श्वगणिनस्त एव श्वगणिकाः । अल्पार्थे कप्रत्ययः श्वगणिकाः श्वधारिणश्च । लुब्धा व्याधाश्च[387] तैः वनगाहनम् आरण्यप्रवेशः । एतावताऽपि पीडा न निष्क्रामति[388] । यतो गण्डस्योपरि स्फुटिका संवृता । गण्डः कपोल इति हैमः । स्फुटिका गल्लजे व्रण इति त्रिकाण्डी । अत एव "गण्डव्सोवरि अवरो फुटिउ० भेदो[389] इति राजशेखरश्च । वयोभरे यूनां कण्ठादुपरि कामबाधेन[390] गल्लादिषु[391] जायमानो नरवासहनो (?) मार्जरविशेषमलभेदलेपापनोद्यो विस्फोटः स्फुटिकाशब्दार्थः । विस्फोटः स्फुटिकं[392] त्रिष्वित्यमरः । "मुरूम" इति महाराष्ट्राः । शतमप्यन्धाः कूपे पतन्तीति न्यायवदत्र पण्डितंमन्या बहवो भ्रमन्ति; विशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक् । ह्यः किलास्मस्वपहीनेषु तत्रभवते मृगानुसारिण आश्रमपदं[393] प्रविष्टाया(य) तापसकन्यका[394] शकुन्तला नाम ममा[395]धन्यतया दर्शिता । ह्यः [[पूर्वेद्युः]]। अपहीनेषु अपगतेषु । अधन्यतया अपुण्येन । सुकृती[397] पुण्यवान् धन्य इत्यमरः । साम्प्रतं नगरगमन[398] कथामपि न करोति । "कुणा" इति पाठे "कुञ:कुण[399] इति कुणादेशः । अद्य विशेषं[400] तमेव वृत्तान्तं चिन्तयतो मम प्रभातम् अक्ष्णोर् आसीत् । का गतिः । यावदेनं कृताचारपरिक्रमं पश्यामि । आचारो नित्यकर्म, परिक्रमः संचारः । एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृतः[401] इत एवाऽऽगच्छति[302] वयस्यः ।[403] भवतु[404] । अंगविकल इव भूत्वा स्थास्यामि । एवमपि नाम विश्रमं लभेय । ए० वमिति । अव्ययानामनेकार्थकत्वात् । अर्थात्[405] प्रकरणाल् लिङ्गादौचित्याद् अर्थनिर्णय इति न्यायबलाच्च एवमपीत्यस्यानेन प्रकारेण वेत्यर्थः । अत एव एवमपि सुखी भवामीति क्षेमेन्द्रः । **प्रवेशक इति** ॥ प्रवेशकस्तु विज्ञेयो नीच–[406] पात्रप्रयोजितः । एकेन बहुभि[407]र्द्वाभ्यां चरितार्थः स इष्यत" इति लक्षणात् ।]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(ततः प्रविशति यथोद्दिष्टपरिवारो राजा)

राजा –

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वासि ।
अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ॥ १ ॥

(स्मितं कृत्वा) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता जनो विडम्ब्यते ।

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव ।
मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्वं तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ॥ २ ॥

विदूषकः – (तथा स्थित एव) भो वहस्स ! हत्थे ण मे पसरन्दि । वाआमत्तेण विअई होहि । (भो वयस्य ! हस्तौ न मे प्रसरतः । वाङ्मात्रेण विजयी भव ।)

राजा – (सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः ?

---

प्रिया दयिता शकुन्तलेति यावत् । सुलभा न, ऋषिसंबन्धादिति भावः । मनस्तु ममेति शेषः । कामं पर्याप्तं यथा तथा तस्या[408] भावाः, अभिप्रायाः शृङ्गारचेष्टा वा, तेषां तासां वा दर्शने, अवगमेऽनुभवे वाऽऽयासि[409] दुर्लभत्वादायासशालीति निर्वेदो[410] व्यज्यते । कामं प्रकामं पर्याप्तभिति भावः । सत्ता स्वभावाभिप्रायचेष्टेति चामरः । अवगत्यनुभूतीच्छाशास्त्रालोकेषु दर्शनमिति शब्दार्णवः । नन्वायासमात्रेण मनोरथाभावात् कुतो वा मुधाप्रवृत्तिरित्याशंक्य किंचिदाशामूलमस्तीत्याह ॥ अकृतेति ॥ मनसिजे मदनेऽकृतार्थेऽरचित[411] प्रयोजने सत्यपि, उभयप्रार्थना स्त्रीपुरुषयोरन्योन्यमभिलाषः रतिं[412] सौख्यं कुरुते ।[413] तथा चान्यतराभिलाषे फलाभावः । प्रकृते द्वयोस्तुल्यमभिलाषाद्रतिः स्यादेवेति भावः । प्रार्थना त्वभिलाषेऽपीति रत्नमाला । भङ्ग्यन्तरेणोल्लिखति[414] स्मितमिति । स्निग्धं प्रेम चिक्कणं यथा तथा । तया यद्वी(द्वी)क्षितं यच्च यातं यदपि सखी उक्ता तत्सर्वं विलसितमिति शेषः । अहं[415] परं भृशम्, अयनं स्थानं[416] यस्य तत्, मतपरायणम् इतीत्यध्याहारः । कामी[417] स्वताम् आत्मीयत्वम् उद्दिश्य पश्यति । किल–अहो आश्चर्य[418] इति योजना सूक्ष्मदृग्भिर्बोध्या । त्रिष्वात्मीये स्व इत्यमरः । भो वयस्य ! न मे हस्तपादाः प्रसरन्ति । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भाव[419] इति प्रायिकम् । अत एव राजहंसास्तु ते चंचुचरणैरित्यमरः । ते व्यापिनोऽपि ह्नाभ्योरिति बाहटच । वाङ्मात्रेण विजयी भव । पादाभ्यां(भ्या) –मुत्थाने[420] हस्ताभ्यामञ्जल्यभिधानये (0धाने) च शक्तिर्नास्तीति भावः । कुतोऽपि किल । स्वयमेवाक्षि[421] आकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छति । "अव्खी"ति कवेः प्रमादः । "अक्ष्यादिषु छ"[422] इति विशेषसूत्रस्यावतारात् । यद्वेतसः कुब्ज (ब्ज) – लीलां विडम्बयति[423] । कुब्ज[424] वक्रग्रीभवतीत्यर्थः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषक :** — कुदो किल सअं एव्व अच्छी आउलीकरिअ अस्सुकारणं पुच्छसि ? (कुतः किल स्वयमेवाक्षिणी आकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि ?)

**राजा** — न खल्ववगच्छामि ।

**विदूषकः** — भो । वयस्स ! जं वेदसो कुज्जलीलं विडम्बेदि तं किं अत्तणो पहावेण उद णईवेअस्स ? (भो वयस्य ! यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति तत्किमात्मनः प्रभावेण उत नदीवेगस्य ?)

**राजा** — नदीवेगस्तत्र कारणम् ।

**विदूषकः** — मह वि भवं । (ममापि भवान् ।)

**राजा** — कथमिव ?

**विदूषकः** — एव्वं णाम तुए राअकज्जाई उज्जिअ एआरिसेसु एव्व आउलप्पदेसेसु वणअरउत्तिणा होदव्वं । अहं उण सच्चं पच्चहं सावदसमुस्सा रणेहिं संखुहिदसन्धिबन्धाणं मम् दत्ताणं अणीसोम्हि संवृतो । त पसीददु विसज्जेहि मं पक्काहं वि विस्समिदुं । (एवं नाम त्वया राजकार्याण्युज्झित्वा एतादृशेष्वेवाकुलप्रदेशेषु वनचरवृत्तिना भवितव्यम् । अहं पुनस्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां मे गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः । तस्मात्प्रसादयिष्यामि । विसर्जय मामेकाहमपि विश्रमितुम् ।)

**राजा** — (आत्मगतम्) वयस्यश्चैवमाह ( ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः । कुतः ?

---

तत्किमात्मनः प्रभावेन(ण) उत नदीवेगस्य ।[425] वेतस इति नीर्वंजि[426] इति द्रविडाः । ममापि भवान् । एवं त्वया राजकार्याणि समुझिझ (ज्झि) त्य[427] [[ए]]तादृश[428] आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना भवितव्यम् । आकुलेति । दुष्टजन्तुभिरिति भावः । अहं पुनः सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां गात्राणाम् अनीशोऽस्मि[429] संवृत्तः । गात्राणाम् अवयवानाम्, अत्र बन्धस्य गात्रस्येति केचिज्जामातृशोधं कुर्वन्ति, तन्न । वपुष्यवयवे गात्रमिति पदमालायाम् अभिधानात् । अनीशोऽसमर्थः । तस्मात्प्रसादयिष्यामि[430] । विसृज माम् एकाहमपि तावद्विश्रमितुं, त्वमेक एव गच्छेति[431] वाक्यशेषः । अन्यथा स्थितो[432]ऽस्मीति वक्ष्यमाणवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः । एकाहमिति कालाध्वनो[433] - रिति द्वितीया । ध्वनिदोष इति केचित् । "एकाहममि कौन्तेयेति" भारतप्रयोगवदुपपत्तेरित्यन्ये, आर्षत्वात्तत्र न दोष इति बहवः ।

काश्यपसुतां शकुन्तलाम् । मृगयायां विह्वलं विक्लवं निराशमिति यावत् । **सहवसतिं** सहवासम् । मुग्धविलोकितं मनोज्ञविलोकनमेवोपदेशः । शकुन्तलाया गुरवो मृगा[434] मया[435] पूज्या इति भावः । प्रियाया इति संबन्धे षष्टी(ष्ठी) । अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते । अरण्ये मया रुदितम् । "अरण्ये[436] इति [[कवेः प्रमादः । "लोपो रण्णे"[437] इति]]अकारलोपस्य

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो
धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु ।
सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः
कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः ॥ ३ ॥

विदूषकः – (राज्ञो मुखमवलोक्य) अत्त भवं किं वि हिअए करिअ मन्देदि अरण्णे रुदिदं मए। (अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये रुदितम् मया।)

राजा – (सस्मितम्) किमन्यत् ? अनतिक्रमणीयं सुहृद्वचनमिति स्थितोऽस्मि।

विदूषकः – चिरं जीअ। (चिरं जीव।) (इति गन्तुमिच्छति।)

राजा – वयस्य ! तिष्ठ। सावशेषं मम वचः।

विदूषकः – आणवे़दु भवं। (आज्ञापयतु भवान्।)

राजा – विश्रान्तेन भवता ममान्यस्मिन्ननायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

विदूषकः – किं मोदअखण्डणेसु ? (किं मोदकखण्डनेषु ?)

राजा – यत्र वक्ष्यामि।

विदूषकः – गहीदो खणो। (गृहीतः क्षणः।)

राजा – कः कोऽत्र भोः !

(प्रविश्य दौवारिकः)

दौवारिक : – (प्रणम्य) आणवेदु भट्टा। (आज्ञापयतु भर्ता)

राजा – रैवतक ! सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

---

वक्तव्यत्वात्। अत एव "राण" इति महाराष्ट्राः।[439] आज्ञापयतु भवान्।[440] किं मोदु (द) – कखण्डेषु[441]। भक्षणायेति शेषः। खण्डः शर्कराभेदः। त्वद्गिर एव खण्ड इति, श्रीहर्षः। खडेसाखर[442] इति महाराष्ट्राः। गृहीतः क्षणः[443]। निर्व्यापारक्षणौ स्थितौ[444] क्षण इति धरणिः। कव्यनिमन्त्रणे दर्भग्रहणं च क्षण इति परिहासोक्तिः[445]। आज्ञापयतु भर्त्ता। तथा आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः। अदृष्टो न दृष्टो दोषो गुणाभावो यस्याम्। राजा भट्टारको[446] देव इत्यमरः। स्फालनेन[447] पूर्वम्, आदौ क्रूरम् अङ्गुल्यादिषु कठोरं क्रूरपूर्वम्, वक्ष्यमाणगुणेभ्यः पूर्वमिति बोध्यम्। सहिष्णुः सहन इत्यमरः। लेशै बिन्दुलवैः। अभिन्नम् अभेदितं तेषु सत्स्वपि यथाभूतमित्यर्थः। भिन्नभेदितावित्यमरः। अपचितं कृशमपि व्यायतत्वात्, व्यायामवत्त्वात्[448]। व्यायामो व्याधिनाशन इति धन्वन्तरिः।[449]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**दौवारिकः** — तह । (इति निष्क्रम्य सेनापतिना सह प्रविश्य) एसो अण्णावअणुक्कण्ठो भट्टा इदो दिण्णदिट्ठी चिट्ठइ । उवसप्पदु अज्जो । (तथा । एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिस्तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः ।)

**सेनापतिः** — (राजानमवलोक्य) अदृष्टदोषे स्वामिनि मृगया केवलं सगुणः संवृतः । तथा हि देवः —

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्वं
रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम् ।
अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं
गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति ॥ ४ ॥

(उपेत्य) जयतु स्वामी । निगृहीतश्वापदप्रचारमरण्यम् । किमद्यापि स्थीयते ?

**राजा** — सेनापते ! भग्नोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना मांडव्येन ।

**सेनापतिः** — (जनान्तिकम्) सखे ! स्थिरप्रतिज्ञो भव । अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये। (प्रकाशम् ।) प्रलपत्वेष वैधेयः । ननु प्रभुरेव निदर्शनम्।

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।

---

व्यायामी व्यायतो बलीति यादवः । व्यायामः खुरळी(ली)-ति रुद्रः । तालीम इति महाराष्ट्राः। न विद्यते लक्ष्यं गणनीयं यस्य तदलक्ष्यम् । गात्रं वपुः । कर्मपुरुषाधिष्ठानतया गात्रस्यौपचारिकोऽसावलक्ष्यत्वानिर्देशः । नागः कुञ्जरसर्पयोरिति रभसः । प्राणसारं शक्तिस्थिरांशमिव । शक्तिः पराक्रमः[450] प्राण इति, सारो बले स्थिरांशे चेति चामरः । बिभर्ति[451] धारयतीत्यर्थः । अन्यनिर्बन्धाभावेन स्वच्छन्दसंचारितया जातु संक्लिष्टोऽपि सर्पः कुञ्जरश्च यथा सत्त्वप्रधानस्तथैवायं राजेति भावः । पद्येऽस्मिन् बहवो भ्रमन्ति ॥ गृहीतो वागुरादिसाधनैः कुण्ठितो मृगप्रचारश्च तुष्यात्संचारो यस्मिन् । पशवोऽपि मृगा इत्यमरः

मांडव्य इति विदूषकस्य नाम, शाकल्यबाभ्रव्यमंमांडव्येति[452] सूत्रप्रयोगात् माढव्येत्यविचारितः पाठः । मूर्खवैधेयेत्यमरः । निदर्शनं[453] दृष्टान्तः । मेदो मांसवृद्धावि[454]त्यमरमाला । लघु अस्थूलम्[455] भयक्रोधयोः सतोर् विकृतिमद्विकारशालि । चित्तं लक्ष्यते ज्ञायते परिचयविशेषादिति भावः । यत्सिध्यन्ति स उत्कर्षश्चेत्यन्वयः । मिथ्या मृषा । ईदृग् ईदृशः । अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः । प्रकृतिस्तु[456] स्वभावे च स्थैर्ये[457] चेति सारस्वतः । आपन्नः[458] प्राप्तः, आपत्प्राप्त इति ध्वनिः । त्वं तावद् अटवीतोऽ[459] टवीं हिण्डित्वा[460] इदानीं नासिकामांसलोलुपस्य कस्यापि जीर्णऋक्षस्य (जीर्णर्क्षस्य)मुखे पतितो भवसि । नासिकामां[461]समिति कोमलत्वसूचनायोक्तम् । तावद्भवसि भविष्यसीत्यर्थः । तथा च कोऽपि स्थविर[462]भल्लूको

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले ।
मिथ्या हि व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥ ५ ॥

विदूषकः – अत्त भवं पकिदिं आवण्णो। तुमं दाव अडवीदो अडविं भमण्णरमांसलोलुवस्स कस्स वि जुण्णरुक्खस्स मूहे णिपडिस्ससि। (अत्रभवान् प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीं भ्रमन्नरमांसलोलुपस्य कस्यापि जीर्णऋक्षस्य मुखे निपतिष्यसि।)

राजा – भद्र सेनापते ! किं बहुना। आश्रमसन्निकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्तव वचो नाभिनन्दामि। अद्य तावत् –

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ।
विस्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः ॥ ६ ॥

सेनापतिः – यत् प्रभविष्णवे रोचते।

राजा – तेन हि निवर्तय पूर्वगतान् वनग्राहिणः। यथा च मे सैनिकास्तपोवनं दूरात् परिहरिष्यन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य–

शमप्रधानेषु तपोधनेषु
गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-
स्तदन्यतेजोभिभवाद्वमन्ति ॥ ७ ॥

सेनापतिः – यदाज्ञापयति स्वामी।

विदूषकः – धंसिदो दे उस्साहउत्तन्दो। गच्छ दासीए उत्त।(ध्वंसितस्ते उत्साहवृत्तान्तः। गच्छ दास्याः पुत्र।

---

नैसर्गिकांगुळी(ली) नोदनपरिहासचुम्बनादिषु तव नासिकामांसं खण्डयिष्यतीति भावः॥ गाहन्ताम् प्रविशतुं(शन्तु)[463] ॥ निपानं[464] स्यादुपकूपजलाशय इत्यमरः। गंज इति महाराष्ट्राः। जलगर्तविशेषा इति केचित्। छायायां बद्धं कदंबकं[465] समूहो येन। रोमन्थमधरस्पंदम्।[466] रोतं इति महाराष्ट्राः[467]। विस्र(श्र) ब्धं प्राप्तविश्वासं यथा तथा। वनग्राहिणो जालिकादयः। तपोवनदूषणे बाधकमाह– पश्येति। दाहस्याऽत्मा धृतिर्यस्मिन् तत् दाहात्मकम्। आत्मा यत्नो धृतिरित्यमरः। हि प्रसिद्धौ। तत् दाहात्मकं तेजः कर्म। अन्यतेजसा [[सूर्यतेजसा]]-ऽभिभवात् संघर्षात्[469]। तपोधना ह्यस्मदनुरोधे संतारकाः[470], किंचिदपराधे[471] संहारका इति भावः। ध्वंसितस्त उत्साहवृत्तान्तः। यद्देव

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



( निष्क्रान्तः सेनापतिः ।)

राजा – (परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेषम्। रैवतक। त्वमपि नियोगमशून्यं कुरु ।

परिजनः – जं देवो आणवेदि । (यद्देव आज्ञापयति ।)

(इति निष्क्रान्तः ।)

विदूषकः – किदं भवदा दाणिं णिम्मक्खिअं । संपदं एदस्सिं पाअवच्छाआए अविरललदाविदाणसणाहे आसणे णिसीददु भवं जाव अहं वि सुहासीणो होम्मि । (कृतं भवतेदानीं निर्मक्षिकम्। साम्प्रतमेतस्यां पादपच्छायायां अविरललतावितानसनाथे आसने निषीदतु भवान् । यावदहमपि सुखासीनो भवामि ।)

राजा – गच्छाग्रतः ।

विदूषकः – इदो इदो भवं । (इत इतो भवान् ।)

( उभौ परिक्रम्योपविष्टौ ।)

राजा – सखे ! अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि । येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम् ।

विदूषकः – णं भवं अग्गदो मे वट्टइ । (ननु भवानग्रतो मे वर्तते ।)

राजा – सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति । अहं तु तामेवाश्रमललामां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि ।

---

आज्ञापयति । कृतं भवता निर्मक्षिकमरण्यम् । संमर्दो विरत इति भावः । साम्प्रतमेतस्मिन् पादपछायया विरळ(ल)दळ(ल) लतावितानसनाथ आसने निषीदतु भवान्। अहमपि सुखासीनो भवामि । विरलेति छायावशाद्दळा(ला)नां सान्द्रता नास्तीति भावः । विरलदळा(ला)श्च[472] ता लतास्तासां वितानं[473] समूहस्ता एव वितानमुल्लोचो वार्थः । तेन सनाथे युक्ते । आसने दारुशिलामृण्मयादिष्वेकस्मिन्निति भावः । सुखं यथा तथाऽऽसीन इकि, सुखाचासावासीन[474] इति वार्थः । त्रिषु द्रव्ये पापपुण्य[475]सुखानीत्यमरः । एतु एतु भवान् । [[ननु]][476]भवानग्रतो मे वर्त्तते, दर्शनपथाछा(च्छा) दक[477] इति परिहासोक्तिः । ''वटई'' त्यत्र[478] ''र्त्तस्य ट'' इति टत्वम्। [[भवतोऽपि[479] दर्शनीयः क इति विदूषकोक्तिभावादाह – सर्व इति । कृत्स्नः स्वकीयं खलु । कातं (न्तं) मनोहरं पश्यतीत्यर्थः । तथा च मांडव्यो मां(ऽयम्) अहं शकुन्तलां चारुं पश्यामीति भावः । आश्रमः पर्णशाला ग्र(गृ)हस्थाश्रमाश्च[480] । तस्यास्तस्य[481] च ललामं भूषा प्रधानकेतूष्वित्यमरः[482] ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** – (स्वगतम्) होदु, णास्स अवसरं दाइस्सं। (प्रकाशम्) भो वयस्स! अज्ज तावसकण्णआ किं अब्भत्थणीआ दीसइ? (भवतु, नास्मै अवसरं दास्यामि। भो वयस्य! अद्य तापसकन्यका किमभ्यर्थनीया दृश्यते?)

**राजा** – सखे! न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते।

**विदूषकः** – ता कहं एदं? (तत् कथमेतत्?)

**राजा** – सुरयुवतिसम्भवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।
अर्कस्योपरि पतितं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ॥ ८ ॥

**विदूषकः** – (विहस्य) भो वअस्स! जह कस्स वि पिण्डखज्जूरेहिं उव्देजिदस्स तिंतिणीफलम्मि अहिलासो भवे तह इत्थिआरअणपरिभविणो भवदो इअं अब्भत्थणा। (भो वयस्य! यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरु द्वेजितस्य तिन्त्रिणींफलेऽभिलाषो भवेत् तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना।)

**राजा** – न तावदेनां पश्यसि येन त्वमेवमवादीः।

**विदूषकः** – तं खु रमणीज्जं एव्व। जं भवदो वि विम्हअं उप्पादेदि। (तत्खलु रमणीयमेव यद्भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति)

**राजा** – वयस्य! किं बहुना?

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रुपोच्चयेन विधिना मनसा कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ ९ ॥

---

भवतु, नास्यावसरं दास्यामि। अवसरं वचनावका[403]शमिति यावत्। भो वयस्य! अद्य ते तापसकन्यकापि[484] किमभ्यर्थनीया दृश्यते। परिहार्ये निन्धत्वेन वन्द्यत्वेन वेति भावः। न प्रवर्त्तत इति योज्यम्। सुरयुवतिर्मेनका[485]। मुनेः काश्यपस्य। तद् असाधारणम् अपत्यम् पोषिता दुहितेति भावः। उझिझ (ज्झि) ताधिगतमिति कौशिकराजर्षिणोद्धिझ[486](ज्झि) तं, काश्यपेनाधिगतं प्राप्तमिति प्रथमाङ्कोक्तः कथासन्दर्भो[487] ग्राह्यः। अर्कस्यार्कवृक्षस्य, "रुईति" महाराष्ट्राः। च्युतं वृन्ताद् इति शेषः। अर्केण मल्लिकापुष्पमिव काश्यपेन शकुन्तला दैवो(वा) त्[488] प्राप्तेति भावः। भो वयस्य, यथा कस्यापि पक्वखर्जुरैरुद्वेजितस्य तिंत्रि (न्ति) ण्याम्[489] अभिलाषां भवेत्तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयम् अभ्यर्थना। पेंड खर्जूर"[490] इति महाराष्ट्राः। स्त्रत्नान्यन्तःपुरसुन्दर्यः, तासु(सां) विषये परिभाविनः तिरस्कारिणः।" इ. थि आ" इति स्त्रीवाचकोनिपातः। तावच्छब्दो वाक्यालङ्कारे। येन कारणेनेत्यर्थः। तत्खलु रमणीयमेव यद्भवतोऽपि विस्मयम् उत्पादयति। विधिना ब्रह्मणा, सा **चित्रे** निवेश्म(श्य)[491] विन्यस्व(स्त)[492]रूपोच्चयेन[493] सौन्दर्यसमुदायेन परिकल्पितः सत्त्वयोगो, जीवकला सम्बन्धो यस्याम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** — जह एव्वं प च्चादेसो खु रुववदीणं ( यद्येवं प्रत्यादेशः खलु रुपवतीनाम् ।)

**राजा** – इदं च मे मनसि वर्तते ।

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ १० ॥

**विदूषकः** – तेण हि लहु परित्ताअदु णं भवं । जह मा कस्स विं इङ्गुदीतेल्लचिक्कणसीसस्स हत्थे पडिस्सदि । (तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान् । यथा मा कसापि तपस्विन इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति ।)

**राजा** – परवती खलु तत्रभवती । न च सन्निहितो गुरुजनः ।

**विदूषकः** – अह अत्तभवन्दं अन्दरेण कीरिंसो से दिंट्ठिराओ ? (अथात्रभवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः ?)

---

सत्वं (त्त्वं) जीवकलायां च सत्तायामिति मुकुटः । नु अथवा । नु विकल्पाथवार्त्ति (त्रि) ष्विति केदारः । मनसा कृता । नन्वमू[494] उल्लेखावनुकल्पौ । अयमेव प्रथमः कल्प इत्याह – स्त्रीति धातुर[495] ब्रह्मणो विभुत्वं सर्वसाधारणनिर्माणसामर्थ्यं तस्या[496] वपुश्च असाधा रणसर्वातिशा-यिलावण्यनिधानमनुचिन्त्य विभाव्य मे(से)-यम-(म्) अपरा न विद्यते परोत्कृष्टा यस्याः सा स्त्रीरत्नसृष्टिं प्रतिभाति तथा[497] चेयमीदृशी तादृशीति वक्तुमशक्येति भावः । अस्मिन्[498] पद्येऽपि बहवो भ्रमन्त एव किमपि किमपि व्याकिर्षुः । विशेषज्ञा प्रमाणमिति दिक् । यद्येवं प्रत्यादेशः सा इदानीं रूपवतीनाम् । इदानीं सा[499] शकुन्तला एवम् असाधारणी यदि चेद् रूपवतीनां प्रत्यादेशो निरासः[500] इत्यर्थः । प्रत्यादृ(दि) ष्टो निरस्तः स्यादित्यमरः । **अनघं** निर्दोषम् तत्प्रसिद्धं रूपं लावण्यं कर्तृ (र्तुः) । अनाघ्रातं पुष्पं । आघ्रातं पुष्पं नेति यावत् । एवं सर्वत ऊह्यम् । आविद्धम्[502] वक्रमिति विश्वः । मधु मकरंदः[503], माक्षिकंच पानमित्यपि कवेर्भावः[504] । रसः सारः । नवमिति सर्वत्र योज्यम् । भोक्तारं तस्या इति शेषः ।[505] विधिर्ब्रह्मा दैवं च ।

तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान् । लघु[506] शीघ्रम् । यावत् कस्यापि तपस्विन {म्}इङ्गुदीतैलचिक्कणशीर्षस्याऽऽरणकस्य हस्ते न पतति । इङ्गुदी तापसतरुस्त[507] [स्य-]तैलं[508]-A वीर्यनाशकमिति गुणपाठे "ह० थे" इत्यत्र" स्तस्य थ"-[508]-B इति र्यत्वम् । परवती पराधीना, तत्रभवती[509] पूज्या । अथ तत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशो स्याद्दृष्टिरागः । अथेति प्रश्ने । अन्तरेण[510] विनेत्यर्थः । **मयि अभिमुखे** सति, त्त(त, या ईक्षितम् अवलोकनं, संहृतम्[511] उपसंहृतम् । संहृतमिति ध्वनिः ।

अन्यकारणकृतोदयं यता तथा हसितं हासः कृत इत्यर्थः । विनयेन वारितानि, वारिताऽपवारिता[512] वाऽऽच्छा-(च्छा)दितेति यावत् । वृत्तिः शृङ्गारचेष्टा यस्य, "वृत्तिः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा — निसर्गादप्रगल्भस्तपस्विकन्याजनः । तथापि तु ।

**अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम् ।**

**विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृतः ॥ ११ ॥**

विदूषकः — किं णु खु सा दिट्ठमत्तस्स एव्व तुह अङ्कं आरोहदि ? (किं नु खलु सा दृष्टमात्रस्यैव तवाङ्कमारोहति ?)

राजा — मिथस्सखीभ्यां प्रस्थाने शालीनतयापि भूयिष्ठमाविष्कृतो भावः । तथा हि —

**दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे**
**तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा ।**
**आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती**
**शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ॥ १२ ॥**

विदूषकः — जइ एव्वं गहीदपाहेओ होहि । किदं तुए उववणं तवोवणं ति पेक्खामि । (यद्येवं गृहीतपाथेयो भव । कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि ।)

राजा — सखे, तपस्विभिः कैश्चिदिहस्थः परिज्ञातोऽस्मि । चिन्तय तावत् केनापदेशेन सकृदप्याश्रमपदं प्रविशामः ।

विदूषकः — को अवरो अवदेसो । ण भवं राआ । (कोऽपरोऽपदेशः । ननु भवान् राजा ।)

---

शृंगारचेष्टायामवस्छा(स्था)ने च जीवन" इति पदार्थमाला । विवृतः प्रकटितः[513], संवृत्तः पिहितः । तस्मान्माध्यस्थ्ये[514] वर्तत इति भावः । किन्नु खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कम् आरोहतु । मिथ रहसि [515] शालीनता[516] अधैर्यम् । **अकाण्डे** सहसेत्यमरशेषः ॥ यद्येवं गृहीतपाथेयो भव । द्रुतं यतस्वेति[517] भावः । "पाथेय"[518] इत्यनेन कविना निजं द्रविडत्वं सूचितम् । अत एव "जारि सो कईतारि [519] सौक० [520]]]दबंध० छाअ०त्ति" (?) राजशेखरः । पाहओ इति कवेः प्रमादः । परवलोप लअघणो[521] सोपाये अंबाध अंचरा[522] असभा । पचस्येषु[523] न हत्वम् । प्रायोवृत्तिप्रसंगेनेति स्मरणात् । केचित् इदमविज्ञायैव व्याचक्रुः । कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिव पश्यामि । इवेत्य-ळी(ली) के । अपदेशो व्याजः । कोऽवसरः को वाऽपदेशः । त्वं राजा, ननु नीवारषड्भागं[524] मे तापसा उपहरन्त्विति[525] । नीवाराः[526] तृणधान्यानि । भागधेयं भाग्यमित्यमरः । निष्पद्यते सिद्धं भवतीत्यर्थः । सिद्धे निर्वृत्त[527]निष्पन्नावित्यमरः । निपततीति कुपाठः । यत्तु भागधेयमित्यर्थः: । तुशब्दो वाक्यालङ्कारे । पूर्ववाक्ये तच्छब्दोऽध्याहर्तव्य[528] इति कश्चन व्याचकार, तन्न । उत्तरवाक्ये यच्छब्दे पूर्वावाक्येन तच्छब्दनियमा(म) इत्यालंकारिकाः । अत एव "आभाति यत्कृतिरिति" [[भोजः । असंख्यद्रव्यमूल्यत्वाद्रत्नग्रहणम् । वर्णेभ्यो[529] द्विजादिभ्यः[530] ।]]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा – ततः किं ?

विदूषकः – णीवारसट्टाभाअं तापसा अह्माणं उवहरंदुत्ति । (नीवार-षड्भागं तापसा अस्माकमुपहरन्त्विति ।)

राजा – अन्यद्भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति यद्रत्नराशीनपि विहायाभिनन्द्यम्। पश्य,

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम् ।
तपष्षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यको जनः ॥ १३ ॥

( नेपथ्ये )

हन्त, सिद्धार्थौ स्वः ।

राजा – (कर्णं दत्वा) अये धीरप्रशान्तस्वरैः तपस्विभिर्भवितव्यम् ।

( प्रविश्य दौवारिकः ।)

दौवारिकः – जदु भट्टा । एदे खु दुवे इसिकुमारा पडिहारभूमिं उवट्ठिदा ।

(जयतु भर्ता । एतौ खलु द्वावृषिकुमारौ प्रतिहारभूमिमुपस्थितौ ।)

राजा – तेन ह्यविलम्बितं प्रवेशय तौ ।

दौवारिकः – अअं पवेसेमि । (अयं प्रवेशयामि ।)

( इति निष्क्रम्य ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य ।)

इदो इदो भअवंदौ । (इत इतो भगवन्तौ)

( उभौ राजानं विलोकयतः )

---

क्षयि नश्वरम् । आरण्यका[531] स्तापसाः । अत्र कश्चिदारण्यका इति बहुवचनाद्ददन्ति[532] इति वक्तव्यम्[533], ददतीति पाठे त्वारण्यक इत्येकवचनं युक्तमति व्याचकार। नमस्मस्मै, नमसी तस्य व्युत्पत्तये, नमांसि च तद्व्याख्यानाय ॥

सिद्धार्थाविति स्वयं राज्ञ एवागमनादिति[534] भावः । धीरं गम्भीरं च तत्प्रशान्तम्। धीरो मनीषिगंभीरवियातेष्विति[534] शब्दार्णवः । नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वेति लक्षणादाह तपस्विभिरिति । जयतु भर्ता। एतौ द्वावृषिकुमारकौ प्रतिहारभूमिमुपस्थितौ ।[535] प्रतिहारः प्रतीहारो, द्वारं द्वाः स्त्रीति द्विरूपः । द्वारपालभूमिमिति कश्चित्तत्र । राजानं[536] प्रति द्वारपालेनैव द्वारपालभूमिमिति निवेदनस्यानौचित्यात् । अहं प्रवेशयामि । इत इतो भगवन्तौ। विश्वेति राजत्वप्रयुक्ता भयंकरता नास्तीति[537] भावः । **सर्वं वस्तुजातं भोग्यम्** यस्मिन्, अनागरिकत्वेन स्वात (तं) त्र्यां(त्र्या)[538]दिति भावः । वसतिर्वासः । अध्याक्रान्ता[539] साधिता । वसतिस्तु गृहे रात्रौ[540] वासे

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रथमः** — अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयता वपुषः । अथ वा उपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि । कुतः ?

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये
रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति ।
अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ॥ १४ ॥

**द्वितीयः** — गौतम, अयं स बलभित्सखः पार्थिवो दुष्यन्तः ।

**प्रथमः** — अथ किम् ।

**द्वितीयः** — तेन हि-

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-
मेकः कृत्स्नां नगरपरिघप्रांशुबाहुर्भुनक्ति ।
आशंसन्ते सुरयुवतयः त्यक्तभोगा हि दैत्यै —
रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरुहूते च वज्रे ॥ १५ ॥

**उभौ** — (उपगम्य) विजयस्व राजन् ।

**राजा** — (आसनादुत्थाय) अभिवादये भगवन्तौ ।

**उभौ** — स्वस्ति भवते । (इति फलान्युपहरतः ।)

**राजा** — (सप्रणामं प्रतिगृह्य) आज्ञापयितुमिच्छामि ।

**उभौ** — विदितो भवानाश्रमवासिनामिहस्थः । तेन भवन्तं प्रार्थयन्ते ।

**राजा** — किमाज्ञापयन्ति ?

**उभौ** — तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षांसि न इष्टिविघ्नमुत्पादयन्ति । तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति ।

---

चेति । अध्याक्रान्तिस्तु साध[[ने]]इति पदमाला-मेदिन्यौ । रक्षायाः रक्षणस्य योगादुपायाद् युक्तेर्वा । तपोभंगभीरु तपोधननियुक्ततयेति भावः । संचिनोतीति । संचिनोति वर्धयतीति केदारः । वशिनः स्वाधीनेन्द्रियस्य । द्युतिमान् धृतिमान् वशीति नारदाक्तेः । द्वन्द्वैर्मिथुनैः । ऋषिर्मुनिरिति जयः । भृशार्थेऽपि च केवलमिति वामनः । राजशब्दः पूर्वो यस्य राजपूर्वो मुनिः । हिरण्यपूर्वंकशि[[पु]]मिति माघः । प्रकृते[543] राजर्षिरिति शब्दो द्यां स्वर्गं स्पृशतीति फलितोऽर्थः । तथा चाश्रमवास-तपोवर्धन-स्वर्गविख्यातिमत्वाद् असावृषिभ्यो नातिभिन्न इति भावः । संचिनोतीति ध्वनिः । ओमित्यथकिम् इत्यंगीकार इति वैजयन्ती । परिघः परिघातनो दण्डभेदः, तद्वदुन्नतभुजो महत्त्वादिगुणसूचनाय नगरेत्युक्तम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा — अनुगृहीतोऽस्मि ।

विदूषकः — (अपवार्य) इअं दाणिं अणुऊला अब्भत्थणा । (इयमिदानीमनुकूलतरा अभ्यर्थना)

राजा — (स्मितं कृत्वा) रैवतक, मद्वचनादुच्यतां सारथिः । सबाणकार्मुकं रथमुपस्थापयेति ।

दौवारिकः — जेदु भट्टा । जं देवो आणवेदि । (जयतु भर्ता । यद्देव आज्ञापयति ।)

(इति निष्क्रान्तः ।)

उभौ — (सहर्षम्)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि ।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः ॥ १६ ॥

राजा — (सप्रणामम्) गच्छतां पुरो भवन्तौ । अहमप्यनुपदमागत एव ।

उभौ — विजयस्व । (इति निष्क्रान्तौ ।)

राजा — मांडव्य, अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम् ?

विदूषकः — पढमं सपरिवाहं आसी । दाणिं रक्खसउत्तन्देण बिन्दु वि णावसेसिदो । (प्रथमं सपरिवाहमासीत् । इदानीं राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः ।

राजा — मा भैषीः ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे ।

विदूषकः — एव्वं जइ एसो रच्छेहिंतो रक्खिदोह्मि । (एवं यदि एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि ।)

(प्रविश्य दौवारिकः)

दौवारिकः — जेदु भट्टा । सज्जिओ रहो भट्टिणो विअअपत्थाणं अवेक्खदि । एसो उण णअरादो देवीणं आणत्तिहरो उवट्ठिदो । (जयतु भर्ता । सज्जितो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्षते । एष पुनः नगरादेवीनामाज्ञप्तिहरः करभक उपस्थितः ।)

---

·उदधय [[ए]]व[544] श्यामसीमाः श्यामलमर्यादा यस्याः, तां धरित्रीं भुनक्तीति[545] यद् एतन्न चित्रमित्यन्वयः । भुनक्ति पाति गोपायतीति माठरः । इष्टियोगे[546]च्छयोरित्यमरः ! सध्री[547] च सहायेन। अपवार्य रहसी[548]त्यर्थः । इयमिदानीं तेऽनुकूलाऽभ्यर्थना । यद्देव आज्ञापयति[549] । पूर्वेषां राज्ञामिति शेषः । युक्तरूपं भृशं युक्तम् इत्यगत्स्यः । इदं चरितमिति शेषः। आपन्नेभ्योऽभयानि भयाभावाः, भयदूरीकरणानीति यावत् । तान्येव सत्राणि ।

प्रथमं सपरिवाहम्[550] आसीदिदानीं राक्षसवृत्तान्तेन पुनरस्य बिन्दुरपि नावशेषितः । परिवाहेन सहितं सपरिवाहम् यथा तथा कुतूहलमासीद् इत्यर्थः । {सें}अस्य परिवाहस्येति यावत् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** — (सादरम्) किमम्बाभिः प्रेषितः ?

**दौवारिकः** — अह इं । (अथ किम् ।)

**राजा** — ननु प्रवेश्यताम् ।

**दौवारिकः** — तह । (तथा ।) (इति निष्क्रम्य करभकेन सह प्रविश्य ।) एसो भट्टा । उपसप्प। (एष भर्ता । उपसर्प ।)

**करभक :** — (उपसृत्य) जेदु भट्ट । देवी आणवेदि । आआमिणि चउत्थे दिअहे णिब्बुत्तपालणो उववासो मह भविस्सदि । तहिं दिअहे दीहाउणा अवस्सं संणिहिदेणं होदव्वं त्ति । (जयतु भर्ता । देवी आज्ञापयति । आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारण उपवासो मे भविष्यति । तस्मिन् दिवसे दीर्घायुषावश्यं सन्निहितेन भवितव्यमिति ।

**राजा** — इतस्तपस्विकार्यम् । इतो गुरुजनाज्ञा । द्वयमप्यनतिक्रमणीयम् । किमत्र प्रतिविधातव्यम् ?

**वदूषकः** — तिसंकू विअ अंतराले चिट्ठ । (त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ ।)

**राजा** :— अलं परिहासेन । सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि ।

> कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः ।
> पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा ॥ १७ ॥

(विचित्य ।) सखे त्वमम्बाभिः पुत्र इति परिगृहीतः । स भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्यग्रतां निवेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति ।

**विदूषकः** — मा खु मं रक्खोभीरुअं गणेसु । (मा खलु मां रक्षोभीरुं गणयसि ।)

---

जलोच्छ्वासाः परीवाहा[551] इत्यमरः । पोक्कु इति द्रविडाः । एष राक्षसा[552]द्रक्षितोऽस्मि । एष इति अस्मीति पदमहिम्ना अहमित्यर्थात्सिध्यति । सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानं पश्यति । एष पुन [[र्न[[गरात् देवीनाम्[553] आज्ञसिहरः[555] करभक आगतः । अ [[थ किम् । तथा एष भर्ता, उपसर्प करभक । उपसर्पतु करभक इति च पाठः ।

जयतु भर्त्ता । देव्य आज्ञापयन्ति । आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारणो नः उपवासो भविष्यति । तस्मिन् दीर्घायुषा अवश्यं सन्निहितेन भवितव्यमिति । त्रिशङ्कुरिति अन्तराले तिष्ठ । प्रतिहातं[557] जातसंघट्टम् । स्रोतोवहा नदी तत्सम्बन्धी स्रोतोवहम् । स्रोतः पाझर इति महाराष्ट्राः । स्रोताम्बुसरणं स्वत इत्यमरः । मनो द्वैधीभवति [558] । तत्र दृष्टान्तमाह । पुर इति । यथा पुरोऽग्रतः शैले प्रतिहतम् अभ्याहतं स्रौ (स्रो) - तोवहं स्रोतो द्वैधभवतीति सानुषंगोऽ र्थः । उत्तरार्धे यथाशब्दकथनात् पूर्वार्धे तथाशब्दो नास्तीति[559] न दोषः । अत एव जडाह (?) सन्तु, का चिन्ता(?) शं भूयाद् उत्तरोत्तरम् । "यथातीत्यं[560] प्रवर्धेरन् न कायास्मै (?) नमांसि न" इति मयूरः ।[561] अनुष्ठातुमिति ध्वनिः । मा खलु मां रक्षोभीरुकं गणयति । एतम् गणनमित्यर्थः । भवतीति ससमीम् अजानन् कोऽपि भवतीति सम्भाव्यते वेत्येकमेवाल (र्थ?) म् (इ) त्याह । तत्र व्युत्पन्नाः[562] प्रमाणम् । तेन हि यथा राजानुगेन गात (गन्त)व्यं, तथा गच्छामि ।[563]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा — (सस्मितम्) भो महाब्राह्मण । कथमेतत् भवति संभाव्यते ?

विदूषकः — तेण हि जह राआणुएण गंदव्वं तह गच्छामि । (तेन हि यथा राजानुगेन गन्तव्यं तथा गच्छामि ।)

राजा — तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वाननुयात्रिकान् त्वया सह प्रस्थापयामि ।

विदूषकः — तेण हि जुवराओह्मि दाणिं संवुत्तो । (तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः ।)

राजा — (आत्मगतम्) चपलोऽयं बटुः । कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तःपुरेभ्यः कथयेत् । भवतु । एवमेनं वक्ष्ये (विदूषकं हस्ते गृहीत्वा, प्रकाशम्) वयस्य, महर्षिगौरवादाश्रमं गच्छामि । न खलु सत्यमेव तापसकन्यकायां शकुन्तलायां ममाभिलाषः ।

पश्य —

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो
मृगशावैः सममेधितो जनः ।
परिहासविजल्पितं सखे
परमार्थेन न गृह्यतां वचः ॥ १८ ॥

इति निष्क्रान्ताः सर्वे ॥

## इति अभिज्ञानशाकुन्तले द्वितीयोऽङ्कः ॥

---

अनुगश्चारशिष्ययोरिति रत्नमाला । बलं सैन्यम्, तेन हि युवराज इदानीं संवृत्तः । सत्य इति सत्यं त्रिषु तद्वतीत्यमरः ।[564] सत्यमिति भीतैः कल्पितः कुपाठः । सत्याः सन्तु यजमानस्य कामा इति श्रुतेः । वयं राजानः, अपरोक्षम् अन्यथा इति वा भावः । अप्रत्यक्षे परोक्षं स्यात्प्रत्यक्षे त्वपरोक्षकमिति रभसः । तथा च परोक्षे दारभाषणमिति कामन्दकः । शाबैः (वैः) शिशुभिः समं सह । जनः शकुन्तला । स्त्रियां पुंसीव सामान्याज्जनशब्दः प्रयुज्यते इति लीलाधरः । [565] "अयमप्येको जन इति जानीषे मां विमूढसीताऽस्मीति" दण्डिकाव्ये । यत्तु जनस्तप इति कश्चिदाह, तन्न । तापसकन्या[566]यामिति मूलवाक्यविरोधात् । परमार्थेन परमार्थत्वेनेति भावप्रधानो निर्देशः । अत एव मलिनं प्रमार्ष्टीति राजशेखरः । तथा च सर्वमळी (ली) कमिति भावः । अथ किम् ॥

इति महाराजपद [......]शाकुन्तल[567]संज्ञीवनाख्यटिप्पणे द्वितीयोऽङ्कः ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

## ॥ अथ तृतीयोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति यजमानशिष्यः कुशानादाय ।)

**शिष्यः** – अहो महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः । यत्प्रविष्टमात्र एवास्मिन्नाश्रमपदं तत्रभवति निरूपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि ।

का कथा बाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः ।
हुङ्कारेणैव धनुषः स हि विघ्नानपोहति ॥ १ ॥

यावदिमान् वेदिसंस्तरणार्थान् दर्भानृत्विग्भ्य उपहरामि । (परिक्रम्यावलोक्य च । आकाशे) प्रियंवदे ! कस्येदमुशीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते । (श्रुतिमभिनीय) किं ब्रवीषि ? आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला । तस्याः शरीरनिर्वापणायेति । तर्हि यत्नादुपक्रम्यताम् । सा हि कुलपतेः कण्वस्योच्छ्वसितम् । अहमपि वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि ।

(इति निष्क्रान्तः)

## ॥ शुद्धविष्कम्भः ॥

(ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा ।)

**राजा** – जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति मे विदितम् ।
अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं ॥ २ ॥

निवर्तयितुम्(मदनबाधां निरूपयन्) भगवन् कुसुमायुध ! त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयाभ्यामतिसन्धीयते कामिजनसार्थः । कुतः ?

तव कुसुमशरत्वं – शीतरश्मित्वमिन्दो-
र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु ।
विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः
त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि ॥ ३ ॥

---

यजमानस्य यष्टुः ।[568] अनुभावः प्रभावे च सतां च मतिनिश्चय[569] इत्यमरः । प्रविष्टमात्रे सप्तमी । निरुपप्लवानि निर्गतोपद्रवाणि । ''अपोह'' इत्यपनयति[570] परास्यतीति माठरः । संस्तरः प्रस्तरः, आस्तरणमिति यावत् । लामज्जिक[571] उसीरो स्त्रीति त्रिकाण्डी । बाळा[572] इति महाराष्ट्राः । लंघनाद् अतिक्रमात् । बलवत्यवस्था[573] यस्याः । << बलवदवस्था[574], ''अवस्था[575] त्वार्तिदशयोरित्यने[576] कार्थध्वनिमंजरी । निर्वापणाय परिहरणाय । उच्छ्वा सितमुच्छ्वासस्तद्वद् अतिप्रीतिपात्रमिति भावः । शान्तिरिति ध्वनिः । विसर्जेति । दास्यामीति[578] यावत् ॥ विष्कंभ[579]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(सखेदं परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते सवनकर्मणि सदस्यैरनुज्ञातविश्रमः क्लान्तमात्मानं विनोदयामि। (निश्वस्य) किं नु खलु मे प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत्। यावदेनामन्विष्यामि। (सूर्यमवलोक्य) इमामुग्रातपां वेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरेषु ससखीजना शकुन्तला गमयति। अत्रैव तावद्गच्छामि। (परिक्रम्य, स्पर्शसुखं रूपयित्वा) अहो प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।
अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः ॥ ४ ॥

(परिक्रम्यावलोक्य) सत्यमेतस्मिन् वेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे सन्निहितया शकुन्तलया भवितव्यम्। तथाहि।

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा ॥ ५ ॥

यावद्विटपान्तरित एवावलोकयामि। (परिक्रम्य तथा कृत्वा) अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। यदेषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयाना सखीभ्यामन्वास्यते। भवतु, श्रोष्यामि तावदासां विस्रम्भकथितानि। (विलोकयन् स्थितः।)

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला)

---

इति ॥ आरम्भे शुद्धविष्कंभः शुद्धपात्रप्रयोजित इति लक्षणात्। प्रविशतीति। प्रवेशासूचनं कवेः प्रमादः।[580] अभीष्टं कामयमानावस्था[581]दशा यस्य। तपस[582] इति काश्यपस्येति शेषः। वीर्यप्रभावः[583] ततः शकुन्तलातः। मा (अ) लम्[584] अस्मिन् अशक्तोऽस्मि। अलं शक्तीत्यमरः। अतिसन्धीयते वंच्यते। सार्थः संघः। हिमं गर्भे येषाम्। संस्छि(स्थि)त[585] इति नाशार्थकत्वात्ध्वनिदोषः। अत एव वीरासने सुस्थितमिति[586] विशेषज्ञाः। प्रवात–सुभद्र इति ध्वनिः। शक्यमिति सामान्ये[587] नपुसंकम्। शक्यमञ्जलिभिः पातुं[588] वाताः कैतकगन्धिन इति आ दिकविकवनानुसरणमेतत्[589]। शक्योऽरविन्देतिहासाय[590] केचिदभ्रान्तप्रतियोगिनः पेठुः ॥ परिक्षिप्तं तु लांछित इत्यमरमाला। अवगाढा निम्ना।[591] निर्वाणं सुखम्। चतुरश्रस्छ(स्थ)ले[592] पट्टमस्त्रियाम् इत्यमरशेषः। हला शकुन्तले, अपि सुखायते नळि(लि) नीपत्रवातः। "शेषः]]संस्कृतादिति"[594] सुहायेत्युक्तम्[595]। अन्यथा "चतुर्थ्याःषष्ठी"[596] इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः।[597] [[{तेनास्मा}]][598]किं वीजयतो[599] मां सख्यौ। अनेनास्मरणं व्यज्यते। परस्परमिति। न खल्विदम्[600] अन्यकथनीयमिति भावः। स्वस्थेति[601] ध्वनिः। प्रकर्षेण शिथिलेऽङ्गकार्श्येनेति भावः। मृणालैकवलये बिसमुखकंकणे यस्य। एके मुख्ये (ख्य ई) त्यमरः। प्रशब्दः पादपूरक इति केचित्। आसमन्ताम्। बाधो बाधा च तेन सहितम्, कमनीयं तु कामनार्हमनोज्ञयो[602]रिति नानार्थमाला। कामं पर्याप्तं यथा तथा। प्रसरयो र्व्यापनयोः तापः समः समान इत्यर्थः। तु केवलं ग्रीष्मस्य। अयं तापः सुभगं सौभाग्यं भावप्रधानो[603] निर्देशः। शोभननं च तं भगं[604] श्रियं शोभाम्। वोद्दिश्यापराद्धं[605] न

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**सख्यौ** – (उपवीज्य) सहि सउन्दले, अवि सुहाअ दे णलिणीपत्तवादो ? (सखि शकुन्तले, अपि सुखायते नलिनीपत्रवातः ?)

**शकुन्तला** – किं वीजअंति में सहीओ ? (किं वीजयतो मां सख्यौ ?)

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः)

**राजा** – बलवदस्वस्था तत्रभवती शकुन्तला दृश्यते। तत्किमातपदोषः स्यात् ? उत यथा मे मनसि वर्तते ? अथवा कृतं सन्देहेन।

स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं
प्रियायाः साबाधं तदपि कमनीयं वपुरिदम् ।
समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो-
र्नै तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ॥ ६ ॥

**प्रियंवदा** – (जनान्तिकम्) अणसूए, तस्स राएसिणो पढमदंसणादो आरहिअ पज्जूसिआ आपण्णा बिअ सउंदला। किं णु खु तण्णिमित्ता एव्व अअं आतङ्को भवे ? (अनसूये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुका आपन्नापि शकुन्तला। किमस्यास्तन्निमित्त एवायमातङ्को भवेत् ?)

**अनसूया** – सहि, मम वि खु ईरिसी आसङ्का हिअअस्स। होदु पुच्छिस्सं दाव णं। (सखि, ममापि खलु ईदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु प्रक्ष्यामि तावदेनाम्।)

**प्रियंवदा** – (प्रकाशम्) सहि पुच्छिदव्वासि किं वि। बलिअं खु दे सन्दावो। (सखि! प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान् खलु ते सन्तापः।)

**शकुन्तला** – (पूर्वार्धेन पुष्पशयनादुत्थाय) हला, किं वत्तुकामासि ? (सखि, किं वक्तुकामासि ?)

---

प्रभवति। तुशब्दः केवलार्थे चेति हारावळी(ली)। भगः श्रीकामे[606]त्यमरः। सुभगं रम्यं वपुरुद्दिश्येति पूर्वेण वान्वयो बोध्यः। अयमित्यत्र "एवमि"ति क्वचित् पाठः। तदा ग्रीष्मस्य ताप इति पूर्वोक्तो ग्राह्यः। एवम् अतिशयेनेत्यर्थः। एवं सुभगमपराद्धं युवतिष्विति पाठे युवतिषु विषये सुभगं सौभाग्यं शोभां वोद्दिश्य, एवं दृश्यमानप्रकारेण ग्रीष्मस्य तु केवलग्रीष्मस्यापराद्धम् अपराधः भावे निष्ठा। न नो इत्यर्थः। अपराद्धमित्यत्र अपराध ईति च पाठः। एवमालोड्य मदनग्रीष्मयोस्समानस्तापो,[607] न त्वेकस्येति भावः। अनूसये, तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सकाऽऽपन्ना च शकुन्तला। किं नु खल्वस्याः तन्निमित्तं[608](त्त) आतंक एष भवेत्।

सखी (खि), ममापीदृशी आशंका हृदयस्य। भवतु। प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। सखि! प्रष्टव्यासि किमपि, बलवत्(वान्) खलु ते संतापः, बलवत्सुष्ठु।[609] हळा(ला) किं वक्तुकामासि।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



हळा(ला) अनभ्यन्तरा[610] खल्वहं मदन [[गत]]स्य[611] वृत्तान्तस्य ! किन्तु यादृशी

**अनसूया** — हला सउंदले, अणब्भन्तरा खु वअं मअणगदस्य उत्तन्दस्स। किं दु जारिसी इदिहासपुराणणिबन्धणेसु कामअमाणाणं समवत्था सुणिअदि तारिसिं दे लक्खआमि। कहेहि किंणिमित्तो दे सन्दावो ? विआरं परमत्थदो अजाणिअ अणारम्भो खु पडिआरस्स। (सखि शकुन्तले ! अनभ्यन्तराः खलु वयं मदनगतस्य वृत्तान्तस्य। किन्तु यादृशीतिहासपुराणनिबन्धेषु कामयमानानां समवस्था श्रूयते तादृशींति लक्षयामि। कथय किं निमित्तं ते सन्तापः ? विकारं परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः खलु परिहारस्य।)

**राजा** — अनसूयामप्यनुगतो मदीयस्तर्कः: ।

**शकुन्तला** — (आत्मगतम्) बलिअं खु मे अहिणिवेसो । सहसा एदा णं वि ण सक्कुणोऽमि णिवेवेदुम् । (बलवान् खलु मे अभिनिवेशः । सहसा ताभ्यामपि न शक्नोमि निवेदयितुम् ।)

**प्रियंवदा** — सहि सुट्ठु एसा भणादि । किं अत्तणो आदङ्कं उवेक्खसि । अणुदिअहं खु परिहीअसि अङ्गेहिं । केवलं लावण्णमई छाआ तुमं ण मुञ्चदि । (सखि, सुष्ठ्वेषा भणति। किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे । अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः । केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति ।)

**राजा**— अवितथमाह प्रियंवदा । तथा हि —

**क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तस्तनं**
**मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा ।**
**शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते**
**पत्राणामिव शोषणेन मरूता स्पृष्टा लता माधवी ॥ ७ ॥**

**शकुन्तला** — (सलज्जम्) सहि, कस्स वा अण्णस्स कहइस्सं ? किंदु आआसत्ती दाणिं वो भविस्सं। (सखि, कस्मै वान्यस्मै कथयिष्यामि ? किन्तु आयासयित्रीदानीं वां भविष्यामि।)

**उभे** — अदो एव्व णिब्बन्धो । सुविभत्तं खु दुःक्खं सही अवेअणं होदि । (अत एव निर्बन्धः। सुविभक्तं खलु दुःखं सखिअवेदनं भवति ।)

---

इतिहासपुराणनिबन्धेषु कामयमानानां समवस्था[612] श्रूयते, तादृशीं ते लक्षयामि[613]। कथय, किंनिमित्त[614] एष ते संतापः । षकारं खलु परमार्थतो[615]ऽज्ञा त्वाऽ[616]नाम्भः परिहारस्य[617]। बाधाया[618] इति शेषः। विकारे ज्ञाते खलु परिहारारम्भो[619] भवेदिति भावः। दर्शनम् अवलोकनम्। स्वेा्त। स्वाभिप्राय एवाभिगत इति न मे हठवाद इति भावः। बलवत् (वान्)खलु मेऽभिनिवेशः। बलवत् सुष्ठु,[620] एताभ्यामपि सहसा न शक्नोमि निवेदयितुम्[621] सखि सुष्ठ[622] एषा भणति । किम्आत्मनं(नः) आतंकम् उपेक्षसे। अनुदिवसं परिहीयते अङ्गैः, केवलं लावण्यमयी[623] छाया त्वां न मुञ्चति ।[624] अवितथं सत्यम् । क्षाम क्षामौ अतिकृशौ कपोलौ यस्य । उरो भिन्नपदं, क्लान्तः क्षुल्लकः । शोच्या दयनीयेति यावत् । मरुता वायुना स्पृष्टा कम्पितेति यावत् । सखि कस्मै वाऽन्यस्मै कथनीयम् । आयासयित्री इदानीं [[वा]][625]भविष्यामि । अत एव निर्बन्धः । सुविभक्तं खलु दुःखं, सखि अवेदनं भवति ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा –

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला
नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम् ।
दृष्टो विवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-
मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ॥ ८ ॥

शकुन्तला – सहि, जदो पहुदि मम दंसणपहं आअदो तवोवणरक्खिदा राएसी तदो आरहिंअ तग्गदेण अहिलासेण एतदवत्थम्हि संवुत्ता । (सखि, यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतस्तपोवनरक्षिता राजर्षिः तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता ।

राजा – (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम् ।

स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः ।
दिवस इवाभ्रश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ॥ ९ ॥

शकुन्तला – तं जइ वो अणुमदं तह बट्टेह जह तस्स राएसिणो अणुअम्पणिज्जा होमि। अहबा सिञ्चह में उदअम् । (तद्यदि वामनुमतं तथा वर्तेथां यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि। अथवा सिञ्चंत मे उदकम् ।)

राजा – विमर्शच्छेदि वचनम् ।

---

जनेन अनसूयाप्रियंवदाभ्यामित्यर्थः । जनशब्दस्य साधारणत्वात् जनेनेत्येकवचनप्रयोगः । जनेन अनसूयया प्रियंवदया वेति कश्चिद् बंधनवादी व्याचकार, तन्न । उभे इति पूर्ववाक्यविरोधात् । न न वक्ष्यति, वक्ष्यत्येव[626] सेयं[627] न वक्ष्यतीति पाठे "न वक्ष्यतीति काकुः । वक्ष्यतीत्येवार्थः । सतृणं साशं यथा तथा । अत्रान्तर इति दर्शनस्य ज [[द]][628]पहुदीति वक्ष्यमाणवाक्याकर्णनस्य चावान्तरदशायामित्यर्थः । श्रवण आकर्णनविषये कातरताम् ।[629] ग्रीष्मस्यैव बाधेति, क्व वक्ष्यति वेत्यधैर्यमिति भावः । अस्मिन्पद्ये सुमतयोऽमतयश्य शिरोभ्रमणकोलाहलमभिनयन्ति । यतः प्रभृति मम दर्शनपथंगतस्तपोवनरक्षिता[630] राजर्षिस्तत आरभ्यात्मगते[[न]][631] अभिलाषेण एतद् अवस्थाऽस्मि[632] संवृत्ता[633] [[आत्मगतो[634]ऽप्रगटोऽन्तरङ्गस्थश्चा[635]ऽ निवार्य इति यावत् । एषा[636] अवस्था[637] यस्या, एत दवस्था[637]। 'शेषः संस्कृताद्'[638] इति सूत्रबलात् । "एददव० थे " ति प्रयुक्तमिति दयनीयम् । निर्वापेति[639]तापनिवारक इत्यर्थः । स्मरः शकुन्तलां मय्यनुरक्तां कृतवानतो निर्वापयितेति[640] ज्ञेयम् । अभ्राणि मेघाः, तैःश्यामो[641] नीलः । तपस्य ऊष्मणः अत्ययेऽवसाने ।[642] पुमानदन्तस्तप ऊष्मणि स्यादिति लिङ्गनिर्णयः । जीवेति जीवयुक्तलोकस्येत्यर्थः । जीवो [ऽ]सुधारणमिति लोकस्तु भुवने जन इति चामरः । अत एव पूर्णकामः सीतारामो जयतीति दण्डिकाव्ये । तथा च असुभृज्जनस्य दशाभेदेनेवदिवस[643] इव स्मरस्तापकरस्तापहरश्च मे जात इति भावः । पद्येऽस्मिन् बहवो भ्रमन्ति । तद्यदि वाम् अनुमतं कुरुतम् । यथा तस्मै राजर्षयेऽनुकम्पनीया भवामि । अन्यथा सिञ्चतम् इदानीं म उदकम् । तापनिवारणायेति वक्तुं[644] शक्यत, इवेति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रियंवदा** — (जनान्तिकम्) अणसूए, दूरगअमम्महा अक्खमा इअं कालहरणस्स। जस्सिं बद्धहावा एसा सो ललामहूदो, पौरवाणं। ता जुत्तं से अहिलासो अहिणंदिदुं। (अनसूये ! दूरगतमन्मथाऽक्षमेयं कालहरणस्य। यस्मिन् बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम्। तस्माद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम्।

**अनसूया** — (जनान्तिकम्) सहि, जह भणासि। (प्रकाशम्) सहि, दिट्ठिआ अणुरूवो दे अहिणिवेसो। साअरं उज्झिअ कहिं वा महाणई ओदरइ। (सखि यथा भणसि। सखि दिष्ट्याऽनुरूपस्तेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कस्मिन् वा महानद्यवतरति।

**प्रियंवदा** — को वा दाणिं सहआरं अंदरेण अदिमुत्तलदं पल्लविदं अरूहदि। (को वेदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितामर्हति।)

**राजा** — किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते।

**अनसूया** — को उण उवाओ भवे। जेण अविलम्बिअं णिहुअं अ सहीमणोरहं संपादेह्म। (कः पुनरुपायो भवेद्येनाविलम्बितं निभृतं च सखीमनोरथं संपादयेव।)

**प्रियंवदा** — णिहुअं ति चिन्ता हवे। सिग्धं ति सुअरं। (निभृतमिति चिन्ता भवेत्। स्निग्धमिति सुकरम्।)

**अनसूया** — कहं विअ ? (कथमिव ?)

**प्रियंवदा** — णं एसो राएसी इमस्सिं सिणिद्धदिट्ठीए सूइदाहिनिवोसो इमाइ दिअहाइ पआअरकिसो लक्खिअदि। (नन्वेष राजर्षिरस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिनिवेश इमानि दिवसानि प्रजागरकृशो लक्ष्यते।

---

केचित्। ध्वनिदोष इत्यन्ये। लक्षणातीतं कवेरचातुर्यमिति बहवः। अनसूये दूरगतमन्मथा अक्षमेयं कालहरणस्य। दूरगतोऽतिक्रान्तः। निर्मर्याद इति यावत्। [[मन्मथो[645] यस्या सा इयं कालविलंबनस्य अक्षमाऽयोग्या कालहरणेति ध्वनिः। मंमहेति कवेः प्रमादः। मन्मथेव]][646]इति मकारस्थाने वकारस्य विधानात्। अत एव ''व० मह महा ''इति राजशेखरः। यस्मिन् बद्धभावा एषा, स ललामभूतः पौरवाणाम्। तस्माद्युक्तमस्या अभिलाषामभिनंदितुम्।[647] तथा यथा भणसि। सखि[648], दृ(दि) ष्ट्या तेऽनुरूपोऽभिनिवेशः। दिष्ट्या[649] दैवादित्यर्थः। सागरं समुझिझ(ज्झि)त्य क्व वा[650] महानद्योऽवतरन्ति। का(क) इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते। अतिमुक्तः पुङ्कः स्याद् वासन्तीमाधवीलतेत्यमरः।

विशाखे नक्षत्रविशेषौ। कः पुनरत्र उपायो[651] भवेत्। येनाविलंबितं सखीमनोरथं संपादयावः। कात्र चिन्ता, सिद्ध एव मनोरथः। कथमिव॥ ननु स राजर्षिरस्यां[652] स्निग्धदृष्टिसूचिताभिलाषः। इमानि दिवसानि प्रजागरक्लिन्नलोचनो लक्ष्यते। वा तु क्लिबे दिवसेत्यमरः। **विवर्णाः** कान्तिरहिताः मणयो यस्मिन् तत् विवर्णमणि[त्कृः] तद्वत्कृ-तम् विवर्णमणी कृतम्। अनतिलुलिता किञ्चिदान्दोळि(लि)ता। प्रतिसार्यत उपरि नीयत इति यावत्। अनेन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा –** सत्यमित्थंभूतोऽस्मि । तथाहि

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसर्पिभिरश्रुभिः ।
अनतिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धना-
त्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥ १० ॥

**प्रियंवदा –** (विचिन्त्य) हला, मअनलेहो से करीअदु । तं सुमणोगोविदं करिअ देवपसादव्वदेसेण तस्स रण्णो हत्थं पावइस्सम् । (सखि, मदनलेखोऽस्मै क्रियताम् । तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवप्रसादव्यपदेशेन तस्य राज्ञो हस्तं प्रापयिष्यामि ।)

**अनसूया –** रोअदि मे सुउमारो पओओ । किं वा सउन्दला भणादि । (रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः । किं वा शकुन्तला भणति ।)

**शकुन्तला –** किं णिओओ विकप्पि अदि । (किं नियोगो विकल्प्यते)

**प्रियंवदा –** तेण हि अत्तणो उवण्णासपुव्वं चिन्तेहि किं वि ललितपदबन्धणम् । (तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वकं चिन्तय किमपि ललितपदबन्धनम् ।

**शकुन्तला –** हला चिंदेमि । किं दु अवहीरणाभीरुअं उण वेवइ मे हिअअं । (सखि ! चिन्तयामि । किन्त्ववधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते मे हृदयम्)

**राजा –**

अयं स ते तिष्ठति सङ्गमोत्सुको
विशङ्कसे भीरु यतोऽवधीरणाम् ।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो जनः ॥ ११ ॥

---

कार्श्यातिशयो[655] व्यज्यते । हाळा(हला,) मदनलेखोऽस्मै क्रियताम् । तं[656] सुमनोवेष्टितं[657] [कृत्वा]देवताप्रसादापदेशेन तस्य राज्ञो हस्तं[658] प्रापयिष्यामि । "गोविद" शब्दो देशीयः, "गोविलें" इति महाराष्ट्राः[659] । रोचते सुकमारोऽयं प्रयोगः । किं वा शकुन्तला भणति । को नियोगो वां विकल्प्यते[660] मयेति शेषः । तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय[661] किमपि ललितपदबन्धनम् । तेन कारणेनेत्यर्थः ।[662]उपन्यासो वाङ्मुखं बाधानिवेदम्[663] इति यावत् । पदबन्धनं पद्यमित्यर्थः । हळा(ला)चिन्तायाम्यहम् । अवधीरणाभीरुकं पुनर्वेपते[664] मे हृदयम् । एतेन मानिनीरत्नत्वं सूचितम् । ते तव । यतो यस्मात् । **अवधीरणाम्** अवहेळ(ल)नम् । न वा नो वा । न वा श्रियमिति ध्वनिः । ईप्सितो वाञ्छितोऽयि आत्मगुणावमानिनि[665] ! क इदानीं शरीरनिर्वापयितृकां[666] शारदीं जो(ज्यो) त्स्नां पटान्तेन निवारयिष्यति[667] । नियोजिता इदानीमस्मि[668] ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रियंवदा** – अयि अत्तगुणावमाणिणि को दाणिं सरीरणिव्वावइअं सारदिअं जोह्मणं पडन्तेण णिवारइस्सदि। (अपि आत्मगुणावमानिनि क इदानीं शरीरनिर्वापयितृकां शारदीज्योत्स्नां पटान्तेन निवारयिष्यति ?)

**शकुन्तला** – णिओइदा दाणिं ह्मि। (नियोजितेदानीमस्मि।)

(उपविष्टा चिन्तयति)

**राजा** – स्थाने खलु विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। तथा हि –

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः ।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन ॥ १२ ॥

**शकुन्तला** – हला, चिन्दिदा मए गीदी। ण क्खु संणिहिदाइ लेहणसाहणाइ। (हला, चिन्तिता मया गीतिका। न खलु सन्निहितानि लेखनसाधनानि।)

**प्रियंवदा** – इमस्सिं सुओदरसुउमारे णलिणीपत्ते णहेहिं णिक्खितवण्णं करेहि। (अस्मिन् शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्णं कुरु।)

**शकुन्तला** – (यथोद्दिष्टं रूपयित्वा) हला सुणुह दाणिं संगदत्वा ण वेत्ति। (सख्यौ ! शृणतमिदानीं सङ्गतार्था न वेति।)

**उभे** – अवहित ह्म। (अवहिते स्वः।)

---

स्थाने[669] युक्तमित्यर्थः। चक्षुषोपलक्षितां प्रियाम् उपलक्षितोऽहं चेति बोध्यम्। एका वामा दक्षिणा वा भ्रूः, यथानुभवं व्यवस्था[670]। **कंटकितेन**[671] संजातकंटकेन, कंटको रोमांचः[672]। तथा च रोमांचितेन कपोलेन[673] अनुरागोऽनुमीयत इति भावः। हला, मया चिन्तितम् आलिखितव्यं वस्तु। असन्निहितानि पुनर्लेखनसाधनानि। वस्त्वितिवृत्तम्, प्रकृते पद्यमिति यावत्। अस्मिन् शुकोदरसुकुमारे[674] नलिनीपत्रे नखै[675]र्निक्षिप्तवर्णं[676] कुरु। विशेष्यत्वेन वस्त्वनुषज्यते। "इदं सुओदर सुउकारं णळिणी प०तमिति"वा पाठः। तदा[677] निक्षिप्ताः कीर्णा वर्णाः पद्याक्षराणि यस्मिन् यत्र इत्यर्थः। अत्र शुष्कं पत्रं नखारोपणाक्षमम्, आद्रम् तु नखदीर्णं भवेत्तथा च – निक्षिप्तवर्णमिति प्रायिकं, "कथायाः दानसन्तीति" न्यायोऽयमिति केचिदूचुः। तदभिज्ञा मनोज्ञं सूचीमुखो ह्लिखितापलाशदळ(ल) स्पष्ट[678] संदृश्यमानानाम् देवता–दिप्रतिबिम्बानाम् अनुभवसिद्धत्वामत्। हला, शृणुतमिदानीं संगता–र्थं[679] वा न वेति। संगतं हृदयंगम–मित्यमरः[680] ॥ अवहिते स्वः ॥

तु०झेति ॥ तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रिमपि। निर्घृण ! तपति बलव [त्]त्वयि[681]युक्तमनोरथान्यंगानि ॥ हृदयं कीदृशं वा न जाने इत्यर्थः। अपिरेकः पादपूरकः, संभावनायामिति[682] केचित्। त्वयि युक्ता मिश्रा लग्ना इति यावत्। मनोरथा येषां स्वस्वोत्कठ्येति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



शकुन्तला – (वाचयति ।)

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण कामो दिवा वि रत्ति म्मि ।
णिग्घिण तवई बलिअं तुइ जुत्तमणोरहाइं अङ्गाइम् ॥ १३ ॥

(तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रिमपि ।
निर्घृणस्तपति बलीयस्त्वयि युक्तमनोरथान्यङ्गानि ॥

राजा – (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमद्वतीं दिवसः ॥ १४ ॥

उभे – (विलोक्य सहर्षम्) साअदं अविलम्बिणौ मणोरहस्स । (स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य ।)

(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति)

राजा – अलमलमायासेन ।

संदष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि ।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥ १५ ॥

अनसूया – इदो सिलातलेक्कदेसं अमुगेण्हादु वअस्सौ ।

(इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः ।

(राजा उपविष्टः । शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति ।)

प्रियंवदा – वअस्स, दुवेणं वो अण्णोण्णाणुराओ पच्चक्खो । तहवि सहीसिणेहो मं पुनरुत्तवादिणीं करेदि । (वयस्य, द्वयोर्वामन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः, तथापि सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति ।)

राजा – भद्रे ! नैतत्परिहार्यम् । विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति ।

---

ति भावः ।"युक्तं साम्प्रतमिश्रयोरिति हेमचन्द्रः ।[683] अङ्गान्यन्तरङ्गबहिरङ्गानि तपति तापयतीत्यर्थः । व्यथयतीति केचित् । "व्यथयति तपति दुःखयति पीडयतीति" केदारः ॥ तनु कृशं दिवसो यथा कथंचित् कुमुदिनीं वर्तयति, शशाङ्कं तु क्वापि मज्जयतीति भावः । हि प्रसिद्धौ । दहतीति ध्वनिः । स्वागतम् अविलंबिने[684] मनोरथाय । संदष्टं सम्बद्धं कुसुमशयनं यैर् आशु स्पर्शोऽत्र[687] रक्षणे क्लान्तानि म्लानानि च तानि बिसानि, तेषां भङ्गेन सम्बन्धवशात् सुरभीणि । गात्राण्यङ्गानि । गात्रमङ्गशरीरयोरिति नानार्थमञ्जरी । इतः शिलातलैकदेशम् अनुगृह्णातु प्रियवयस्यः ।अनन्यतया "पिअवअ०सो" इति व्यवहारः । वयस्य द्वयोर्वाम् अन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः । तथापि सखीस्नेहो मां पुनरुक्तवादिनीं करोति । भद्र इति बहुमानापादकं[688] संबोधनम् । एतद् वदनं कथनमिति यावत् । आपन्नस्य[689] विषयवासिनो[690] जनस्यार्त्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम् इति ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रियंवदा** – आबण्णस्स विसअवासिणो जणस्स अत्तिहरेण रण्णा होदव्वं त्ति णं एसो वो धम्मो । (आपन्नस्य विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यमिति नन्वेष वो धर्मः ।)

**राजा** – नास्मात्परम् ।

**प्रियंवदा** – तेण हि इअं णो पिअसही तुमं एव्व उद्दिसिअ इमं अवत्थंदरं भअवदा मअणेण आरोविदां ता अरुहसि अब्भुवत्तीए जीविदं से ओलंबिदुं । (तेन हीयं नौ प्रियसखी त्वामेवोद्दिश्य इदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता । तस्मादर्हस्यभ्युपपत्त्या जीवितमस्या अवलम्बितुम् ।

**राजा** – भद्रे, साधारणोऽयं प्रणयः । सर्वथाऽनुगृहीतोऽस्मि ।

**शकुन्तला** – (प्रियंवदामवलोक्य) हला अलं अंदेउरविरहपज्जू सुअस्स राएसिणो उवरोहेण । (सखि, अलमन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन ।

**राजा** –

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते हृदयं मम ।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥ १६ ॥

**अनसूया** – वअस्स, बहुवल्लहा राआणो सुणीअंदि । जह णो पिअसहीं बंधजणसो अणीआ ण होदि तह णिव्वहेहि । (वयस्य, बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते । यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वहस्व ।)

**राजा** – भद्रे, किं बहुना ?

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्ररशना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥ १७ ॥

**उभे** – णिब्बुत्ते म्ह । (निर्वृत्ते स्वः ।)

---

नन्वेष वो धर्मः । आपत्प्राप्तस्य देशवर्त्तिनो लोकस्याऽऽर्तयः । "ईतय" इति प्रजापक्षे शरणागतस्य भोगभोग्यादिवास[691]नाशीलस्य जनस्यास्मत्सख्या आर्त्तयो मदनबाधा इति शकुन्तलापक्षे च यथाक्रमम् अर्थौ बौध्यौ । स्छि(स्थि)तिवासनयोर्वासः इति विश्वः । नेति । अस्माद्धर्मात्परो धर्मो नेत्यर्थद्वयमूह्यम् । तेन हीयं नः प्रियसखी त्वामेवोद्दिश्य महदवस्थान्तरं भगवता मदनेनाऽऽरोपिता तस्मादहं(र्ह)स्य[692]नुग्रहेण जीवितमस्या अवलम्बितुम् । साधारणः परस्परसमानः । हळा(ला), अलम् अन्तःपुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरुपरोधेन । हृदयसन्निहित इति शकुन्तलां[693]प्रति सम्बोधनम् । समर्थयसे[694] मन्यस इति यावत् । पुनर्हतोऽस्मीत्यर्थः ॥

वयस्य बहुवल्लभा राजानः श्रूयन्ते । यथा[695] नः सखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निवह[696] ॥ परिग्रहाणां पत्नीनाम् । पत्न्यादाने परिग्रहाविति शब्दमाला । निर्वृत्ते स्वः सुखिते

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रियंवदा** — (सदृष्टिक्षेपम्) अणसूए, एसो इदो तदो दिण्णदिठ्ठी पज्जूसुओ मिअपोदओ मादरं अण्णेसदि । एहिं संजोएम णं । (अनसूये, एष इतस्ततो दत्तदृष्टिः पर्युत्सुको मृगपोतको मातरमन्वेषते। एहिसंयोजयाव एनम् ।)

(उभे प्रस्थिते)

**शकुन्तला** — हला असरण म्हि । अण्णदरा वो आअच्छदु । (हला अशरणास्मि । अन्यतरा वामागच्छतु ।)

**उभे** — जो पुडवीए सरणं सो तुह समीवे वट्टइ । (यः पृथिव्याः शरणं स तव समीपे वर्तते ।)

(इति निष्क्रान्ते)

**शकुन्तला** — कहं गदा एव्व । (कथं गते एव ।)

**राजा** — अलमलमावेगेन । नन्वाराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते ।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्
सञ्चारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ॥ १८ ॥

**शकुन्तला** — ण माणणीएसु अत्ताणं अवराहइस्सं (इत्युत्थाय प्रस्थिता) (न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्यामि ।)

---

इत्यर्थः । अनूसय इत इतो वृत्तदृष्टिः[697] पर्युत्सुक इव मृगपोतको मातरमन्विष्यति[698] । अबिसंयोजयावैनम् । संयोजयाव इति ध्वनिः । हळा(ला), अशरणाऽस्मि, अन्यतरा गच्छतु[699] । "अन्यतरागच्छतु"[700] अन्यतरा आगच्छ[701]त्विति बाह्यशब्दार्थचमत्कारः । वस्तुतः तुल्यमानमर्यादयो[702] रभिन्नमनसोः[703] शरीरभिन्नयोरुचितज्ञयोः सख्योर्गमनदृढीकरणायैवान्यतरा गच्छत्विति[704] सकृद् उपरिप्लवं निगदन्त्याः शकुन्तलायास्तावद् आन्तरङ्गो भाव[705] इति सूक्ष्मबुद्धिभिरवगन्तव्यम् । पृथिव्या यः शरणं स तव समीपे[706] स्थितः ।[707] किमपि करिष्यतीति चाटुवाक्यशेषो बोध्यः । पृथिव्या इत्यादिकथनं "द्वे प्रतिष्ठे[708] कुलस्येति प्रागभिहित[709]सत्यसन्धत्वापादकवचनस्मारकमिति भावः । कथं गत[710] एव । शीघ्रं नागमिष्यत इति मनसि संतोषो व्यज्यते । आवेगो[711] रतिसम्भ्रम इति हारावळी(ली) । जनो दुष्यन्त[712] इत्यर्थः । समीप इति संकथनं तु हसमीदे (?)[713] इति सख्योः[714] सावशेषपदपूरकभावाविष्करण[715] धुरंधरमिति बोध्यम् ॥ क्लमविनोदिभिः श्रमपरिहारकैः ।[716] अङ्के करभोरु चरणाविति पदत्रयमहिम्ना वन्धविशेषसूचकः, शृंगारभरो ज्ञेयः । मणिबन्धाद् आकनिष्ठं[717] करस्य करभो बहिरित्यमरः । उत अथवेत्यर्थः । यथासुखमिति कव्यमन्त्रवाक्य[718]भेदध्वनिरिति[719] प्रयोगविदो वैदिकः ।[720]]]समुदः समुदाहरन्तीति दिक् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा – सुन्दरि, अपरिनिर्वाणोऽयं दिवसः । इयं च ते समवस्था ।

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम् ।
कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः ॥ १९ ॥

( इति बलादेनां निवर्तयति ।)

शकुन्तला – पौरव रक्ख विणअं । मअणसंतत्ता वि ण हु अत्तणो पहवामि । (पौरव रक्ष विनयम् । मदनसन्तप्ताऽपि न खलु आत्मनः प्रभवामि ।)

राजा – अलं भीरु ! गुरुजनभयेन । दृष्ट्वापि ते विदितधर्मा तत्रभवानत्र दोषं न ग्रहीष्यति कुलपतिः । पश्य –

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः ॥ २० ॥

शकुन्तला – होदु, मुञ्च दाव, भूयो वि सहीअमं माणयिस्सामि (भवतु, मुञ्च, तावत्, भूयोऽपि सखीजनं मानयिष्यामि ।)

राजा – भवतु मोक्ष्यामि ।

शकुन्तला – कदा ?

राजा –

अपरिक्षतकोमलस्य यावत्
कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन ।
अधरस्य पिपासता मया ते
सदयं सुन्दरि गृह्यते रसोऽस्य ॥ २१ ॥

---

न माननीयेष्वात्मानम् अपराधयिष्यामि । अपराधवन्तं करिष्यामीत्यर्थः । परि परितः बाधायां विषये पेशलैश्चतुरैः । बाधाभिज्ञैरिति[722] यावत् ॥ पेलवैरिति[723] पाठे कृशैरित्यर्थः ।[724] चतुरपेशलेति । पेलवं तन्विति चामरः । तथा चोपद्रवं जानती[725] कथमातपे यास्यति । कुसुमशयनं भज, स्तनयोरावरणसंकटं च गच्छतु ।[726] ततः सुखं याहि इति भावः ॥

पौरव,रक्ष विनयं, मदनसंतप्तापि आत्मने[727] न प्रभवामि । पञ्चशरो बाधते । किं करोमि ॥ गुरुर्गलमिति भावः ॥ ते तव । अत्रोभयसंमतमदनो[728]त्सव इत्यर्थः ॥ कुलं वंशाश्रमौघेष्विति मेदिनी । स गान्धर्वो[729] विवाहो, यो भोगायोभयसंमत इति केदारः । अद्य मुञ्च[730] तावद् भूयोऽपि सखीजनं मानयिष्यामि[731] । संभावयिष्यामीत्यर्थः । भूयः पुनः । भूयस्तु पुनरर्थे च प्रभूते चेति शब्दमाला । भूयो भूयो नमाम्यहमिति प्राञ्चः । अपरिक्षतम् ।[732] अनुपभुक्तं च तत्कोमलम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति ।)

(शकुन्तला नाट्येन परिहरति ।)

( नेपथ्ये )

चक्कवाअवहुए आमन्तहि सहचरं । उपट्ठिदा रअणी ।

(चक्रवाकवधुके । आमन्त्रयस्व सहचरम् । उपस्थिता रजनी ॥)

**शकुन्तला –** (कर्णं दत्वा ससम्भ्रमम्) पौरव सअं मह सरीरवुत्तंदोवलंबाअ अज्जा गोदमी इदो एव्व आअच्छइ । ता विडवान्दरिदो होहि । (पौरव, स्वयं मम शरीरवृत्तान्तोपलम्भाय आर्या गौतमी इत एवागच्छति । तस्माद्विटपान्तरितो भव ।)

**राजा –** तथा(इत्यात्मानमावृत्य स्थितः ।)

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता तापसी सख्यौ च ।)

इदो इदो अज्जा गोदमी । (इत इत आर्या गौतमी ।)

(ततः प्रविष्टा गौतमी)

**गौतमी –** (शकुन्तलामुपेत्य) जादे अवि लहुसंदावाइ दे अङ्गाइ ?) (जाते, अपि लघुसन्तापानि तेऽङ्गानि ?)

**शकुन्तला –** अज्ज अत्थि मे विसेसो । (अद्यास्ति मे विशेषः)

**गौतमी –** इमिणा सन्ति दब्भोदएण णिराबाधं एव्व दे भविस्सदि । (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वच्छे परिणदो दिअहो । एहि उडअं एव्व गच्छह्य । (अनेन शान्तिदर्भोदकेन निराबाधमेव ते भविष्यति । वत्से, परिणतो दिवसः । एहि, उटजमेव गच्छामः ॥

(इति प्रस्थिता)

---

पदमिदमधरेऽपि योज्यम् । पिपासता पातुमिच्छता[733] । सदयमिति[734] दन्त[735]क्षताकरणमेव दयेति भावः । यावद्रसो गृह्यते तावन्मोक्ष्यामीति[736] पूर्वेण सम्बन्धः । यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ, भेदेऽवधारण इत्यमरः । अधरस्य रसः इति ध्वनिः । सुन्दरीति कर्णाटजातौ परिहासभेदः ।

द्विधा त्रिधा[737] वा विश्लेषसंगमाविति लक्षणादाह – नेपथ्ये इति । तिरस्करिण्या बहिरित्यर्थः । चक्रवाकवधूरामन्त्रयते सहचरम्, उपस्थिता[738] रजनी । सहचरं प्रियम् आमन्त्रयते, क्रन्दतीति यावत् । इदं वाक्यं रजन्युदयव्याजतः[739] सखीभ्यां शकुन्तलायै सूचनार्थमुक्तमिति बोध्यम् ॥ पौरवं(व) ! असंशय मम श्रुतशरीरवृत्तान्ता आर्या गौतमी इत एवागच्छति ।[740] तस्माद् विटपांतरितो भव । ममेति सम्बन्धे षष्ठी ।[741] इत इत, आर्या गौतमी । जातेऽपि लघुपरितापानि तेऽङ्गानि । 'जाते' इति पुत्रीं प्रति संबोधनम् । लघुः ऊनः परितापो येषु ॥ अस्ति मे विशेषः । विशेषशब्देन पूर्वस्थितेराधिक्यं न्यूनता वा दौष्यन्तं प्रकरणं च लक्ष्यते ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला** – (आत्मगतम्) हिअअ पढमं एव्व सुहोवणदे मणोहरे कादरभावं ण मुञ्चसि। साणुसअं विअंपिदस्स कहि दे संपदं संदावो। (पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्) लदावलय संदावहर आमन्तेमि तुमं भूओ वि अस्स। (हृदय प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयं विकम्पितस्य कुत्र ते साम्प्रतं सन्तापः। लतावलय सन्तापहर! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि।

(इति दुःखदुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः।)

**राजा** – (पूर्वस्थानमुपेत्य सनिश्वासम्) अहो विघ्नवत्यः प्राथितार्थसिद्धयः। मया हि –

मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षरविक्लवाभिरामम्।
मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ॥ २२ ॥

क्व नु खलु गच्छामि ? अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतामण्डपे मुहूर्तं स्थास्यामि।

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं
क्लान्ते मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः।
हस्तस्त्रस्तमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो
निर्गन्तुं सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ॥ २३ ॥

(नेपथ्ये)

---

अमुना शान्तिदर्भोदकेन निराबाधमेव शरीरं ते भविष्यति। इदं च शान्त्युदकं पूर्वं शुद्धविष्कंभे शिष्योक्तमिति बोध्यम्॥ वत्स, परिणतो दिवसः। एहि, उटजमेव गच्छामः।[742] हृदय, प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुञ्चसि। सानुशयं विघटितस्य कथं ते सांप्रतं प्रतिकारः। सुखोपनते निर्निमित्तप्राप्ते। मनोरथे वल्लभरूपमनोरथविजय[743] इत्यर्थः। सांप्रतमिदानीम्। सानुशयं गौतमीरूपनिमित्तसहितं, यथा तथा विघटितस्य वियोजितस्येत्यर्थः। अनुशयः पश्चात्तापनिमित्तयोरिति रुद्रः। प्रतिकारः समाधान इति पदमाला। लतावलय संतापहार, आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय। प.चवे.खण.[744] स इति पाठे प्रत्यवेक्षणायेत्यर्थः। प्रेमकौतुकहर्षाद्यैर्दर्शनं[745] प्रत्यवेक्षणमित्यगस्त्यः। वलयं[746] कंकणे जाल इति त्रिकाण्डी। भूयोऽपि पुनरपि। परिभोगोपभोगौ द्वौ निर्वेशश्चेति केशवः। लता एव वलयानि यस्येति दुष्यन्तपक्षे चार्थः। अङ्गुलिभिः[747] संवृत्तं पिहितम् अधरोष्ठं[748] यस्मिन्। अधरोष्टं(ष्ठं)– रदच्छादकाधो भागोर्ध्वभागयोरित्यगस्त्यः। अधरोष्ट (ष्ठ) विभागे रेखिकेत्यनन्तकविः। प्रतिषेधाक्षरैः मामेति निषेधवर्णै[750]र्विक्लवं विह्वलं च तद् अभिरामं मनोरममित्यमरशेषः। विवर्त्ति परिवर्तनशीलं कथमपि प्र[[यासेन,[751] शरीरं लुळि( लि )तं तापवशाद् आन्दोळि(लि) तं यस्याम्। इतीति शय्येति, मन्मथलेख इति चोह्यम्। इति हेतुप्रकरणप्रकारादीत्यमरः। सहसा अतर्कितम्। शून्यादपीति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते
वेदीं हुताशनवतीं परितः प्रकीर्णाः ।
छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः
सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ॥ २४ ॥

राजा – (श्रुत्वा) अयमहमागच्छामि ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

## इति तृतीयोऽङ्कः ॥

---

तया[752] रहितादपि निर्गन्तुं न शक्नोमि । किमुत तया परिपूर्णादिति कैमुतिकन्यायः । शून्यात्तया रहिताद्वेतसगृहादपि निर्गन्तुं न[753] शक्नोमि, किमुत तया परिपूर्णात् । महास्तरणादिकौतुकवतो मणिमयाद् उपकारिकागृहादिति च भङ्ग्यन्तरेण कैमुतिकन्यायो व्यज्यते । **सवनं** यज्ञः । समुपसर्गः पादपूर्णाय । प्रवृत्तप्रवृत्ता इत्यत्र[754] पौनरुक्त्यम् । छायाः[755] कान्तयः[756] । छायाऽनातपकान्त्योः स्यादिति शब्दमाला । छाया अनातपा इति केचित् । तत्र[757] अनातपस्य[758] नीलवर्णतया[759] कपिशत्वानुपपत्तेः । श्यावः(मः)[760] स्यात् कपिश इत्यमरः ॥

इति महाराजपद....[761] शाकुन्तल[762] सञ्जीवनाख्यिटप्पणे तृतीयोऽङ्कः ॥]][763]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# ॥ अथ चतुर्थोऽङ्कः ॥

**( ततः प्रविशतः कुसुमावचयमभिनयन्त्यौ सख्यौ ।)**

**अनसूया –** हला पिअंवदे, जइ वि गंधव्वेण विवाहविहिणा णिव्वुत्तकल्लाणा सउंदला अणुरुवभत्तुगामिणी संवुत्तेति णिव्वुदं मे हिअअं । तहवि एदं चिन्तणिज्जं । (सखि, प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहविधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तला अनुरूपभर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृत्तं मे हृदयम् । तथाप्येतच्चिन्तनीयम् ।)

**प्रियंवदा –** कहं विअ ? (कथमिव ?)

**अनसूया –** अज्ज सो राएसी इट्टिं परिसमाविअ इसिहिं विसज्जिदो अत्तणो णअरं पविसिअ अंदेउरसमाअदो इदोगदं उत्तंत्तं सुमरेदि वा ण वेत्ति । (अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तः पुरसमागत इतोगतं वृत्तान्तं स्मरति वा न वेति ।)

**प्रियवंदा –** विस्सद्धा होहि । ण तारिसी गुणविरोहिणी आकिदी । किन्तु तादो दाणिं इमं उत्तन्दं सुणिअ ण आणे किं पडिवज्जिस्सदित्ति । (विस्रब्धा भव । न तादृशी गुणविरोधिनी आकृतिः । किन्तु तात इदानीमिमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति ।)

**अनसूया –** जह अहं पेक्खामि तह तस्स अणुमदं (यथाहं पश्यामि तथा तस्यानुमतम् ।)

**प्रियंवदा –** कहं विअ ? (कथमिव ?)

**अनसूया –** गुणवदे कण्णआ पडिवाअणिज्जेति अअं दाव पढमो संकप्पः । तं जह देव्वं एव्व संवादेदि । णं अप्पाआसेण किदत्थो गुरुअणो । (गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत् प्रथमः सङ्कल्पः । तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वल्पायासेन कृतार्थो गुरुजनः ।)

---

[[अथ[764] अतीतानागतार्थसूचनाय प्रवेशकं प्रक्रमते – तत इति । प्रथमा अनसूयेति बोध्यम्। प्रियंवदे, यद्यपि गान्धर्वेण विवाहेन निर्वृतकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तृगामिनि[765] संवृत्ते तेति निर्वृतं मे हृदयम् । तथापि एतावच्चिन्तनीयम् ।[766] द्वितीया प्रियंवदेति ज्ञेयम् >> ।[767] अनूसये कथमिव । अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य,. ऋषिभिर्विसर्जितः । आत्मनो नगरं प्रविश्यान्तःपुरं गतः इतो वृत्तान्तं स्मरिष्यति वा न वेति ॥ विस्रब्धा[768] भव,[769] न तादृशा गुणविरोधिन आकृतिविशेषा भवन्ति । तादृशा अयशोभिः प्रसिद्धा इत्यर्थः । गुणविरोधिनोऽगुणग्राहिणः कृतघना इति यावत् । ते आकृतेराकारस्य रूपस्य वा विशेषो येषु त आकृतिविशेषा न भवन्ति इति काकुः । कित(न्तु) साधारणाकृतयो भवन्तीत्यर्थः । आकारे रूप आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो न

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रियंवदा** – (पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि अवइदाइ खु बलिप्पज्जत्ताइ कुसुमाइ। (अवचितानि खलु बलिपर्याप्तानि कुसुमानि।)

**अनसूया** – णं सउन्दलाए सोहग्गदेवदा समव्वच्चणिज्जा। (ननु शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवता समर्चनीया।)

**प्रियंवदा** – जुज्जइ (युज्यते।)

(तदेव कर्मारभते।)

(नेपथ्ये)

अयमहं भोः।

**अनसूया** – (आकर्ण्य) अदिहीणं विअ णिवेदिदं। (अतिथीनामिव निवेदितम्।)

**प्रियंवदा** – णं उडअसण्णिहिदा सउंदला। (ननूटजसन्निहिता शकुन्तला)

**अनसूया** – ण उण हिअएण सण्णिहिदा। (न पुनर्हृदयेन सन्निहिता।)

**प्रियंवदा** – होदु, अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं। (भवतु, अलमेतावद्भिः कुसुमैः।)

(इति प्रस्थिते)

(नेपथ्ये)

आः अतिथिपरिभाविनि !

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा
तपोनिधिं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥ १० ॥

---

भवन्ति; किन्तु गुणग्राहिणः कृतज्ञा भवन्तीति यामत्। अत्र चोरवद्गमनमिति[771] न्यायम् अनूसरन्तः[772] केऽपि किमपि न व्याचक्रुः॥ तात इदानीम् इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति। यथाहं पश्यामि तथा तस्यानुमतम्।[773] "दे.ख" शब्दो देशीयः, "देख" इति महाराष्ट्राः॥ कथमिव गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेति, अयं तावत्प्रथमः संकल्पस्तातस्य। तं यदि दैवमेव सम्पादयत्य प्रयासेन कृतार्थो[774] गुरुजनः। तं संकल्पम्। यदि चेत्। संपादयति[775] पूरयतीति यावत्। सखि, अपचितानीदानीम् खलु बतिकर्म पर्याप्तानि[776] कुसुमानि। ननु शकुन्तलया सौभाग्यदेवताऽर्चनीया॥ युज्यते॥ अतिथीनामिव निवेदितम्। स्वागमनसूचनेति भावः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अनसूया** — हद्धि हद्धि तं एव्व संवुत्तं। कस्सिं वि पूआरुहे अवरद्धा सुण्णहिअआ सउंदला। (पुनर्विलोक्य) ण खु जस्सि कस्सि वि। एसो दुव्वासा सुलहकोवो महेसी। तह सविअ चडुलपददुव्वाराए गहीए णिउत्तो। को अण्णो वा हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि। गच्छ, पादेसु पणमिअ णिवट्टेहि णं। जाव अहं अग्घोदअं गेहिणअ अपसप्पामि। (हा धिक् हा धिक्, तदेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हे अपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा च शप्त्वा चटूलपददुर्वारया गत्या निवृत्तः। कोऽन्यो वा हुतवहाद्दग्धुं प्रभविष्यति ? गच्छ, पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनम्। यावदहमर्घ्योदकं गृहीत्वोपसर्पामि।)

**प्रियंवदा** — तह (तथा।)

(इति निष्क्रान्ता।)

**अनसूया** — (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अह्मो आवेअक्खलिआये मह पब्भट्टं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं। (अहो आवेगस्खलिताया मम प्रभ्रष्टमग्रहस्तात् पुष्पभाजनम्।)

(इति पुष्पोच्चयं निरूपयति)

**प्रियंवदा** — सहि, पकिदिवक्को कस्स वा सो अणुणअं पडिगेण्हदि। किं चि उण साणुक्कोसो किदो। (सखि, प्रकृतिवक्रः कस्य वानुनयं प्रतिगृह्णाति ? किञ्चित्पुनः सानुक्रोशः कृतः।)

**अनसूया** — (सस्मितम्) तस्मि बहु तदो वि। कहेहि कहेहि। (तस्मिन् बहु तदपि। कथय कथय)

**प्रियंवदा** — जदा अणुणीदो वि णिवत्तिदु ण इच्छदि तदा विण्णाविदो मए। (यदा अनुनीतोऽपि निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया।)

---

ननूटजसन्निहिता शकुन्तला। आद्य पुनर्हृदये न सन्निहिता। भवतु, अलमेतावद्भिः कुसुमैः।[777] प्रमत्तो विलज्ञान रृति शब्दार्णवः। ह(हा)[778] धिक् हा धिक्, अप्रियमेव संवृत्तम्। कस्मिन्नजा(पि) पूजार्हेऽ[779]पराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला। अपराद्वा[780] अपराधं प्राप्ता। न हि यस्मिन् कस्मिन्नपि[781]। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः[782] तथा शप्त्वा सवेगचटुल दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यः शापहुतवहेन दग्धुं[783] प्रभविष्यति[784]। "हुदवहादो" इति[785] पाठे हुतवहाद्[786] अनलादपीत्यर्थः[787]। गच्छ[788] पादयोः प्रणम्य निवर्त्तयैनम्। यावदहम् अर्घ्योदकं[789] गृहीत्वोपसर्पामि। तथा। पदान्तरे स्खलितमिति परिहासध्वनिः। अम्हहे ! आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टं मेऽग्रहस्ता[790] त्पुष्पभाजनम्। "अम्हहे ! इति खेदे। आवेगो भयसम्भ्रमः। सखि प्रकृतिवक्रः कस्य सोऽनुनयं प्रतिगृह्णाति[791]। तथापि किमप्यनुक्रोशः कृतः॥ तस्मिन् बहु एतत्। अनुक्रोशकरणमित्यर्थः। अनुक्रोशो दया॥ कथय कथय॥ यदा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अनसूया** – कहं विअ ? (कथमिव ?)

**प्रियंवदा** – भअवं, पढमभत्तिं अवेक्खिअ अण्णादप्पहावस्स दुहिदुअणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वोत्ति । (भगवन् ! प्रथमभक्तिमवेक्ष्य अज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षितव्य इति ।)

**अनसूया** – तदो तदो । (ततस्ततः)

**प्रियंवदा** – सो तदो ण मे वअणं अण्णहा होदुं अरूहदि । किं दु अहिण्णाणाहरणदसणेण सावो णिवत्तिस्सदित्ति मन्दअन्दो एव्व अंदरिहिदो ।

(स ततो न मे वचनमन्यथा भवितुमर्हति । किं त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत' इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः ।)

**अनसूया** – सक्कं दाणीं अस्सासइदुं । अत्थि देण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहे अंकिदं अंगुलीअअं सुमरणिज्जत्ति सअं देण पिणद्धं । तेण साहीणोवाआ सउंदला भविस्सदि । (शक्यमिदानीमाश्वासयितुं । अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीयमिति स्वयं तेन पिनद्धम् । तेन स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति ।)

**प्रियंवदा** – एहि देवकज्जं दाव से णिव्वट्टेमो । (इति परि क्रामतः) (अनसूयां विलोक्य) अणसूए, पेक्ख दाव णं वामहत्थोवहिदवअणं आलिहिदं विअ पिअसहिं । भत्तुगदाए चिंदाए अत्ताणं वि एसा ण विभावेदि । किं उण आमंदुअं । (एहि, देवकार्यं तावदस्या निर्वर्तयावः । अनसूये, पश्य तावदेनां वामहस्तोपहितवदनामालिखितामिव प्रियसखीम् भर्तृगतया चिन्तया । आत्मानम प्येषा न विभावयति किं पुनरागन्तुकम् ।)

---

अनुनीतोऽपि निवर्तितुं नेच्छति,[792] तदा विज्ञापितो मया । कथमिव ॥ भगवन्प्रथमभक्तिमे-(म)वेक्ष्याविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति । प्रथमभक्तिं पूर्वविश्वासम् ॥ ततः ततः ॥ ततो[793] न मे वचनम् अन्यथा भवितुमर्हति । किन्त्वभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो[794] निवर्त्तिष्यत इति मन्त्रयमाण एवान्तर्हितः[795] । शक्यमिदानीं समाश्वासितुम्[796] । अस्ति तेन राजर्षिणा[797] संप्रार्थितेनस्वनामधेयांकितम्[798] अङ्गुळी(ली) यकं स्मरणीयमिति, स्वयं पिनद्धम् । तस्मिन् साधनीयोपाया[799] सखि[800] जीविष्यति । एतत्प्रकरणं प्रथमाङ्केऽङ्गुळी(ली)यकं दातुम् इच्छतीत्यादिना सूचितमित्यवधेयम् ।

एहि[802] दैवकार्यम्[803] तावदस्या[804] निवर्त्तयावः । अनसूये, पश्य तावद्वामहस्तोप[805]हितवदनाम्[806] आलिखितामिव सखीम् । वामहस्त एव[807] उपहितः उपधानीकृतो वदनाय ययेति[808] विवेकः । भर्तृगतया चिन्तयात्मानमप्येषा न विभावयति,[809] किं पुनरागन्तुकम् । विभावयति जानासीसि यावत् । अनाकारित आगन्तुरागन्तुक इति लिङ्गानुशासनम् । प्रकृते दुर्वासा[810] इति भावः ॥ प्रियंवदे ! द्वयोरेव[811]नौ मुख एव वृत्तान्तस्तिष्ठतु । रक्षणीया खलु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अनसूया** – पिअंवदे, दुवेणं एव्व णो मुहे एसो उत्तंदो चिट्ठदु। रक्खणीआ खु पकिदिपेसला सही। (प्रियंवदे, द्वयोरेव नौ मुखे एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु। रक्षणीया खलु प्रकृतिपेशला सखी।)

**प्रियंवदा** – को दाणीं उण्होदएण केअरमालिअं सिञ्चइ ? (क इदानीमुष्णोदकेन केसरमालिकां सिञ्चति।) (इति निष्क्रान्ते।)

॥ विष्कम्भकः ॥

( ततः प्रविशति सुप्तोत्थितः शिष्यः )

**शिष्यः** – वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्रभवता प्रवासादुपावृत्तेन काश्यपेन। तत्प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि कियदवशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य) हन्त प्रभातम्। तथाहि –

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवाऽत्मदशान्तरेषु ॥ २ ॥

अपि च –

---

प्रकृतिपेलवा सखी। वृत्तान्त इति ध्वनिः। पेलवा कृशा द्रविडेषु ध्वनिश्च, पेशलेति वा पाठः। क इदानीमुष्णोदकेन नवमालिकां[812] सिञ्चिष्यति। न कोऽपीत्यर्थः। तद्वदेव वृत्तं रक्ष्यत इति भावः॥ प्रवेशक इति। प्रवेशकस्तु विज्ञेयो नीचपात्रप्रयोजित इति रूपकादर्शोक्तेः[813]। केचित्तु "विचिन्तयन्ती यम् इत्युत्तमपात्रव्यवहाराच्च मिश्रविष्कम्भ इति व्याचक्रुः। तदश्वशृंगमिव संमान्यम्।

नेपथ्य इति कथनेन तत्पात्रस्य रंगतले प्रवेशाभावात्। ततः प्रविशतीति[814] सूचनाविरहात्कवेः प्रमादः। तस्मात् प्रकाशं यथा तथा। प्रकाशं[815] बहिरर्थे चेति पदमञ्जरी। यातीति। एकत इत्येकम्, पुनरुक्तं न च वाच्यम्। एके मुख्यान्यकेवला इत्यमरोक्तेः। अन्यार्थकतया[816] न दोष इति। नवपलाशापलाशे[817]त्यादिवदत्र शब्दपौनरुक्तस्य[818] दुष्परिहरत्वात्[819]। तथा चायं पाठः साधीयान्। आविष्कृत-इत्यादिकं प्रथमः पादः। यात्यन्यत इति द्वितीयः पादः। बलवत आगमनात् परमेव वर्तमानस्य गतेरनुभवसिद्धत्वात्। आविष्कृतो[820] दैवेन कर्मणा वेति शेषः। एकतः पूर्वभागोऽन्यतः पश्यिमभाग इत्यर्थः। तेजोद्वस्य सूर्याचन्द्रमसोर् युगपत्सममित्यर्थे[821] परिपाठौ[822] चेत्यगस्तयः। ननु "व्यसनोदयाभ्याम्" इत्येतत्प्रकृते व्यत्यस्तमिति[823] चेन्न. केशकेशवरूपैर्यः सृजत्यवति हन्ति चेत्यादिवदूपपत्तेः। अत एव प्रलय - स्छि (स्थि)तिसर्गाणामित्यन्तकन्द्रोही मुनिडिम्भः। किं हरिहरब्रह्मादिभिरिति भगवत्पादाश्च।[824]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ ३ ॥

(प्रविश्य पटाक्षेपेण)

**अनसूया** – एव्वं णाम विसअपरम्मुहस्स वि जणस्स ण एदं ण विदिदं जं तेण रण्णा सउंदलाए अणज्जं आअरिदम्। (एवं नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्य नैतन्न विदितम्। यत्तेन राज्ञा शकुन्तलायामन्याय्यमाचरितम् ।)

**शिष्यः** – यावदुपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

**अनसूया** – अह वा पडिबुद्धा वि किं करिस्सं। ण मे उइदेसु वि करणिज्जेसु हत्थपादं पसरदि। सकामो दाणिं कामो होदु। जेण असच्चसंधे जणे सुण्णहिअआ सही पदं कारिदा। अह वा दुव्वासकोवो एव्वं विअरेदि। अण्णहा कहं सो राएसी तारिसइ मंदिअ एत्तिअस्स आलस्स लोहमत्तं विण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं से विसज्जइस्सम्मि। दुक्खसीले तवस्सिजणे को वा अव्वत्थिअदि। णं सहीगमी दोसो त्ति ण पारेमि पवासप्पडिणिउत्तस्स तादकस्सवस्स दुस्संदपरिणीदं आवण्णसत्तं सउंदल णिवेदेदुं। इत्थं गदे किं णु खु अह्मेहिं करणिज्जं ?

---

नियम्यते शिक्ष्यते । शिक्ष्यते[825] दशान्तरेषु सुखदुःखाद्यवस्थावसरेषु । तदुक्तं मयसिद्वान्ते सुखस्यानन्तरं[826] दुःखं, दुःखस्यानन्तरं सुखमिति । अनेन युगपद्व्यसनोदयाभ्यामित्युक्तवति[827] कवावचातुर्यम् अनुसन्धेयमिति दिक् ॥ **सैव** या रमणीयशोभेति पाठे पूर्वमिति शेषः । अरमणीयशोभेति पदविभाग इदानीमिति शेषः । संस्मरणीयशोभेति पाठे सैव[828]या पूर्वदृष्टिमनन्दयदिति भावः । अत्रार्थान्तरन्यासमाह – इष्टेति । इष्टश्चन्द्रो[829], दुष्यन्त इति च व्यज्यते। "अतिमात्रा" - "सु" –कारयोरन्यतरस्य वैयर्थ्यम्[830], एकेनैव चारितार्थ्यात्।[831] स्वयं प्रवेश आमुखे दैः(यैः) पटाक्षेपेण[832] कथ्यत इति रूपकादर्शे। एवं च नाम विषयपराङ्मुखस्य तपस्विजनस्य एतद्वृत्तं[833] न विदितम्। एवं च नामेति –एतावतापीति घट्टार्थः । यत्तथाविधेन राजाज्ञा(ज्ञा) शकुन्तलायै अन्याय्यमाचरितम्। अन्याय्यम्[834] अन्यायभवं कृत्यमिति[835] शेषः । यावन्निवेदयामि निवेदयिष्यामीत्यर्थः ।

अथ प्रतिबुद्धवृत्ताऽपि किं करिष्यामि। उचितेष्वपि करणीयेषु न मे हस्तपादाः प्रसरन्ति। उचितेषु न्यायप्राप्तेष्वित्यर्थः। ह०थपादमिति "वक्तव्यं, "ह०थपादा" इति प्रमाद इति[836] कश्चितत्र। ते चंचुचरणैरित्यमरप्रयोगात्। सकाम इदानीं कामो भवतु। येनासत्यसन्धे जने शून्यहृदया शकुन्तला पदं कारिता। जने दुष्यन्ते। शून्यं निष्फलम्। पदं[837] स्थानम्। अथवा दुर्वा[स]सः कोप एवं विकारयति। दुष्टो वासो निवासो यस्येति व्युत्पत्त्या[838] "दुर्वास"

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(अथवा प्रतिबुद्धापि किं करिष्यामि ? न मे उचितेष्वपि करणीयेषु हस्तपादं प्रसरति। सकाम इदानीं कामो भवतु येनासत्यसन्धे जने शून्यहृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससःकोप एवं विकारयति। अन्यथा कथं स राजर्षिः तादृशानि मन्त्रयित्वा एतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति। तस्मादितोऽभिज्ञानाङ्गुलीयकमस्य विसर्जयिष्यामि। अथवा दुःखशीलान् तपस्विजनान् को वाऽभ्यर्थयते।

सखीगामी दोष इति न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्ताय तातकाश्यपाय दुष्यन्तपरिणीतामापन्नसत्त्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। इत्थं गते किं नु खल्वस्माभिः करणीयम्?)

(प्रविश्य)

**प्रियंवदा** — (सहर्षम्) हला, तुवर तुवर सउंदलाए पत्थाणकोदुअं णिव्वत्तेदुम्। (सखि, त्वरस्व त्वरस्व शकुन्तलायाः प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्।)

**अनसूया** — सहि, कहं एदं ? (सखि कथमेतत् ?)

**प्रियंवदा** — सुणाहि दाणिं सुहसइदपुच्छिआ सउदलाए सआसं गतास्मि।

(शृणु, इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलायाः समीपं गतास्मि।)

**अनसूया** — तदो तदो। (ततस्ततः।)

**प्रियंवदा** — दाव णं लज्जावणदवअण परिस्सइअ तादकस्सवेण एव्वं अहिणंदिदं 'दिट्ठिआ धूमावरुत्थदिट्ठिणो वि अजमाणस्स पावए वव्व आहुदी पडिदा। वच्छे सुसिस्सपरिदिण्णा विअ विज्जा असोअणिज्जसि मे संउत्ता।

---

इत्यदन्तः शब्द इति कश्चित्। तदव्युत्पत्ति[ः] प्राकृतापरिचयदोषः। "हलोऽन्त्यस्य" इति विसर्गलोपेन "दुण्वासकोवो" इत्यस्य शास्त्रसिद्धत्वात्[839]। अत एव "मणे" ईति डिण्डमः। अदन्तोऽसावमूल ईति प्रामाणिकाः। अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि[840] वचनानि मन्त्रयित्वा एतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति। तस्मादितोऽभिज्ञान[841]मङ्गुलीयकम् अस्मै विसर्जयामि। विसृजामीति यावत्। दुःखशीले तपस्विजने केन किमभ्यर्थ्यते[842] यस्य वस्तु तस्यैवास्तु इति भावः। अत एव नारुहदि एदमिति प्रथमाङ्के सूचितम्। सखीगामी दोष इति न पारयामि[843] प्रवासप्रतिनिवृत्ताय तात[844] काश्यपाय दुष्यन्तपरिणीताम् आपन्नसत्वां शकुन्तलां निवेदयितुम्। पारयामि शक्नोमीत्यर्थः। आपन्नसत्वा,[845] गर्भिणीं-(णी) ध्वनिश्य। इत्थं गते किन्नु खल्वावाभ्यां करणीयम्। त्वरस्व[846] त्वरस्व। शकुन्तलायै प्रस्थानकौतुकं निर्वर्तयितुम्॥

कथमेतत् शृणु, इदानी सुखशयतिऽपृच्छायै[847] शकुन्तलायाः समीपं गतास्मि। सुखेति –सुखशयनरूपकुशलप्रश्नायेत्यर्थः॥ ततः ततः॥ तदा त्ता(ता) वदेनां लज्जावनतवदनां परिष्वज्य[848] तातकाश्पेनैवमभिनन्दितम्। दिष्ट्या धूमरुद्धदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एव आहुतिः पतिता।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



अज्जेज एव्व राएसिपरिग्गहीदं तुम भत्तणो सआसं विसज्जमि त्ति । (तावदेनां लज्जावनतवदनां परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम् । दिष्ट्या धूमावरुद्धदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता वत्से सुशिष्यपरित्तेव विद्याऽशोचनीयासि मे संवृत्ता । अद्यैव राजर्षिपरिगृहीतां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति ।)

**अनसूया –** अह केण सूइदो अअं तादस्स उत्तंदो । (अथ केन सूचितोऽयं तातस्य वृत्तान्तः ?)

**प्रियंवदा –** अग्गिसरणं पविठ्ठस्स सरीरं विणा छादोमेइए वण्आए । (अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीरं विना छन्दोमय्या वाण्या ।)

**अनसूया –** (सस्मितम्) कहेहि कहेहि । (कथय कथय ।)

**प्रियंवदा –** (संस्कृतमाश्रित्य)

**दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।**
**अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भां शमीमिव ॥ ४ ॥**

**अनसूया –** (प्रियंवदामाश्लिष्य) सहि पिअं मे । किंदु अज्ज एव्व सउंदला णोअदित्ति उक्कण्ठासाहारणं परिदोसं अणुहोमि । (सखि ! प्रियं मे । किंत्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि ।)

**प्रियंवदा –** सहि वअं दाव उक्कण्ठं विनोदइस्सह्मो । सा तवस्सिणी णिव्वुदा होदु । (सखि ! आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यावः । सा तपस्विनी निर्वृता भवतु ।)

**अनसूया –** तेण हि एदस्सि चूदसाहावलंबिदे णालिएरसमुग्गए तण्णिमित्तं एव्व कालान्दरक्खमा णिक्खित्ता मए केसरमालिआ । तं तुमं हत्थसंणिहिदं करेहि । जाव अहं वि से गोरोअणं तित्थमित्तिअं दुव्वाकिसलआइत्ति मंगलसमालंभणाई विरएमि ।

---

जयेत्यत्र[849] "यस्य ज"[850] इति जत्वम् ॥ वत्से ! सुशिष्या[य][851]परिदत्तेव विद्या अशोचनीयासि मे संवृत्ता । अद्यैव राजर्षिपरिगृहीतां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति । अथ केन सूचितोऽयं तातकाश्यपाय वृत्तान्तः । अग्निशरणं प्रविष्टाय[852] शरीरं विना छन्दोमय्या वाचा । अशरीरिण्येति भावः । प्रविष्टाय,[853] शरीरं विनेति ध्वनिः । कथय कथय । **आहितं समर्पितं तेजः** रेतः । अग्निर्गर्भे यस्याः ॥ सखि प्रियं मे, प्रियं मे । किन्त्वद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषम् अनुभवामि । उत्कण्ठयोत्कलिकयासाधारणं[854] महान्तम् । उकळी इति महाराष्ट्राः । सखि, अहं तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्यामि । चमत्करिष्यामीति यावत् । सा तपस्विनी निर्वृता भवतु । मुनिदीनौ तपस्विनावित्यमरः । निर्वृता सुखितेत्यर्थः । तेन ह्येतस्मिन् चूतशाखावलम्बिते नाळि(लि) केरसमुद्गके[855] तन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका, तां त्वं हस्तसन्निहितां कुरुष्व । यावदहमप्यस्यै गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(तेन ह्येतस्मिन् चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गके तन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका । तां त्वं हस्तसन्निहितां कुरु । यावदहमप्यस्याः गोरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि ।

**प्रियंवदा** – तह करीअदु । (तथा क्रियताम्)

(अनसूया निष्क्रान्ता । प्रियंवदा नाट्येन सुमनोभाजनं गृह्णाति ।)

**( नेपथ्ये )**

गौतमि आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्राः शकुन्तलानयनाय ।

**प्रियंवदा** – (कर्णं दत्वा ।) अनसूये पेक्ख । एदे खु हत्थिणणअरआमिणो इसिणो सद्दाअंति। (अनसूये ! पश्य, एते खलु हास्तिननगरगामिन ऋषयश्शब्दायन्ते ।

**( प्रविश्य समालम्भनहस्ता ।)**

**अनसूया** – सहि, एहि । गच्छम्ह । (सखि ! एहि गच्छावः ।)

**( इति परिक्रामतः )**

**प्रियंवदा** – (विलोक्य) एसा सुज्जोदए सिहामज्जिदा अब्भत्थसिणातैवणी वाक्ख दहत्थाहि सोत्थिवाअणि आहि तावसीहिं अहिणंदिज्जमाणा सउंदला चिट्टई उवसप्पाम णं (इत्युपसर्पतः ।) ( एषा सूर्योदये शिखामार्जिता अभ्यक्तस्नातैव) प्रतिष्ठितनीवाराक्षत-हस्ताभिस्स्वस्तिवाच-निकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति उपसर्पावैनाम् ।

**( ततः प्रविशति तथोद्दिष्टव्यापारा आसनस्था शकुन्तला ।)**

**तापसीनामन्यतमा** – ( शकुन्तलां प्रति ) जादे भत्तुणो बहुमाणसुअअं महादेवीसद्दं अहिअच्छ। (जाते ! भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दमधिगच्छ )

---

दुर्वाकिसलयानीति मंगळ(ल) समालम्भनानि विरचयामि । चूत इति महाराष्ट्रादिजातौ परिहासातिशयः । समुद्गके सम्पुंटके । तपोधनानामीदृशः सम्प्रदाय इति भावः । तन्निमित्तं शकुन्तलाकृते । केसरेति "धोळसरी" इति महाराष्ट्राः । इति शब्दः प्रकारवाची[856] । समालम्भनं[857] विलेपनम् । आर्षोऽयं विधिः । तथा कुरुष्व । पूजायां पादमिश्राद्या इति शब्दमाला । मिश्रशब्दो मुख्यवाचीति केचित् । हरणं नयनम् । अनसूये त्वरस्व त्वलस्व । एते खलु हास्तिन[858] नगरगामिन ऋषयः शब्दापयन्ते । सखि एहि एहि गच्छावः[859] । एषा सूर्योदये शिखामज्जिता नीवाराक्षतहस्ताभिः स्वस्तिवाचि(च) निकाभिः तापसीभिर् अभिनन्द्यमाना[860] शकुन्तला तिष्ठति । उपसर्पाव एनाम् । शिखा केशपाशो मज्जितो, यया[861] मंगळ(ल)स्नातेत्यर्थः । स्वस्ति शुभं वाचनिकं वाचिकं यासाम् । शुभे स्वस्तीति वाचिके स्याद् वाचनिकमिति पदमालारत्नमाले । जाते, भर्तुर्बहुमानसूचकं "देवी" शब्दमधिगच्छ[862] । देवी कृताभिषेकायामित्यमरः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**अपरा** – वच्छे वीरप्पसविणी होहि । (वत्से ! वीरप्रसविनी भव ।)

**अन्या** – जादे भत्तुणो बहुमदा होहि । (जाते भर्तुर्बहुमता भव ।)

**( इत्याशिषो दत्वा गौतमीवर्जं निष्क्रान्ताः ।)**

**सख्यौ** – (उपसृत्य) सहि सुहमज्जणं दे जादम् ? । (सखि ! सुखमज्जनं ते जातम् ?।)

**शकुन्तला** – साअदं मे पिअसहीणं । इदो णिसीदह । (स्वागतं मे प्रियसखीभ्यां । इतो निषीदतम् ।)

**उभे** – ( मङ्गलपात्राण्यादाय उपविश्य) हला सउन्दले सज्जा होहि । जाव दे वअं मङ्गलसमालंभणं विरएमो । (हला शकुन्तले ! सज्जा भव । यावत्ते आवां मङ्गलसमालंभनं विरचयावः )

**शकुन्तला** – इदं खु बहुमंतव्वं । दुल्लहं दाव मे सहीमण्डणं भविस्सदि । (इति बाष्पं विकिरति) (इदं खलु बहुमन्तव्यम् । दुर्लभं तावन्मे सखीमण्डनं भविष्यति ।)

**सख्यौ** – सहि ण दे उइदं मंगलकाले रोइदुम् । (इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाट्येन प्रसाधयतः) (सखि ! न ते उचितं मङ्गलकाले रोदितुम् ।)

**प्रियंवदा** – सहि आहरणोइदं रुवं अस्समसुलहेहिं पसाहणेहिं विआरिअदि । (सखि ! आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर्विकार्यते ।)

**( ततः प्रविष्टावुपायनहस्तावृषिकुमारौ ।)**

**ऋषिकुमारौ** – इदमलङ्करणम् । अलंक्रियतामत्रभवती ।

**( सर्वा विलोक्य विस्मिताः )**

**गौतमी** – वच्छ णारद कुदो एदं ?। (वत्स नारद ! कुत एतत् ?)

**प्रथमः** – तातकाश्यपप्रभावात् ।

---

वत्से, वी[[रप्रसविनी[863] भव । वीरप्रसविनी वि(वी) रमातैदं(तेति) । वीरसूरपी(?)ति जयः । बाले, भर्तुर्बहुमता भव । गौतमीवर्ज्या यस्मिन्कर्मणीति बोध्यम् । सखि मुखमज्जनं जातम् । मज्जनं स्नानम् इति ध्वनिः । इतो निषीदतम् । हला शकुन्तले, सज्जा भव । यावते (त्ते) आवां मंगलसमालम्भनं विरचयावः । इदं खलु बहु मन्तव्यं, दुर्लभं तावन्मे सखीमण्डनं भविष्यति । दुर्ल्लभामिति ध्वनिः । सखि, न त उचितं मंगलकाले रोदितुम् । सखि, आभरणोचितं रूपमाश्रमसुलभैः प्रसाधनैर् विक्रियते । विकृतं क्रियते । भूषणे तु प्रसाधनमिति त्रिकाण्डशेत्रः । अलं क्रियताम् अलंक्रियतामिति च ध्वनी (निः) । वत्स नारद कुत एतत् । किं मानसी सृष्टिः । न खल्विति भिन्नो वाक्यखण्डः । आहरतेति कुपाठः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**गौतमी** — किं माणसी सिट्टी । (किं मानसी सृष्टिः ?)

**द्वितीयः** — न खलु, श्रूयतां । तत्रभवता काश्यपेन वयमाज्ञापिता शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति । तत इदानीं —

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥ ५ ॥

**प्रियंवदा** — (शकुन्तलां विलोक्य) हला इमाए अब्भुववत्तीए सूइमा दे भत्तुणो गेहे अणुहोदव्वा राअलच्छी । (सखि । अनयाभ्युपपत्त्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेनुभवितव्या राजलक्ष्मीः ।)

(शकुन्तला व्रीडां निरूपयति ।)

**प्रथमः** — गौतम, एह्येहि अभिषेकावतीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः ।

**द्वितीयः** — तथा ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

**अनसूया** — सहि अणुवजुत्तभूसणो अअं जणो । तह वि चित्तकम्मपरिअएण दाणिं दे अंगेसु आहरणविणिओअं करेमो । (सखि ! अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः । तथापि चित्रकर्मपरिचयेनेदानीं ते अङ्गेष्वाभरणविनियोगं कुर्वः ।)

**शकुन्तला** — जाणे वो णेवुणं । (जाने वां नैपुण्यम्) (उभे नाट्येनालङ्कुरुतः ।)

(ततः प्रविशति स्नातोत्थितः काश्यपः)

---

ऋषिकुमारकाविति द्विवचनप्रयोगात् । आहरतमिति सुपाठः । केनचिदिति वनस्पतिनेत्यर्थः । वानस्पत्यः फलैः[:] पुष्पो(ष्पा) तै(त्तै)रपुष्पाद्वनस्पतिरित्ययः । तरुणम् अभिनवम् । तरुणेति च पाठः । मंळले(ले) साधु मंगल्यमित्यमरशेषः । निष्ठ्यतः निर्मित इति यावत् । अन्य (न्ये) भ्यो वनस्पतिभ्यः । आपर्व-भागं प्यं(अं) गुलीपर्वप्रदेशपर्यन्तम् उत्थितैः । तच्छब्देन वनस्पतयो गृह्यन्ते । तेषां किसलयोद्भेदः पल्लवोदयः । तस्य प्रतिद्वन्द्विभिः प्रतिभटैः समानैरिति यावत् । अत्र केनचिदित्येकं पुनरुक्तम् ॥ हला अनयाऽऽभ्युपपत्या सूचिता ते भर्तुर्गेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीः । अभ्युपपत्तिरनुग्रह इति रत्नमाला । सवि(खि), अनुपयुक्तभूषणोऽयं जनः, तथापि चित्रकर्मपरिचयेन थेऽङ्गेष्वाभरणविनियोगं क (कु)र्वः । अनुपयुक्तानि भूषणानि यस्य । अर्घ्यं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**काश्यपः –**

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ६ ॥

**सख्यौ –** हला सउन्दले अवसिदमण्डणासि । परिधेहि सम्पदं खोमजुअलं । (हला शकुन्तले ! अवसितमण्डनासि । परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम् ।)

**( शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते )**

**गौतमी :** जादे एसो दे आणंदपरिवाहिणा चक्खुणा परिस्सअंदो विअ गुरु उवट्ठिदो। आआरं दाव पडिवज्ज। ( जाते, एष ते आनदपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः । आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व ।)

**शकुन्तला –** (सव्रीडम् ।) ताद वंदामि । (तात ! वन्दे ।)

**काश्यपः –** वत्से !

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥ ७ ॥

**गौतमी –** भवअं वरा खु एदे ण आसिसा । (भगवन् ! वरा खल्वेते नाशिष्यः ।)

**काश्यपः –** वत्से ! एहि इतस्सद्योहुतानग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व ।

**( सर्वे परिक्रामन्ति ।)**

---

दिव्यभूषणप्राप्तेरिति भावः । परिचयेन{प्र}प्रतिलेखनपरिशीलनेन हेतुनैः(ना) वेत्यर्थः । विनियोगं यथोचितगुंफनरूप[मि]त्याशयः । एतेन स्वचातुर्यशकुन्तलासौन्दर्यातिशयौ व्यज्य(ज्ये)ते । जो(जा)नेवा(वां) नैपुण(ण्य)म् ॥ उत्कण्ठोत्कलिके समे इत्यमरः । उत्कण्ठ सा मता यस्तु प्रेमावेशभरोदय इति हेमचन्द्रः । जडं स्तब्धं विषयग्राहकं नेत्यर्थः ।

विश्लेषदुःखैरिति ध्वनि) । हला अवसितमंडनासि । परिधेहि साम्प्रतं क्षौमयुगळं(लम्) । अवसितम् अवसानं प्रापितमिति ध्वनिः । युगलमिति प्रावरणायैकमुपरि चैकमिति विज्ञेयम् । वैरणइति महाराष्ट्राः । अत एव "वसने दधती पुनर्नवीने" इति बाणः । जाते, एष वाम् आनन्दं(न्द) परिवाहिना(णा)चक्षुषा पिव(ब)न्निव गुरुरुपस्थितः । आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व । उपस्थितः सञ्ज्ञातोपस्थ इति ध्वनिः । तात वन्दे ॥ शास्ति यश्चाज्ञया राज्ञः, स सम्रहि(म्राडि)त्यमरः । सा शर्मिष्ठा पूरुमिव ॥ भगवन्वराः खल्वस्यायेते नाशिष्यः ।

अथ वैदिकमर्यादया पुनराह-अमीति । धिष्ण्यं स्थानम् । हव्यमाज्यादिकम् । वैतानाः यज्ञसम्बन्धिनः । प्रागुक्तलक्ष]]णं[864] द्विपदीवृत्त[865]मिदम् । 'वन्ह(ह्न)य" इत्यत्र "अग्नय" इति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**काश्यपः** — (ऋक्छन्दसा आशास्ते ।)

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः
समिद्धन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-
वैंतानास्त्वां वह्नयः पालयन्तु ॥ ८ ॥

प्रतिष्ठस्वेदानीम् । (सदृष्टिक्षेपम् ।) क्व ते शार्ङ्गरवमिश्राः ?

(प्रविश्य)

**शिष्यः** — भगवन् । इमे स्मः ।

**काश्यपः** — शार्ङ्गरव ! भगिन्यास्ते मार्गमादेशय ।

**शार्ङ्गरवः** — इत इतो भवती । (शकुन्तला परिक्रामति)

**काशष्यः** — अहो ! सन्निहितदेवतास्तपोवनतरवः ।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः प्रसवप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ९ ॥

(कोकिलस्वनं सूचयित्वा)

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ १० ॥

(आकाशे)

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः ।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः
शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः ॥ ११ ॥

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति ।)

---

च पाठः । अत्रे(त्रै)वानला इति पाठे तुल्यं मात्रावृत्तमि[866]त्यवगन्तव्यम् । भगिन्या इति ध्वनिः । तख इति संबोधनम् । **अपीतेष्वपीत**-वत्स्वित्यर्थो[867] बोध्यः । पीता गावो, भुक्ता ब्राह्म(ह्म)णा[868] इति भाष्येऽनुशासनात्[869] । पल्लवम् उत्तंस्त(सत)येति शेषः ॥ यथैभिरीदृशं कलं[870] **परभृतविरुतम्** उत्तरीकृतमित्युत्तरार्धस्यान्वयः । उत्तरवाक्ये "यथा" शब्दात्पूर्व[871]वाक्ये "तथा" शब्दानपेक्षा । विरुतं कुजितं कमलव्यक्त[म्]मधुरम्[872] एभिः तरुभिः । ईदृशं ईदृग्विधम्[873] ॥ अन्तरमवकाशः ॥ **कुशेशयानि**[874] शतपत्राणि[875] तेषां रजम् इव मृदु रेणु र्यस्मिन् । शान्तः सौम्यो ध्वनिश्च । एकश्चकारः पादपूरेण । जात, इदानीं ज्ञतिजनस्निग्धाभिर् अनुज्ञातगमनासि[876] तपोवनदेवताभिः । प्रणम भगवतीभ्यः । ज्ञातिजनवदित्यर्थः । प्रियंवदे, आर्यपुत्रदर्शनपर्युत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यज्य(ज)न्त्याः दुःखेन मे चरणौ[877] पुरोमुखौ न वर्तेते । न केवलं तपोवनविरहकातरा[878]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**गौतमी** – जादे दाणिं णादिजणसिणिद्धाहिं अणुण्णादगमणासि तवोवणदेवदाहिं। पणम भअवदीणं । (जाते ! इदानीं ज्ञातिजनस्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवनदेवताभिः । प्रणम भगवतीनाम् ।)

**शकुन्तला** – (सप्रणामं परिक्रम्य । जनान्तिकम्) हला पिअंवदे, अज्जउत्तदंसणोस्सुआए वि अस्समपदं परिच्चअंतीए दुक्खेण मे चलणा विमहा वहंदि । (हला प्रियंवदे ! आर्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अपि आश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ विमुखौ वर्तेते ।)

**प्रियंवदा** – ण केवलं तवोवणविरहकादरा सही एव्व । तुए उवहिदविओअस्स तवोवणस्स वि दाव समवत्थं पेक्ख । (न केवलं तपोवनविरहकातरा सख्येव । एवं त्वयोपहितनियोगस्य तपोवनस्यापि तावत्समवस्थां पश्य ।

**उग्गलिअदब्भवकवला मिआ परिच्चच्चणचणा मोरा ।**
**णिपतत् पण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सूणि विअ लदाओ ॥ १२ ॥**
**( उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तना मयूराः ।**
**निपतत्पाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥)**

**शकुन्तला** – (स्मृत्वा) ताद लदाभइणिं वणजोसिणि दाव आमंतइस्सं । (तात ! लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये ।)

**काश्यपः** – अवैमि ते तस्यां सोदर्यस्नेहम् । इयं तावद्दक्षिणेन ।

**शकुन्तला** – (लतामुपेत्य) वणजोसिणि चूदसंगदा वि पच्चालिंग मं इदोगदाहिं साहाबाहहिं । अज्ज पहुदि दूरवट्टिणी खु अहं दे भविस्सम् । (वनज्योत्स्ने ! चूतसंगतापि प्रत्यालिङ्ग मामितो गताभिश्शाखाबाहाभिः । अद्यप्रभृति दूरवर्तिनी खल्वहं ते भविष्यामि ।)

---

सखेव । त्वयोपहितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समावस्थां[879] पश्य । उपहितः सन्निहित इति यावत् । "समव०थमिति" पाठे सम्यगवस्थामित्यर्थः । उद्गळि(लि)तदर्भकवळा(ला) मृगाः, परित्यक्तनर्तना मयूराः । अपसृतापाण्डुपत्रा मुञ्चतीवाश्रूणि लताः । "मयूरमयूखयोर्वेति"[880] सूत्रेण मोरा इति रूपसिद्धिः । मोर इति महाराष्ट्राः । पत्राणाम् अश्रुत्वेनोत्प्रेक्षणम् ॥[881] तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये । "तस्यान्ते" इति ध्वनिः । सोदरीति कवेः प्रमादः । न च "सोदरी निलये"ति श्रीहर्ष इति वाच्यम् । सोदरेक्ता न सोदरीति समयपद्धतिविरोधात् । अत एव "त्वं सोदरा सिगरळस्येति" मायणः । युक्तं ताव[द्]"धनहनं विषसेदराया"(?) इति क्रीडाचन्द्रश्च । सोदरा(र) स्नेहमिति विशेषज्ञाः[883] । एतन्नामैव न जग्राह कोऽपि व्याख्याकारः । वनज्योस्ने(त्स्ने) ! चूतसंगत(ता)ऽपि प्रत्यालिङ्ग[884] मामितो गताभिः शाखाबाहाभिः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**काश्यपः** — संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे
भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम् ।
चूतेन संगतवती नवमालिकेय-
मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः ॥ १३ ॥

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व ।

**शकुन्तला** — हला एसा दुवेणं वो हत्थणिक्खेवो । (सख्यौ । एषा द्वयोरपि वां हस्तनिक्षेपः ।)

**उभे** — अअं जणो दाणिं तुए कस्स हत्थे समप्पिदो । (इति बाष्पं विकिरतः ।) (अयं जन इदानीं कस्य हस्ते समर्पितः ?)

**काश्यपः** — अनसूये ! अलं रुदित्वा । ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला । (सर्वे परिक्रामन्ति)

**शकुन्तला** — ताद एसा उडअपज्जदआरिणी गब्भमंथरा मिअवहू जदा अणहप्पसवा होइ तदा मे किं वि पिअणिवेदइत्तअं विसज्जेहि ।

(तात ! एषा उटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति, तदा मे कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जय ।)

**काश्यपः** — भवतु, नेदं विस्मरिष्यामः ।

**शकुन्तला** — (गतिभङ्गं रूपयित्वा) किं णु खु एसो पुणो पुणो वि णिवसणपटे मे सजइ (इति परावर्तते) । (किं तु खल्वेष पुनः पुनरपि निवसनपटे मे सज्जति ।)

---

अद्यप्रभृति दूरवर्त्तिनी[885] खलु ते भविष्यामि ॥ द्वयोर्भुजबाहु इत्यमरः । बाहा लतैवेत्यनन्तकविः । चूतेति, लिंगेति[886],दूरवर्त्तिनीति च परिहासः ॥ त्वय्यस्यां नवमल्लिकायां च विषय इत्यर्थः । वनज्योत्स्नेति धावळ्य(ल्य) भरान्नवमल्लिकाया एव नामधेयम् । व्यवहारप्राचुर्या-च्छकुन्त[ला]मै(मे)व[887] कल्पितमिति बोध्यम् । अस्मिन्पद्ये यम् अस्याम् अहम् इति ध्वनिः ॥ अथ शकुन्तला वनज्योत्स्नामधिकृत्य सख्यौ प्रतिवदति[888]एष इति । एष द्वयोर्हस्तनिक्षेपः ॥ अयं जनस्त्वयेदानीं कस्य हस्तेऽर्पितः ।[889]

तातैषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधू र्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मे किमपि प्रियनिवेदयितृकं पत्रकं[890] विसर्जय ॥ "प०जंते"ति कवेः प्रमादः । व्याख्याकृदपि कश्चिदत्र मौनभंगीमङ्गीचकार । पर्यन्तेति प्रयोगे "र्यस्य ज "[891] इति सूत्रेण प.जंते]][892]ति वक्तव्यस्य प्रकृते दौर्बल्यात् ।[893] "तूर्य[894]धैर्यसौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु र[895] इति विशेषसूत्रेण तस्य बाधिततया पेरंतेति कथनस्य साधीयस्त्वात् ।[896] अत एव पेरंतवासीति राजशेखरः, पेरंत अरोहोहीति क्षेमेन्द्रश्च । गर्भेण मन्थरा मनोज्ञा । मन्थरं मृदुरम्ययोरिति[897] वामनः । मन्देरेति पाठे "मन्दगामी तु मन्दर

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**काश्यपः –** वत्से

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे ।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ १४ ॥

**शकुन्तला –** वच्छ किम् सहवासपरिच्चाइणिं मं अणुसरसि । अइरप्पसूदाए जणणीए विणा वि वढ्ढिदो एव्व । दाणिं वि तुमं मए विरहिदं तादों चिदिस्सदि । णिवट्टेहि दाव । (वत्स। किं सहवासपरित्यागिनीं मामनुसरसि । अचिरप्रसूतया जनन्या विनापि वर्धित एव । इदानीमपि त्वां मया विरहितं तातश्चिन्तयिष्यति । निवर्तस्व तावत् ।

(इति रुदती प्रस्थिता)

**काश्यपः –**

उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरुपरुद्धवृत्तिं
बाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम् ।
अस्मिन्नलक्षित-नतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ॥ १५ ॥

---

इत्यमरः । मन्दं[898]राति गच्छतीति[899] क्षीरस्वामीव जयदेवोऽपि व्याचकार । अनघो निष्प्रमादः प्रसवो यस्याः । विघ्नप्रमादपापार्त्तिष्वघमिति[900] मेदिनी । किमपि स्त्रीपुंसाविति[901] भावः । विसर्जय प्रेषयेति यावत् । विसृजत्युत्सृजति विसर्जयतीति केदारः । प्रस्मरिष्यामीति पाठेऽप्ययमेवार्थः ।[902] विस्मरति-प्रस्मरतीति माठरश्रीनाथौ ।[903] तथा च नाक्षराणि पठता[904] किमपाठि प्रस्मृत इति श्रीहर्षः । विस्मृतः किमथवेत्यंभ्रान्त प्रतियोगिनः[905]केचित(त्त)त्र अपाठि विस्मृत इत्याद्यन्तसन्धावेकमां(मा)[906]त्रान्यूनतया छन्दोभंगात् । ननु पादान्तस्थं[907] गुर्विति चेन्न । वसन्ततिलकेन्द्रवज्रादिवृत्तवर्ज्यं द्वितीयतुरीयपादान्तस्थमक्षरमेव गुरु नेतरदिति दण्डिना व्यवस्थापितत्वादिति[909] दिक् । किं नु खल्वेतत् पुनः पुनर्वसनपदे मृगः सज्जति । वसनं वस्त्रम् । पदं प्रान्तावनांघ्रिष्विति रभसः ॥ व्रणविरोपणं भक्ष्यमाणकुशांकुरजनितं[910] क्षतनिवारकमिति यावत् । इंगुदी तापसतरुरित्यमरः । सूची[911]कयहादिप्रयोगात् सूचिविद्ध इति कवेः प्रमाद इति केचित्तत्र[912] । इदन्तोऽप्यस्ति । अत एव मुष्टिग्रायत्वं सूचिभेद्यतेति कल्पलताकारः । यवसूचि[913] सूत्रितेति धोई कविश्च । सूचिरग्रमिति केचित् । सूक्ष्मलोहशलाकायां,[914] सूच्यग्रे चेति नानार्थमाला । वर्धित एव वर्धितकः स्वार्थेऽल्पार्थे[915] वा "क" प्रत्ययः । अत एव "कूश्माण्डखण्डक"इति क्षेमेन्द्रः । नवका इति वासवदत्ता च । व्यर्थोऽपि[916] ककारोऽनन्यगत्या पादपूरक इति बहवः । न जहाति न मुञ्चति । पुत्रेषु कृतकः कृत्रिमः । पुत्रचासौ "कृतक च[917]। अथवा पुत्रवत्कृताः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शाङ्र्गरवः** — भगवन्नोदकान्तात् स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्य इति श्रूयते । तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य नः प्रतिगन्तुमर्हसि ।

**काश्यपः** — तेन हीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः ।

**( सर्वे परिक्रम्य स्थिताः।)**

**काश्यपः** — (आत्मगतम्) किं नु खलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम् ? (इति चिन्तयति)

**शकुन्तला** — (जनान्तिकम्) हला पेक्ख दक्खिणदो णलिणी पत्तंदरिदं वि सहअरं अदेक्खंती आदुरा चक्कवाई आरसइ दिक्करं खु अहं तक्कयामि । (सख्यौ पश्यतं दक्षिणतो नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी आरसति । दुष्करं खल्वहं तर्कयामि।

**अनसूया** — सहि मा एव्वं मंतेहि । (सखि ! मैवं मन्त्रयस्व ।)

**एसा वि पिएण विणा रअणीं गमेई दीहअरं ।**
**गुरुअ वि विरहदुक्खं आसाबंधो सहावेदि ॥ १६ ॥**
**( एषापि प्रियेण विना रजनीं गमयति दीर्घतराम् ।**
**गुरुकमपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ॥)**

**काश्यपः** —

**अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-**
**स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।**

---

स्वीकृताः पुत्रकृतास्तेषु मुख्यः पुत्रकृतकः । स्वार्थमुख्यार्थयोः कः स्यादल्पार्थे चेति हलायुधः । वत्स, किं सहवास[918]परित्यागिनीं मामुनसरसि । अचिरप्रसूतया जनन्या विनाऽपि वर्धित एव इदानीमपि त्वां मया[919] विरहितं तातः पालयिष्यति । निवर्त्तस्व तावत् । "व०ढिदो"[920] इत्यत्र "वृधेर्व०ढ"[921] इति व०ढादेशः । मया विरहितमिति ध्वनिः ॥ **उपरुद्धावृत्तिर्निमेषोन्मेषरूपा**[922] येन । विरतो विगतोऽनुबन्धः संबन्धो यस्य । क्षीरवृक्षो न्यग्रोधः । युक्ते तु युक्तरूपं चेत्यमरमाला । हला, पश्य[923]दक्षिणतो नळि(लि) नीपत्रान्तरितं सहचरम् अपश्यन्ती[924] आतुरा चक्रवाक्यारसति । दुष्करं खल्वहं तर्कयामि ।[925] "आरसति" आक्रन्दतीत्यर्थः । एतेन विवादवैमनस्य रूपो भाव्यर्थः सूचित इति बोध्यम् ॥[926]

सखि, मैवं मन्त्रयस्व । **एषा प्रियेण** विनापि गमयति रजना दीर्घतरं(रां?), गुरुविरहादुःखम् आशाबन्धः सहयति । गुरोर्विरहो विश्लेषो महांश्चासौ वियोगश्चेत्यन्योऽर्थः। रात्रिमात्रं चक्रवाकानां बाधः कथंचित्सह्यः । असह्ये दीर्घविरहे त्वाशाबन्धेनैव जीव्यत इति भावः॥ **अस्मानिति** । संयमस्तु तपस्यपीति[927] विश्वः । उच्चैरुन्नतम् । त्वयि विषये । कथमपि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ १७ ॥

शार्ङ्गरवः – गृहीतः संदेशः ।

काश्यपः – वत्से! त्वमिदानीमनुशासनीयासि, वनौकसोऽपि सन्तो लोकज्ञा वयम् ।

शार्ङ्गरवः – न खलु धीमतामविषयो नाम ।

काश्यपः – सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य -

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ १८ ॥

कथं वा गौतमी मन्यते ?।

गौतमी – एत्तिओ एव्व वहूअणस्स उवएसो । वच्छे एदं खु सव्वं ओधारेहि । (एतावानेव वधूजनस्योपदेशः । वत्से ! एतत् खलु सर्वमवधारय ।)

---

प्रयासेन । अबान्धवकृतां[928] बान्धवैर्बन्धुभिर्न कृताम् । बन्धोर्भावः बान्धवं बन्धुत्वमिति यावत् । तेनापि न कृताम् बन्धुत्वसंबन्धस्याप्रसक्तेरिति[929] भावः । तथा च दैवात्स्वयमेव कृतामित्यर्थः । अस्याः ताम् अनिर्वाच्यां स्नेहप्रवृत्तिं[930] प्रणयव्यापारञ्च ।[931] साधु सम्यक् । साधु सम्यगर्थ [[म]]नोज्ञयोरित्यमरमाला । विचिन्त्य विभाव्य । इयं शकुन्तला दारेषु भार्यासु । समाना(नता)या भावः [[सामान्यं तस्य प्रतिपत्तिर्मर्यादा सा पूर्व प्रथमा यस्मिन्कर्मणि[933] तत्]] सामान्य प्रतिपत्तिपूर्वकं यथा तथा । प्रतिपत्तिस्तु मर्यादेति[934] केशवः । दृश्या ।[935] अतोऽस्मात् दर्शनाद् इत्यर्थः । परम्अन्यत् ।[936] अनन्यसाधारणप्रेमपात्रीकरणादिकमित्यर्थः । भाग्यायत्तं दैवनाधीनं, तद्बन्धुभिर्न वाच्यमिति कवेर्मनोगतोऽर्थः ।[937] एवमालोड्य प्रकृते "वयं तापसाः सर्वतो गोपायिता[938] भवता महाकुलेन, भवदनुरक्तेयं काचिदरण्यमृगीत्यमन्यमानेन दारसाधारणी नन्दनीयेति[939] भावः । अत्र दुर्विदग्धाः - सेति, वेति,[940] अन्येत्यादि[941] खण्डशः,[942] अत्र पूर्व[943] महादेवो युक्ता[944] शूरस्य भीतस्येत्यादि स्थलवन्नानाविधम् ऋषिकोपसंदेशवाग[946]भिप्रायोपपादनं दौष्पांडित्य[947]मुररीकुर्वन्ति,[948] तन्न साधुहृदयंगमम्[949] । "मा स्म[950] प्रती पंगमः" इत्याद्युत्तरवाक्यविरोधात् । तत्र विशेषज्ञाः प्रमाणम् । अत्र पद्ये [सं]यमधनानिति, स्नेहप्रवृत्तिमिति च ध्वनी ।[952] एकश्चकारोऽधिक इति दिक् । वनौकस इति, पतिकुलमिति च ध्वनी ।[953] कुलं गृहमित्यर्थः । कुलं श्रेष्ट(ष्ठ) गृहौघेष्विति शब्दमाला । जनो[954] लोक[955]समूहयोरिति ध्वनिमञ्जरी । विप्रकृतानि कृता । प्रतीपं प्रातिकूल्यम्[956] । भूयिष्टं(ष्ठं) भूयः । भूयिष्टेति कुपाठः । दक्षिणा समर्था[957] तरतमभावज्ञेत्यर्थः । उत्सेको[958] गर्वः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**काश्यपः –** वत्से ! परिष्वजस्व मां सखीजनं च ।

**शकुन्तला –** ताद इदो एव्व किं पिअंवदाणसूये णिवत्तिस्संदि । (तात ! इत एव किं प्रियंवदानसूये निवर्तिष्येते ।)

**काश्यपः –** वत्से ! इमे अपि प्रदेये । न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम् । त्वया सह गौतमी यास्यति ।

**शकुन्तला** - (पितरमाश्लिष्य) कहं दाणिं तादस्स अंकादो परिब्भठ्ठा मलअतडुंमूलिदा विज चंदणलदा देसंदरे जीविदं धारइस्सं ।

(कथमिदानीं तातस्याङ्कात् परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलितेव चंदनलता देशान्तरे जीवितं धारयिष्यामि ।)

**काश्यपः –** वत्से ! किमेवं कातरासि ।

**अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे**
**विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।**
**तनयमचिरात्प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं**
**मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ १९ ॥**

**(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति ।)**

**काश्यपः –** यदिच्छसि ते तदस्तु ।

**शकुन्तला –** (सखावुपेत्य ।) हला दिवे वि मं समं एव्व परिस्सजह । (सख्यौ! द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम् ।)

---

एवमुक्तप्रकारेणेत्यर्थः:[959] । गृहिणीपदं[960] कुटुम्बिनीस्थानम् । वामा अतद्गुरुरहिता वक्रा वा । कुलस्य वंशस्य ।[961] पुंस्याधिर्मानसी व्यथेत्यमरः[962]। एतावानेव वधूजनस्योपदेशः ॥ जाते एतत् खलु सर्वमवधारय । तात, इत एव किं प्रियंवदाऽनसूया अन्या अपि सख्यो निवर्तिष्यन्ते॥ प्रदेये इति काकुः । न प्रदेये इत्यर्थः । स्पष्टमन्यत्, अथवा काकाक्षिन्यायेन नकार उभयत्रोह्यः । कथमिदानीं तातस्याङ्कात्[936] परिभ्रष्टा मलयतटोन्मूलिता चन्दनलतेव देशान्तरे जीवितं[964] धारयिष्यामि ।

अभिजनवतः कुलीनस्य ।[965] विभवेन गुरुभिर्महद्भिस्तस्य[966] कृत्यैः । आकुला । स्त्रीस्वभावादिति भावः । वत्से[967] संबोधनम् । वत्सेनेति[968] तृतीयालाभादर्थासांगत्यं दोषः । यत् श्रेय इति शेषः । द्वेऽपि मां[969] सममेवालिङ्गतम् ।[970] सखि. यदा स राजा[971] प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत्तदाऽस्माइदम् आत्मनामधेयांकितम् अङ्गळी(ली) यकं दर्शय । [[मन्थरो मन्दः]]मन्थरो मन्दसुन्दराविति हैमः । मंथरविवेकमकाण्ड एवेति श्रीकण्ठः । हला, अमुना संदेहेनाकम्पिताऽस्मि ।[973] मा भैषीः । अतिस्नेहः पापशङ्की[947] । अतिस्नेहे विरोधो वितेति भावः । युगान्तं[975] युगप्रमाणं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**उभे** – (तथा कृत्वा ) सहि जइ सो राजा पच्चहिण्णाणमंथरो भवे तदो से इदं सणामहेअंकिदं अंगुलीअअं दंसेहि (सखि ! यदि स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत् तदाऽस्मै स्वनामधेया-ङ्कितमंगुलीयकं दर्शय ।)

**शकुन्तला** – हला, इमिणा संदेहेण वो आअंपिगम्हि । (सख्यौ ! अन संदेहेन वामाकम्पितास्मि ।)

**उभे** – मा भाआहि । अदिसिणेहो पावसंकी । (मा भैषीः, अतिस्नेहः पापशङ्की ।)

**शार्ङ्गरवः** – युगान्तरमधिरूढः सविता । त्वरतां भवती ।

**शकुन्तला** – (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा ।) ताद कदा णु खु भुओवि तवोवणं पेख्खिस्सं । (तात ! कदा नु खलु भूयोऽपि तपोवनं प्रेक्षिष्ये ।)

**काश्यपः** – श्रूयताम् ।

भूत्वा चचिरिय चतुरन्तमहीसपत्नी
दौष्यन्तिमप्रतिरथ तनयं निवेश्य ।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्ब सार्धं
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥ २० ॥

**गौतमी** – जादे परिहीअदि दे गमणवेला । णिवत्तेहि पिदरं । अहवा चिरेण वि पुणो पुणो एसा एव्वं आमंतिस्सदि । णिवट्टदु भअवं । (जाते । परिहीयते ते गमनवेला । निवर्तय पितरम् । अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेषैवं आमन्त्रयते । निवर्ततां भगवान् ।)

**काश्यपः** – वत्से ! उपरुध्यते मे तपोऽनुष्ठानम् ।

**शकुन्तला** – (भूयः पितरमाश्लिष्य) भूओ वि तवच्चरणपीडिदं तादस्स सरीरं अदिमत्तं मह किदे उक्कंठिदं भविस्सदि । (भूयोऽपि तपश्चरणपीडितं तातस्य शरीरमतिमात्रं मम कृते उत्कण्ठितं भविष्यति ।)

---

यथा तथा । युगं कुबेरधार्यो[976]रथावयवभेदः । जूं इति महाराष्ट्राः । प्रमाणा[977]ग्रलयेष्वन्त[978] इति सारस्वतः । ताळा(ला)न्तमिति च पाठः । ऊधिरूढ[979] अर्ध्वंगत इति यावत् । तात, कदा नु भूयोऽपि तपोवनं द्रक्ष्यामि । भूयः[980] पुनरिति[981] यावत् । तत् "पश्येयमनंगमंगळ(ल)गृहं भूयोऽपि रामामुखम्" इति सार्वभौमः ।

दुष्यन्तस्यापत्यं दौष्यन्तिम्(न्तिः)[983] । तस्मिन् तनये । सार्धं साकम् । शान्ते संबोधनं ध्वनिश्च । आश्रमे शान्ते इति च ध्वनिः । जाते, परिहीयते गमनवेला, निवर्त्तय पितरम् । अथ गौतमी काश्यपं प्रत्याह – अहवेति । अथवा चिरेणापि पुनरेषा[984] एवमेव मन्त्रयिष्यते । निवर्तताां भवान् । मन्त्रयिष्यते[985] वक्ष्यतीत्यर्थः[986] । कथयति[987] मन्त्रयते जल्पति वदतीति[988] माठरः । अनुष्ठ(ष्ठा) नं नित्यनियमो ध्वनिश्च । तपश्चरणपीडितं तातस्य शरीरं तस्मादतिमात्रं मम कृत

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**काश्यपः** — (सनिश्वासम् ।)

**शममेष्यति मे शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम् ।**
**उटजद्वारविरूढं नीवारबलिं विलोकयतः ॥ २१ ॥**

गच्छ । शिवास्ते पन्थानः सन्तु ।

**(इति निष्क्रान्ता शकुन्तला सहयायिनश्च )**

**सख्यौ** — (शकुन्तलां विलोक्य ।) हद्धि हद्धि । अदरिदा पिअसही सउन्दला वणराईए। (हा धिक्, हा धिक्, ! अन्तरिता प्रियसखी शकुन्तला वनराज्या ।)

**काश्यपः** — (सनिश्वासम् ।) अनसूये । गतवती वां सहचारिणीः निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम् ।

**उभे** — ताद, सउंदलाविरहिदं सुण्णं वि अ तवोवणं कहं पविसामो । (तात ! शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशामः !)

**काश्यपः** — स्नेहवृत्तिरेवंदर्शिनी । (सविमर्शं परिक्रम्य) हन्त भोः शकुन्तलां प्रतिविसृज्य लब्धमिदानीं स्वास्थ्यम् । कुतः —

**अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।**
**जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ २२ ॥**

**॥ इति निष्क्रान्ताः सर्वे ॥**

**इति चतुर्थोऽङ्कः ।**

---

उत्कंण्ठितं[989] भविष्यति । आलिङ्गनादिविषय इति शेषः । शीर्यतीति शरीरमिति भावः । एवं[990] कथनमपि ध्वनिः । **विरूढम्** अङ्कुरितम् बलिं पक्षिमृगेभ्य इति शेषः । यायिनो गामिनः, ते च ते जना इत्यर्थः ॥

हा[991] धिक् हा धिक् । अन्तरिता शकुन्तला वनराज्या । राजी[992] रेखा । अन्तरिताऽऽच्छादिता ध्वनिश्च । शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः । एवम् उक्तप्रकारेण ममतादर्शिनी, ममतां ममत्वं दर्शयतीति ममतादर्शिनी । विमर्शः [[परामर्शः ।]][993] आत्मानं प्रत्याह – हंतेति । प्रति उद्दिश्य । स्वास्थ्यं व्यापारांतरासहिष्णुत्वं विस्मृतम् । कन्या परकीय एवार्थः, द्रव्यम् । तां परिग्रहीतुः[994] पत्युः सकाशमिति शैषः । न्यासद्रव्यग्रहीतुर्वा । **ममायम्अन्तरात्माऽन्तःकरणं**, "आत्मा[995] करणदेहयोरिति" जयः । अर्पितवत[996] इति शेषः । तस्मै प्रत्यर्पितो न्यासो येन सः प्रत्यर्पितन्यास[997] इव । प्रकामं यथेप्सितं,[998] विशदो निर्मलो जातः, यस्य द्रव्यं तस्मै दत्वा निर्वृतो[999] जातोऽस्मीति भावः । [1000] अत्र तत्रापि च – चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयमिति केचित्तत्र । नहि महाकवय एतत्समीचीनमेतदसमीचीनं करिष्यामीति[1001] कवयन्ति । समयगुणानुत्पा[द]कादिवद् भोक्तृ रुच्यनुरूपं [[किंचिदतिस्वादु भासेत[1003] । अत एव रुचीनां वैचि]] त्र्यादिति पुष्पदन्ताचार्या इत्यलमतिविस्तरेण ॥

**इति महाराजपद.[1005]..... शाकुन्तलसञ्जीवनाख्यटिप्पणे[1006] चतुर्थोऽङ्कः ॥**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

## ॥ अथ पञ्चमोऽङ्कः ॥

( ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च )

**विदूषकः** – (कर्णं दत्वा ) भो वअस्स, संगीदसालंदरे अवहाणं देहि । कलविसुद्धाए संगीदीए सरसंजोओ विअ सुणीअदि । जाणे तत्तहोदी हंसपदिआ वण्णपरिअअं करेदित्ति। (भो वयस्य ! सङ्गीतशालान्तरे अवधानं देहि। कलविशुद्धायाः संगीत्याः स्वरसंयोग इव श्रूयते । जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति ।)

**राजा** – तूष्णीं भव । यावदाकर्णयामि ।

(आकाशे गीयते ।)

**अहिणवमहुलोलुवो तुमं तह परिचुम्बिअ चूअमञ्जरिम् ।**
**कमलवसइमंत्तणिव्वुदो महुअर विरहरिओ सि णं कहं ॥ १ ॥**

---

अथ काश्यपप्रो(प्रे)षित[1007]गौतमी[1008]शार्ङ्गरवा[1009]द्यानीतशकुन्तलासंवादमयं पञ्चमाङ्कं प्रक्रमते। तत इति । भो वयस्य ! संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि । कलविशुद्धायाः ध्रुवाया गीतेः[1010] स्वरयोगः श्रूयते । जाने तत्रभवती हंसपदिका[1011] वर्णपरिचयं करोतीति । अवधानं तदेकासक्तिम्। भावगर्भचमत्कारा गीतिः शृंङ्गारिणी ध्रुवेति भरताचार्याः । ध्रुव नाम्ना ताळ(ल) विशेषेण परिशील्यमाना[1012] गीतिर्वा ध्रुवा । तथा च । ध्रुवो मद्यो[1013] रूपकश्च झंपा त्रिपुट एव च । अठ(ष्ट)[1014]ताळै(लै) कताळै(लौ) च सप्तताळाः(लाः) प्रकीर्तिता इति कलानिधिः । स्वरा निषादादयः । हंसपदिका[1015] नाम भोगिनी स्त्री[1016]। वर्णा गीतविशेषाः । आकाश इति अप्रविष्टैः सहालापस्तत्स्यादाकाशभाषितमिति रूपकादर्शः । ध्रुवामाह – **अभिनवेति** । अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य[1017] चूतमञ्जरीम् । कमल[1018]वसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ॥ हे मधुकर, तथाऽतिशेयन चूतमञ्जरीं[1019] परिचुम्ब्य[1020] साम्प्रतमिति शेषः । अभिनवमधुलोलुपो लम्पटस्त्वं कमले वसतिमात्रेण तदेकवासेन निर्वृत्तः सुखित एनां मञ्जरीं कथं विस्मृतोऽसीत्यर्थः ॥ एतेन मधुकरस्थाने[1021] दुष्यन्तो, मञ्जरीस्थाने[1022] हंसपादिका, मधुस्थाने[1023] नवसम्भोगविलासः,[1024] कमलस्थाने[1025] शकुन्तलैव व्यज्यते । अत एव देवीं वसुमतीमन्तरेण त्यनुपदं[1026] वक्ष्यते । विदूषकमुखादेव शकुन्तलावृत्तं हंसपदिकादीनां विदितमिति भावः । अत एव चपलोऽयं बटु[1027]रित्यन्तःपुरेभ्यः[1028] कथयेदिति परिहासविजल्पितमिति च, द्वितीयाङ्कपूर्तौ कविनोक्तम् । अज्ञवृतमिदम् । तथा चोक्तं वृतचन्द्रिकायाम्[1029] अचरम-पदिचेन्मुनिद्वयं तद नुचदिग्गज[1030]युग्ममञ्जनमिति । अत्र संविधाने "भीमेन प्रेषिता (प्रेषिता)[1031] गजादिवदद्यापि[1032]परिभ्रमन्ति केचिदन्ये व्याख्याकाराः । शिष्यकृतसेवायां निरसूय गुणग्राहिविशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक् । अथवा कमलस्थाने हंसपदिका – अहमिति भावः । तथा च – कमले वसतिमात्रं शुष्कस्थितिः ।[1033] अत एव सकृत्कृतप्रणयोऽयं जन[1034] इत्यनुपदं वक्ष्यते । प्रकृते

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ?॥

**राजा** — अहो रागपरिवाहिनी गीतिः ।

**विदूषकः** — किं दाव गीदीए भवदा अवगदो अक्खरत्थो । (किं तावद्गीत्या भवताऽवगतोऽक्षरार्थः ?।)

**राजा** — (स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः । तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण मदुपालम्भमवगतोऽस्मि । सखे मांडव्य ! मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका निपुणमुपालब्धोऽस्मीति ।

**विदूषकः** — जं भवं आणवेदि (इत्युत्थाय ।) भो वअस्स, गहीदस्स ताए परकीएहिं हत्थेहिं सिहण्डए अच्छराए विअ वीदराअस्स णत्थि मे मोक्खो ।

---

तथा [1035] शुष्कस्छि(स्थि) त्या[1036] निर्वृतः त्वं तथा यथेप्सितं परिचुम्बिता चासौ चूतमञ्जरी च तां शकुन्तलां कथं विस्मृतोऽसि,[1037] विस्मृतवानसि । णं – नन्विति विरोधः । अनेन दुर्वाससः शापवशाद्राजा शकुन्तलां विस्मृतवानित्यनुसन्धेयम् ।[1038] द्वितीयचरणम् एकपदम् । "चुंबिअ" इत्यत्र कगेत्यादिना[1039] तलोपः । 'चूद' इत्यत्र "तो द"[1040] इति तस्य दत्वम् । 'णम्' इति नन्वर्थवाचको निपातः । ननु च स्याद् [1041] विरोधोक्तावित्यमरः । ननु "कथमप्युन्नमितं, न चुम्बितं तदिति" मूलवाक्यात्", चुम्बित[1042] चूतमञ्जरीति" कथमिति चेन्न । नाटकादिषु पात्रप्रवेशेषु[1043] सति प्रत्यक्षतया[1044] चुम्बनादीनां[1045] निषेधान्न[1046] चुम्बितमित्युक्तम्[1047] ।

बहिः समयविशेषेषु चुम्बनादिसुखं विना शकुन्तलाया गर्भसम्भवः कथमाविर्भविष्यत्यत एव पीतं[1048] मया सदयमेव रतोत्सवेषु[1049] । बिम्बाधरमिति कविनैव[1050] षष्टे(ष्ठे)ङ्के वक्ष्यते ।[1051] तथा च – "अर्थात्प्रकरणाल्लिङ्गादौचित्याद् अर्थे(र्थ) निर्ण[य]" इति कवीनां समुदाचारस्तस्मादर्भकविज्ञापितोऽनितर[1052]– साधारणोऽयं रसिकदयनीयः पन्थाः ।

सरो[1053] जलानामिवाहार्यादि[1054] रागाणां परिवाहो[1055] निर्गमोऽस्या अस्तीति रागपरिवाहिनी(णी) गीतिः । अहो आश्चर्ये[1056] । किं तावद्गीतेर्भवताऽवगतोऽ[1057] क्षरार्थः । "अ० खरे"ति कवेः प्रमादः ।[1058] "अक्ष्यादिषु छ"[1059] इत्यक्षरस्यापि गणे पठितत्वाद्" अछरथो" इति पाठः साधीयान् । सकृदिति, प्रणयशब्दो लक्षणया संभोगवाचकः । अयं जनः हंसपदिकेत्यर्थः । अत एव चूतमञ्जरीं[1060] परिचुम्ब्येति मञ्जरीस्थाने हंसपदिकेति[1061] च पूर्वमस्माभिर्व्याकृतमिति दूरदर्शिभिरवगन्तव्यम्[1062] । यस्मात् सकृतकृतप्रणयोऽयं जनः, तत् तस्मात् अस्याः[1063] हंसपदिकाया उपालम्भ, देवीं वसुमतीं राज्ञी–[1064]मित्यर्थः[1065] । अन्तरेण[1066] विना, तानं तरेणेत्यस्मद्व्याख्यातभोजचंबौ(पौ) । अवगन्तो(तो)ऽस्मि[1067], अवगतवान[1068]स्मीत्यर्थः । देवीं विना काचिदन्या[1069] वर्तत, इवेत्युपालम्भशब्दस्यार्थ इति भावः । निपुणं चातुर्यं चमत्कृतं यथा तथा । यद्भवानाज्ञापयति । भो वयस्य, गृहीतस्य तया परकीयाभ्यां हस्ताभ्यां

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(यद्भवानाज्ञापयति। भो वयस्य ! गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके अप्सरसेव वीतरागस्य नास्ति मे मोक्षः ।)

राजा – गच्छ ! नागरिकवृत्या संज्ञापयैनाम् ।

विदूषकः – का गई . (का गतिः ।) (इति निष्क्रान्तः ।)

राजा – किं नु खलु गीतमेवंविधार्थमाकर्ण्य इष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कण्ठितोऽस्मि। अथवा

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥ २ ॥

(इति पर्याकुलस्तिष्ठति ।)

(ततः प्रविशति कञ्चुकी ।)

कञ्चुकी – (निःश्वस्य) अहो खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि ।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः ।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था ॥ ३ ॥

---

शिखण्डकेऽप्सरसेवावीतरागस्य नास्ति मे मोक्षः । परकीयाभ्याम् अन्यदीयाभ्यां सख्याश्चेद्[1070] ग्रावाहस्ताभ्यां (?) ग्राहितस्येति यावत् । शिखण्डके शिखायाम् । "अप्सरसि गौर्यामिति" बाणकवेरिवाप्सरसेत्येकवचनप्रयोगः कवेः प्रमादः । स्त्रियाँ[1071] बहुष्वप्सरस इत्यमरसिंहेना भिधानात् । अवीतरागस्य रागयुक्तस्य । – मुक्तिमोचनयोर्मोक्ष[1072] इति रुद्रः । भवतो वयस्य तथा भ्रातृत्वसंबन्धान्मम परिहासावहेळ(ल) नं सा करिष्यतीति भावः । अत एवास्मद्व्याख्यातायां विद्धसालभञ्जिकायां विदूषकाय देव्या कृतो मृषा विवाहरूपः परिहासः सुप्रसिद्ध एव। नागरिकवृत्या चातुर्येण संज्ञापय सूचयेत्यर्थः । का गतिः विरहादृते ऽपीत्यनेन शकुन्तलाविषये स्मरणाभाव इति स्पष्टतरो भावो बोध्यः ।

रम्याणि स्त्रीरत्नानि यानि कान्यपि वस्तूनि[1073] वेति शेषः । सुखितोऽवियुक्तः ।[1074] अबोधः पूर्वो यस्मिन्कर्मणि । अपूर्वबोधमिति च पाठः । भावोऽभिप्रायः[1075] । जननान्तरं पूर्वजन्म[1076] । जननान्तरे[1077] नैत्रेत्यस्मद्व्याख्यातभारत चंबौ(पौ) । तथा च तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियोजन[1078], इति, "न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः[1079] संश्रयन्ते" इति च भवभूतिः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



भोः कामं खलु धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य । तथापीदानीमेव धर्मासनादुत्थिताय पुनरु परोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदयितुम् । अथवा अविश्रमो लोकतन्त्राधिकारः । कुतः –

भानुः सकृद्युक्ततुरङ्ग एव रात्रिंदिवं गन्धवहः प्रयाति ।
शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः ॥ ४ ॥

यावन्नियोगमनुतिष्ठामि । (परिक्रम्यावलोक्य ।) एष देवः –

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा
निषेवते शान्तमना विविक्तम् ।
यूथानि सञ्चार्य रविप्रतप्तः
शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥ ५ ॥

(उपगम्य) जयतु देवः । एते खलु हिमवदुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसंदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विनः संप्राप्ताः । श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

राजा – (सादरम्) किं काश्यपसंदेशहारिणः ?

कञ्चुकी – अथ किम् ।

राजा – तेन हि मद्वचनादुच्यतामुपाध्यायः सोमरातः । अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हसीति । अहमप्येतांस्तपस्विजनसन्दर्शनयोग्ये देशे प्रतिपालयामि ।

कञ्चुकी – यदाज्ञापयति देवः इति निष्क्रान्तः ।)

राजा – (उत्थाय) कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य प्रतिहारी)

---

विक्लवा व्यत्यस्ता ।[1080] अवलम्ब [[नं[1081] अर्थः प्रयोजनं यस्याः ॥ अनतिपात्यम्[1082] अतिक्रम्य[1083] नेत्यर्थः, अवश्यकर्तव्यमिति यावत् । धर्मासनं न्यायविचारस्थानम्[1084] । अविश्रमो विश्रान्तिहरितः । रक्षाकर्मतन्त्रं संरक्षण[1085] – कार्यसिद्धान्तः ॥ भानुर्गन्धवहश्च प्रयातीति योज्यम् । अहितो धृत इति यावत् । षष्टां(ष्ठां)शवृत्तेः राज्ञः । एषोऽधिकारो धर्म इत्यर्थः । अनुतिष्ठामि करोमि । प्रजा जनान् । स्वाः प्रजा इव स्वकीयाः संततीरिव[1086] । तन्त्रयित्वा[1087] तत्र तत्र[1088] योजयित्वा । शान्तं सौम्यम्[1089] । विविक्तम् एकान्तस्थलम्[1090] । "प्र" इत्युपसर्गः[1091] । पादपूरक इति केचित् । प्रकर्षेण तप्त[1092] इत्यन्ये । दिवा दिवसे[1093] । उपत्यकाऽद्रेरासन्नभूमि[1094]रित्यमरः । सस्त्रीका[1095] इति ध्वनिः । तथा च सस्त्रीकेषु सूरेष्विति लीलाशुकः[1096] । कस्कोऽत्र भोः इति द्वारस्छा(स्थ)[1097] – पात्रप्रवेशसूचको नाटकसंप्रदायशब्दः । प्रतिहारो द्वारपाल[1098]स्तस्य स्त्री प्रतिह(हा)रीत्यर्थः । अत्र प्रतिहारीति[1099] पुंस्त्वभ्रमाद् उत्तरत्र[1100] वेत्रवतीति स्त्रीलिङ्गत्वाद् असंगतमेतदिति केचिन्मुह्यन्ति । आज्ञापयतु[1101] देवः । दे० वो इत्यत्र "सेवादिषु वेति"[1102] ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रतिहारी** — आणवेदु देवो । (आज्ञापयतु देवः ।)

**राजा** — वेत्रवति ! अग्निशरणमार्गमादेशय ।

**प्रतिहारि** — इदो इदो देवो । (इत इतो देवः ।)

**राजा** — (परिक्रामति । अधिकारखेदं निरूप्य ।) सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः । राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव । कुतः-

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा
क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेवम् ।
नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम् ॥ ६ ॥

(नेपथ्ये)

**वैतालिकौ** — विजयतां देवः ।

**प्रथमः** — स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृतिरेवंविधैव ।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ॥ ७ ॥

---

द्वित्वम् । अग्निशरणम् अग्निहोत्रगृहं इत इतो देवः[1103] । चरितार्थता कृतार्थता । प्रयोजनकरणमिति यावत् । दु[:]खम्[1104] एवोत्तरे प्रान्ते यस्याः सा दुःखोत्तरा । उत्तरं[1105] प्रतिवाक्ये च प्रान्ते श्रेष्टे(ष्ठे) त्विदं त्रिष्विति ध्वनिमञ्जरी ।

इदानीमपि न सुखमित्याह[1106] - **औत्सुक्येति** । औत्सुक्यमात्र उत्कण्ठामात्रम् , कात्स्न्येऽवधारण[1107]- इत्यमरः । अवसाययति[1108] दूरयतीत्यर्थः । अत य(अ) त्यवसाययति दूरयतीति माठरः ।[1109] अवसादयनी(ती)ति पाठे नाशयतीति बोध्यम् । प्रतिष्ठालाभः[1110] । प्रतिष्ठा कीर्तलाभयोरिति केशवः । लब्धस्य वस्तुनः[1111] परिपालनवृत्ती रक्षणविषये यत्नः । वृत्तिराजीवयत्नयोरिति मेदिनी । एनं संपादकं क्लिश्नाति क्लेशयुक्तं[1112] करोति । प्रकृतमुट्टं (मर्थं ?) कथयति[1113] - नेति । राज्यं कर्तृसं(स) ततपरामर्शनिर्वाहकरणान् नातिश्रमापनयनं[1114] शासनपूर्वक(कं) सुखानुभवान्न श्रमश्चेत्यर्थः । तदनुरूपं दृष्टान्तमाह - स्वेति । स्वहस्ते[1115] छत्रदण्डधारणाद्]][1116]आतपनिवारणाच्च पूर्वोक्तं फलद्वयमूह्यम्[1117] । तथा च राज्यं सुखदुःखमि श्रमिति[1118] भावः । वैताळि(लि)का बोधकरा इत्यमरः । ते तेव । वृत्तिर्वर्त्तनम् ।।[1119] **नियमयसि** शिक्षयसि[1120] । विमार्गे विरुद्धमार्गे प्रकर्षेण स्थितान्[1121] विरुद्धमार्गमुद्दिश्य प्रस्थितान्[1122] वा । दण्डः शासनमिति कामन्दकः । दण्डाधारो[1123] महीपतिरिति मनूक्तेः । कल्पसे समर्थो भवसि ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



द्वितीयः — नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय ।
अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम
त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम् ॥ ८ ॥

राजा — एते वयं क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृताः स्मः ।

(इति परिक्रामति ।)

प्रतिहारी — एसो अहिणवसंमज्जणससिरीओ सण्णिहिदहोमधेणू अग्गिसरणालिंदो । आरुहदु देवो । (एषोऽभिनवसम्मार्जनसश्रीकः सन्निहितहोमधेनुरयमग्निशरणालिन्दः । आरोहतु देवः ।)

राजा — (आरुह्य परिजनांसावलम्बी स्थित्वा) वेत्रवति ! किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः ?

किं तावद्व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा -
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ ९ ॥

प्रतिहारी — सुअरिदाहिणंदिणो इसीओ देवं संभावेदुं आअदति तक्केमि । (सुचरिताभिनन्दिन ऋषयो देवं सम्भावयितुमागता इति तर्कयामि ।)

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः ।
पुरश्चैषां पुरोहितः कञ्चुकी च ।)

कञ्चुकी — इत इतो भगवन्तः ।

---

अतनुषु महत्सु ज्ञातयो[1124] बन्धवः । प्रजानां लोकानां बन्धोः कृत्यं बन्धुकृत्यम् । बन्धुर्यत्करोति तत् उपलालनमिति यावत् । त्वयि तु - त्वय्येव[1125] परिसमाप्तं परिणितष्ठितं [[मित्यर्थः ध्वनिश्च । परिसमाप्तं[1126] परिणिष्ठित]][1127]- मिति त्रिकाण्डशेषः । व्यवच्छेदकवैषम्यनिश्चयप्रमुखेषु "तु" रित्यगस्त्यः । तथा च परस्परं भाग्याद् बन्धुसहस्रे सत्यपि त्वमेव प्रजानां बन्धुर्लालनं करोषीति भावः । नवीकृताः प्रजारंजन इति शेषः । अभिनवसंमार्जनशिशिरितः । सन्निहितहोमधेनुरयं अग्निशरणाळि(लिं)दः । [[सिसिरिओ इत्यत्र "स.सिरीओ"[1128] इति पाठे "सश्रीक" इत्यर्थः ।]][1129]अळि(लिं)दो बाह्यवेदिकेति शब्दमाला । इत अरोहतु देवः । उप समीप ऊढं[1130] वहन[1131]-क्षमीकृतं तपो यैः । असद् अयुक्तम् । प्रसवः पुष्पादिकम् । विष्टंभितो विशेषेण स्तंभितः । वीरुधां[1132] लतानाम् । "प्रशब्दः पादपूरकः । तर्का ऊहाः । अपरिच्छेदोऽ[1133]निश्चयः ॥ सुचरिताभिनन्दिनः[1134] ऋषयो देवं सभाजयितुम् आगता इति तर्कयामि । आनन्दन[1135] - सभाजने इत्यमरः ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शार्ङ्गरवः** – शारद्वत !

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ
न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते ।
तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं वनमिव ॥ १० ॥

**शारद्वतः** – स्थाने भवान् पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः । अहमपि–

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम् ।
बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसङ्गिनमवैमि ॥ ११ ॥

**शकुन्तला** – (निमित्तं सूचयित्वा ।) अम्महे किं वामेदरं मे णअणं विअरेदि । (अहो किं वामेतरन्मे नयनं विकरोति ।)

**गौतमी** – जादे पडिहदं अमङ्गलं । सुहाइ दे भत्तुकुलदेवदाओ विदरंदु । (जाते प्रतिहतममङ्गलम् । शुभानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु ।) (इति परिक्रामन्ति ।)

**पुरोहितः** – (राजानं निर्दिश्य ।) भोस्तपस्विनः । असावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रावेग मुक्तासनो वः प्रतिपालयति । पश्यतैनम् ।

**शार्ङ्गरवः** – भो महाब्राह्मण । काममेतदभिनन्दनीयम् । ततापि वयमत्र मध्यस्थां । कुतः–

---

भगानां[1136] समूहो भागं, [1137]महत्भागं यस्य । भगः श्रीकामेत्यमरः । महान्तो भागा[1138] यस्येति वा । भागः प्रदेशविषयसत्वेष्विति केदारः । अभिन्ना एकरूपा[1139] स्थितिर्मर्यादा रक्षणं वा यस्य । वर्णानां मध्येऽपकृष्टो नीचोऽपि । अपन्थास्त्वपथमित्यमरः[1141] । सर्वेऽपि स्वस्वधर्मनिरता इत्यर्थः । शश्वन् मुहुः । परिचितं परिशीलितं विविक्तं रहः[1142] । प्रदेशो येन मनसोपलक्षितः । अहमित्यर्थात्सिद्धम् । जनाकीर्णम् इदं नगरमिति शेषः । परीतं युक्तम्[1143] । एकान्तनिष्टो(ष्ठो)ऽहं जनाकीर्णत्वादिदं पुरं दह्यमानं गृहमिव मन्य इति भावः । स्थाने[1144] युक्तम् ॥ अभ्यक्तं तैललिप्तम् । स्वैरगतिः स्वच्छन्दचारीति यावत् ॥ अम्हहे किमपि वामेतरं मे नयनं विकरोति विकारं प्राप्नोतीति यावत् । किमपीषदित्यर्थः । अम्हहे आश्चर्ये स्वे(खे) दे च । जाते, प्रतिहतममंगळ(ल)म् । प्रतिहतममंगळ(ल)म्[1145] । सुखानि त भर्तृकुलदेवता वितरन्तु । धर्माश्चाश्रमाश्चः तेषां ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो[1146] भिक्षुश्चतुष्टयम् । आश्रमोऽस्त्रीत्यमरः । प्राग् भगवद्दर्शनादिति शेषः । प्रतिपालयति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै–
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ १२ ॥

प्रतिहारी – देव पसण्णमुहराआ इसिणो दीसंदि । ता जाणामि विस्सद्धकज्जत्ति । (देव ! प्रसन्नमुखरागा ऋषयो दृश्यन्ते । तज्जानामि विस्रब्धकार्या इति ।)

राजा – (शकुन्तलां दृष्ट्वा ।) अथात्रभवती–

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।
मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ॥ १३ ॥

प्रतिहारी – देव कुदुहलगब्भो मे तक्को पसीददि । दंसणिज्जा उण से आकिदी लक्खीअदी । ( देव! कुतुहलगर्भो मे तर्कः प्रसीदति । दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते ।)

राजा – भवतु अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।

शकुन्तला – (हस्तमुरसि कृत्वा, आत्मगतम् ) हिअअ, किं एव्वं वेवसि । अज्जउत्तस्स भावं अणवहरिअ ? धीरं दाव होहि । (हृदय, किमेवं वेपसे ? आर्यपुत्रस्य भवमनवधार्य । धीरं तावद्भव ।)

पुरोहितः – (पुरो गत्वा ।) देव ? एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः । कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः । तं देवः श्रोतुमर्हति ।

राजा – अवहितोऽस्मि ।

ऋषयः – (हस्तमुद्यम्य ।) विजयस्व राजन् !

राजा – अखिलानभिवादये वः ।

ऋषयः – स्वस्ति भवते । इष्टेन युज्यस्व ।

राजा – अपि निर्विघ्नतपसो मुनयः ? ।

ऋषयः – कुतो धर्मक्रियाविध्न सनाः रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ १४ ॥

राजा – अर्थवान् खलु मे राजशब्दः । अथ भगवान् लोकानुग्रहाय कुशली काश्यपः ?

---

प्रतीक्षते । एतच्चरितमिति शेषः । मध्यस्छाः(स्थाः)[1147] काश्यपदुष्यन्त[1148]योरिति शेषः । ईदृगुपचारस्य वयं न पात्रमिति भावः । एवमुपचारकरणा[1149]दन्यादृशोऽयं[1150] राजेत्याह-**भवन्तीति** । अनुद्धता अनुत्सेकिनः । देव प्रसन्नमुखरागा ऋषयो दृश्यन्ते ।[1151] तस्माद्विस्रब्धकार्या एव । विस्रब्धं विश्वसनीयम् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शार्ङ्गरवः** — स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः । स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वमिदमाह ।

**राजा** — किमिज्ञापयति भगवान् ?

**शार्ङगरवः** — यन्मिथस्समयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपयंस्त तन्मया प्रीतिमता युव्योरनुज्ञातम् । कुतः —

त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः
शकुन्तला मूर्तिमतीव सत्क्रिया ।
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥ १५ ॥

तदिदानीमापन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति ।

**गौतमी** — अज्ज किं वि वत्तुकामम्हि । ण खु मे वअणावआसो अत्थि । कहंत्ति । (आर्य ! किमपि वक्तुकामास्मि । न खलु मे वचनावकाशोऽस्ति । कथमिति ।)

णावंक्खिओ गुरुअणो तुए इमाए ण पुच्छिओ बन्धुं ।
एक्कक्कं एव्व-चहिए किं भणामि किं एक्कएक्कस्स ॥ १६ ॥

---

॥कास्वित् कान्[1152] किंस्वित्[1153] किन्नु किमपीति[1154] रत्नमाला । पाण्डुकिसलयमित्यनेन विरहजन्मा पाण्डिमा व्यज्यते ॥ देव, कौतूहलगर्भो मे[1155] तर्कः प्रसीदति । दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते । तथा च नेयं साधारणी महानुभावपरिगृहीतेव भासत इति भावः । अनिर्वर्णनीयम्[1156] अदर्शनीयम् । हृदय, किमेवं वेपसे । आर्यपुत्रस्य भावमनवधार्य धीरं तावत् भव ॥ उपाध्यायः काश्यपः[1157] ॥ इष्टेन इच्छाविषयवस्तुना कळ(ल) त्रेणेति च गम्यते ॥ अथेति प्रश्ने ॥ **तमस्तिमिरम्** ॥ अर्थवान्सार्थकः । रञ्जनाद् राजेति भावः । लोका जनाः, सिद्ध(द्धि) मन्तः स्वतः कुशला इत्यन्वयः । सिद्धयस्तपोमन्त्रादिजानि[1158] फलानि । तेषां सिद्धिमतां[1159] परापेक्षा नास्तीति भावः । अनामयो[1160] रोगाभावः । राजन्यस्य त्वनामयमिति धर्मस्मरणात्[1161] । मिथोऽन्योऽन्यं रहस्यपीत्यमरः । समयात्संकेतात् । उपायंस्त उपयेम इति यत् तत्कृत्यमिति[1162] शेषः । **अर्हतां**[1163] पूज्यानाम् । अग्रेसरः प्राग्रसर इत्यमरमाला । सत्क्रिया[1164] विध्युक्तक्रियेत्यर्थः । चिरस्य चिराय[1165] वधूवरौ । समानयन् सम्यग् आनयन्, परस्परं प्रापयन्नित्यर्थः । प्रजापतिर्ब्रह्मा, ध्वनिश्च । वाच्यं वचनी[1166]यत्वं, भावप्रधानो निर्देशः । यौ मिथः सदृशकारौ वयसा, तौ वधूवरावित्यमरशेषः । तुल्यगुणं वधूवरमितिपाठे[1167] तुल्याः स्तव्याः गुणा यस्य तं त्वामित्यर्थः । वधूवरै वध्वाः[1168] शकुन्तलाया वरं पतिं समानयन् समानं सदृशं कुर्वन्नित्यर्थः । उचितस्तव्ययोस्तुल्य इति । वरस्तु वरणश्रेष्ट(ष्ठ) पतिष्विति जयवामनौ । समानयं[1169]स्तुल्येति सन्धिरार्षत्वद्योतनाय ।[1170] सन्धिसंकटमिति केचित् । प्रावृड्वासरेत्यादिकमिव यथाकथंचिच्छा स्त्रीयमेवेत्यन्ये पेठुः ।[1172] आपन्नसत्वा गर्भिणी[1173] ध्वनिश्च[1174] । सह, आत्मनेति शेषः । आर्य, किमपि वक्तुकामाऽस्मि । न खलु [[मे[1175] वचनावकाशोऽस्ति । **कथमिव अनावेक्षितो गुरुजनः**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(नापेक्षितो गुरुजनस्त्वयानया न पृष्टो बन्धुः ।

एकैकमेव चरिते किं भणाम्येकैकस्य ॥)

**शकुन्तला** – (आत्मगतम्) किं णु खु अज्जउत्तो भणादि । (किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति ।)

**राजा** – किमिदमुपन्यस्तम् ।

**शकुन्तला** – (आत्मगतम्) पावओ खु वअणोवण्णासो । (पावकः खलु वचनोपन्यासः ।

**शार्ङ्गरवः** – तत् कथं किमिदं नाम । ननु भवन्त एव सुतरां लोकतन्त्रनिष्णाताः ।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
तदप्रियापि प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥ १७ ॥

**राजा** – किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा ?

**शकुन्तला** – (सविषादम् । आत्मगतम्) हिअअ संपदं दे आदङ्को आसी । (हृदय सांप्रतं ते आतङ्क आसीत् ।)

**शार्ङगरवः** – किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञा ।

**राजा** – कृतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः ? ।

**शार्ङरवः** – मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ॥ १८ ॥

**राजा** – विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि ।

---

त्वयाऽनया न पृष्टो बन्धुः । एकैकमेवाचरिते किं भणाम एकैकस्मै । "अवं(वे) क्षित:[1176] प्रतीक्षित इति यावत् । एका(क) एकः यस्मिन् कर्मणि एकैकमेव यथा तथा । चरिते प्रयोजने । कृते सति इति शेषः । चरितं[1177] चरित्रे च प्रयोजन इति पदमाला । सीतया युक्तो[1178] रामः "सीताराम" इत्यादिवत् प्रकृत एकया युक्त एकः एकैकः तस्मै इति बोध्यम् । भणामि भणिमाति[1179] चेति प्राकृतचन्द्रिका । ए०कमे०क ०सेति चतुर्थ्याः षष्टी(ष्ठी)[1180] षष्टी(ष्ठी) निर्देशः । देशीयः शब्दोऽयम् । "एमेकइकास" इति महाराष्ट्राः । तथा च गुरुजनानवेक्षणाद्बन्धुप्रश्नाभावाच्चातिक्रमकृते[1181] तुभ्यमस्यै[1182] च किमपि न भणाम इति भावः । किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति । पावकः खलु वचनोपन्यासः । पावकोऽग्निस्तद्वदसह्य(ह्य) इत्यर्थः । तन्त्रम् मर्यादा ।[1183] शास्त्रमर्याद [1184] योस्तन्त्रमिति मुकुटः ॥ कुलं गृहेऽपीत्यमरः[1185] । तदप्रिया तस्य परिणेतुर् अप्रियाऽनिष्टापि ॥ हृदय, साम्प्रतं[1186] त आतंक आसीत् ॥ कृतकार्य इति । प्रकृते गान्धर्वविवाह इति भावः । विमुखता वैमुख्यम् अवइ(ज्ञ)[1187] च कृतेत्यर्थः । यमेति ध्वनिः। अमी विकारा द्वेषवैमुख्यावज्ञारूपा इत्यर्थः । मूर्च्छति वध(र्ध) ते[1188] चोपचीयत इति माठरः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**गौतमी** – जादे मुहुत्तं मा लज्जेसु । अवणइस्सं दाव दे अवगुण्ठणं । तदो तुमं भट्टा अहिजाणिस्सदि । (यथोक्तं करोति ।)

(जाते, मुहूर्तं मा लज्जस्व । अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनं ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यते ।)

**राजा** – (शकुन्तलां निर्वर्ण्य । आत्मगतम् ।)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेत्यव्यवस्यन् ।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नापि शक्नोमि हातुम् ॥ १९ ॥

(इति विचारयन् स्थितः)

**परिजनः** – (जनान्तिकम्) अम्हो धम्मावेक्खिदा भट्टिणो । ईरिसं णाम सुहोवणदं रुव्वं दक्खिअ को अण्णो विआरेदि । (अहो धर्मावेक्षिता भर्तुः । ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति ?)

**शार्ङ्गरवः** – किमिदं जोषमास्यते ।

**राजा** – भोस्तपोधन ! चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि । तत् कथमिमामभिव्यक्तसत्त्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशङ्कमानः प्रतिपत्स्ये ।

---

एकस्मिन्नेव पद्ये पादार्धपदभेदान्मध्ये वाक्यादिभिर्व्यवधानं नाटकादिषु सर्वत्र सम्प्रदाय[1189] इत्यनुभवसिद्धम् ॥ आक्षिप्त आकृष्टः । जाते,. मुहूर्त (र्तं) मा लज्जस्व, अपनेष्वा (ष्या) मि तावते (त्ते) अवकुंठनं, ततस्त्वां[1190] भर्त्ताऽभिज्ञास्यति । अवकुंठनम् उत्तरीद्यावरणम् । "भष्टा" इत्यत्र "र्तस्य ट"[1191] इति टत्वम् । निर्वर्ण्य[1192] दृष्ट्वा[1193] । वर्णयित्वेति कश्चित्तन्न । निर्वर्णनं[1194] तु निध्यानं दर्शनेत्यमर-सिंहेनाभिधानात् ॥ उपनत्रं( तं )[1195] प्राप्तम् । एवं ईदृग् असाधारणमिति यावत् । रूपं कर्तृ(?)[1196] । व्यक्तिरित्यर्थः । रुपमाकारसौन्द-र्यव्यक्तिसंस्थान[1197]वा-चकमित्यगस्त्यः[1198] । अक्लिष्टाऽधूसरा । अव्यवस्यन् अनिधरि(र्धा)यन् । विभाते प्रभाते ।[1199] कुन्दस्य पुष्पं कुन्दम् । अन्तः[1200] अभ्यन्तरे तुषारो हिम्[1201] यस्य । अत्रोपमेयोपमानयो रूपकुन्दयोर[1202]क्लिष्टकान्ति । अन्तस्तुषारमितिच कथनं परस्परविरुद्धमिति कोऽपि बभ्राम, तन्न । स्यान्नवेति निश्चयाभावस्यैव बाधकत्वेनाक्लिष्टकान्तीति कथनीयस्याविवक्षितत्वात् । कवेरेष एवाभिप्राय[1203] इति दिक् । हातुं च नैव शक्नोमि । किलेति योज्यम् ।[1204] जनान्तिकम् एकान्त इति सम्प्रदायः । अहो धर्मापेक्षिता[1205] भर्तुः । ईदृशं[1206] नाम सुखोपनतं रूपं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला** – (सविषादं आत्मगतम् ।) णं परिणए एव्व सन्देहो । कुदो मे दाणि दूराधिरोहिणी आसा । (ननु परिणय एव संदेहः । कुतो मे इदानीं दूराधिरोहिण्याशा ।)

**शार्ङ्गरवः** – मा तावत् ।

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः ।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ॥ २० ॥

**शारद्वतः** – शार्ङ्गरव । विरम त्वमिदानीम् । शकुन्तले ! वक्तव्यमुक्तमस्माभिः । सोऽयमत्रभवानेवमाह । दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम् ।

**शकुन्तला** – (आत्मगतम्) एव्वं अवत्थंदरं गदे तारिसे अणुराए किं वा सुमरिदेण । अत्ता दार्णि मे सोअणिज्जो ति ववसिदं एदं । (प्रकाशम् ।) अज्जउत्त । (इत्यर्धोक्ते ।) दाणि णएसो समुदाआरो ।) पोरव ण जुत्तं णाम दे पुरा अस्समपदे सहावुत्ताणहिअअं इमं जणँ समअपुव्वं पदारिअ संपदं ईरिसेहिं अरुन्दुदेहिं अक्खरेहिं पच्चाचक्खिदुम् । (एवमवस्थान्तरं गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन । आत्मेदानीं मे शोचनीय इति व्यवसितमेतत् । आर्यपुत्र, इदानीं नैष समुदाचारः । पौरव ! न युक्तं नाम ते पुरा आश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्य सांप्रतमीदृशैररुन्तुदैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम् ।

---

दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति । जोषं तु तूष्णीमिति शब्दमाला । अभिव्यक्तं प्रकटं सत्वलक्षणं गर्भचिह्नं[1207] यस्याः, तां शकुन्तलां प्रति उद्दिश्य । क्षेत्रिणं पुरुषं पतिमिति यावत् । प्रतिपत्स्य एनामिति शेषः । सत्वोऽस्त्री जन्तुगर्भयोरिति यादवः । क्षेत्रज्ञः पुरुषः क्षेत्रीति सारस्वतः । परिणय एव संदेहः । कुतो म इदानीं दुरारोहिण्याशा । दुष्टश्चासावारोह[1208] उन्नतपदप्राप्तिः साऽस्या अस्ति[1209] दुरारोहिणी[1210] । आशैव[1211] नास्तीति भावः ॥ मा इति निवारणे[1212] । **अभिमर्शः** स्पर्शः, अनुमन्यमानः मानयन् । मुनिः काश्यपः, विमानयितुं गर्हयितुं योग्यो[1213] विमान्यः । नाम प्रसिद्धौ । येन मुनिना मुष्टं मुषितं स्वं स्वकीयं अर्थं द्रव्यम् । प्रतिग्राहयता प्रतिग्रहं कारयता दस्युरिव चोर इव पात्रीकृतोऽसि । स्वमर्थमिति दानात्पूर्वमिति भावः । अन्यथा – अर्थो हि कन्या परकीय एवेत्युक्ततया[1214] पूर्वोत्तरविरोधापत्तेः । स्पर्शोऽ[1215]भिमर्श इति हैमः ।[1216] मानयत्यनुमन्यतेऽनुमनुते संमन्यत इति माठरः । पतिरनुमनुते[1217] स्म पौरवाणामित्यस्मद्[1218] व्याख्यातभारतचम्बु(म्पूः) । न खलु वाच्यस्त्वम्,[1219] किन्तु चोराय तुभ्यं मुषितमात्मनो द्रव्यं पुनर्दातुं प्रवर्तमानः काश्यप एवेति[1220] भावः । यमेति ध्वनिः । अत्रभवान् दुष्यन्त आह वदति । प्रत्ययेति विश्वासोत्तरमित्यर्थः[1221] । इदमवस्थान्तरं[1222] गते तादृशेऽनु]][1223] रागे किं वा स्मारितेना(न) । अन्तरं भेदम् । आत्मेदानीं मे शोचनीय इति अवसितां (तं)मए[1224] इति शेषः, मयेत्यर्थः । अवसितावगतमित्यमरः । अ(आ) र्यपुत्र[1225] अथवा संशयित इदानी नैष समुदाचारः, सम्प्रदायः । समुद्आचारश्च । पौरव, युक्तं नाम ते पुरा आश्रमपदे तथोत्तानहृदयमिमं जनं समयपूर्वं प्रतार्य साम्प्रतम् ईदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम् । तथाऽनिर्वाच्यम्[1226] । उत्तानम् अगंभीरं साध्वित्यर्थः । सर्वं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा – (कर्णौ पिधाय) शान्त पापम् ।

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटरुहं च ॥ २१ ॥

शकुन्तला – होदु । जइ परमत्थदो परिग्गहसंकिणा तुए एव्वं पउत्तं, अहिण्णाणेण इमिणा तुह संदेहं अवणइस्सम् । (भवतु, यदि परमार्थतः परिग्रहशङ्किना त्वयैवं प्रवृत्तम्, अभिज्ञानेनानेन तव सन्देहमपनेष्यामि ।

राजा – उदारः कल्पः ।

शकुन्तला - (मुद्रास्थानं परामृश्य ।) हद्धि हद्धि अंगुलीअअसुण्णा मे अंगुली । (सविषादं गौतमीमवेक्षते ।) (हा धिक्, हा धिक् ! अंगुलीयकशून्या में अंगुली ।)

गौतमी – णूणं सक्कावदारब्भंदरे सईतित्थं वंदमाणाए तुह अग्गहत्थादो पब्भट्टं अंगुलीअअं । (नूनं शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थं वन्दमानायास्तव अग्रहस्तात् प्रभ्रष्टमंगुलीयकम् ।)

राजा – (सस्मितम्) इदं तत् प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते ।

शकुन्तला – एत्थ एव्व दाव विहिणा दंसिदं पहुत्तणं । अदरं दे कहइस्सं । (अत्रैव तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम् । अपरं ते कथयिष्यामि ।)

राजा – श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम् ।

---

सत्यमिति मन्यमानमिति यावत् । हृदयं[1227] यस्य । समयः शपथः पूर्वोऽस्मिन् कर्मणि । साम्प्रतम् इदानीम् । "प०चा" इत्यत्र त्यथ्यद्यां[1228] चछजा" [1229] इति चत्वम् ॥ व्यपदेशं[1230] महत्त्वम् ।

व्यपदिष्टो महानर्च्य इति केदारः । आविलयितुं[1231] कलुषयितुम् । इमं जनं[1232] मामित्यर्थः । कूलंकषेति हेतुगर्भविशेषणम् । सिन्धुर्नदी, सिन्धुर्ना सरिदिति स्त्रियामित्यमरः । अम्भो जलम् आविलयितुम् ।[1233] तटतरुं च पातयितुमिति बोध्यम् ॥ भवतु, यदि परमार्थतःपरपरिग्रहशंकिना त्वयैवं प्रवृत्तम् अभिज्ञानेन[[अनेन]][1234] ते संदेहम्[1235] अपनेष्यामि । परिग्रहः पत्नी । प्रवृत्तं यदि, प्रवृत्तं चेत् देहमपनेष्यामीति ध्वनिः । उदारो महान् । कल्पोयुक्ति । कल्पस्तुल्यसंवर्तयुक्तिष्विति त्रिकाण्डी ।[1236] हा धिक् । हा धिक् । अंगुलीयकशून्या मेऽङ्गुली । ननु शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थं[1237] वन्दमानाया[1238]स्तव हस्तात् प्रभ्रष्ट[1239]मंगुळी(ली)यकम् । शक्रावतारो नामेन्द्रदेवताक उत्सवविशेषः । तस्याभ्यन्तरेऽवसरे । अभ्यन्तरं तु प्रस्ताव[1240]व्यवधानप्रदेशयोरित्यमरमाला । "सईति०थम्" इत्यत्र सर० स इति० थम् 'इति पाठे सरस्वतीतीर्थ मित्यर्थः । अथवा शक्रस्यावतारो यस्मिंस्ततच्छक्रावतारं नाम तीर्थं तस्याभ्यंतरे व्यवधानप्रदेशे इत्यर्थः: ।[1241] अत एव कविना श०कावदाळति० थवाशीति" षष्टे(ष्ठे)ङ्के वक्ष्यते । प्रत्युत्पन्ना मतिर्यस्मात् यस्मिन्वा । तत् प्रत्युत्पन्नमति, समयोचितमतीत्यर्थः । स्त्रैणं[1242] स्त्रीसमूहः । इति यदुच्यते[1243] तदिदमिति योज्यम् । अत्र तावद् विधिना[1244] दर्शितं प्रभुत्वम् । यथा[1245] चाङ्गुळी(ली) यकापगमो विधिविलसित[1246]मिति भावः । अपरं ते कथयिष्यामि । ध्वनि । द्रष्टव्यं गतमित्याशयेनाह श्रोतव्यमिति ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला** — णं एक्कास्सिं दिअहे णोमलिआमंडवे णलिणीपत्तभा अणगदं उदअं तुह हत्थे संणिहिदं आसी। (नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्निहितमासीत्।)

**राजा** — शृणुमस्तावत्।

**शकुन्तला** — तक्खणं मह पुत्तकिदओ दीहापंगो णाम हरिणपोदओ उवट्ठिदो। तदो तुए दाव पुढमं एसो पिबदु त्ति अणुअंपिणा उवच्छंदिदो उअएण। ण उण सो दे अपरिअआदो हत्थब्भासं उवगदो पच्चा तस्सिं एव्व मए गहीदे सलिले किदो देण पणओ। तदो इत्थं पहसिदो सि, सव्वो सगंधेसु विस्ससदि। दुवे वि खु अरण्णअ त्ति। (तत्क्षणं मम पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम हरिणपोतक उपस्थितः। ततस्त्वया तावत् प्रथममेष पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्छन्दित उदकेन। न पुनस्स ते अपरिचयात् हस्ताभ्याशमुपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिले कृतस्तेन प्रणयः। तत इत्थं प्रहसिताऽस्मि — सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति। द्वावपि खल्वारण्यकाविति।

**राजा** — एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनां योषितामनृतवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः।

**गौतमी** — महाभाग णारुहसि एव्वं मंतेदुं। तवोवणसंवढ्ढिदो अणहिण्णो अअं जणो कइअवस्स। (महाभाग ! नार्हस्येवं मंत्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य।)

**स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु**
**संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः ।**
**प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात—**
**मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ॥ २२ ॥**

**शकुन्तला** — (सरोषम्) अणज्जा अत्तणो हिअआणुमाणेण पेक्खसि। को दाणिं अण्णो धम्मकञ्चुअप्पवेसिणा तिणच्छण्णकूवोवमस्स तुह अमुकिदिं पडिवज्जिस्सदि। (अनार्य। आत्मनो हृदयानुमानेन सर्वं पश्यसि। क इदानीमन्यो धर्मकञ्चुकप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं प्रतिपत्स्यते।

---

नन्वेकदिवसे नवम[1247]ल्लिकामण्डपे नळि(लि)नी[1248]पत्रभाजनगतम् उदकं तव हस्ते सन्निहितमासीत्। तत्क्षणं मम सः[1249] कृतकपुत्रो दीर्घापाङ्गो[1250] नाम हरिणपोतक उपस्थितः।[1251] त्वया तावत् प्रथममेष पिबत्विति[1252] अनुकम्पिनोपच्छन्दितः[1253] उदकेन। न पुनस्तेऽपरिचयाद् हस्ताभ्याशम् उपगतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिले कृस्तेन प्रणयः। तत इत्थंप्रहसितास्मि — सर्वः सगन्धेषु[1254] विश्वसिति। द्वावपि खल्वत्रारण्यकाविति। अनुकम्पित[1255] इत्यनुकम्पी। उपछन्दितोऽभिनिवेशितः। अभ्याशं समीपम्। प्रणयः पानरूप इत्यर्थः। सर्वः प्राणीति शेषः। सगन्धेषु[1256] गन्धेन सम्बन्धेन[1257] सहितेषु। गन्धः स्याद् गुण आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः। स एव द्रव्यवचनो बहुत्वे पुंसि च स्मृत इत्यगस्त्यः[1258]। निर्वर्तिनीनां[1259] पूरत्रियीणाम्। महाभाग, नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽनभिज्ञोऽ[1260]यं जनः कैतवस्य। परिशेषात् त्वमेव कैतवाभिज्ञ इति भावः॥ **अशिक्षितं सहजं च तत्**[1261] पटुत्वम्। अमानुषी[[षु मानुषी ]][1262]व्यतिरिक्तासु तिर्यग्जातिष्वपीत्यर्थः। प्रतिबोधवत्यो[1263] मानुष्य इति शेषः। अन्तरिक्षगमनात्प्राक् पूर्वम्।[1264] जातं समूहम्। द्विजैः काकैः। परभृताः कोकिलांगनाः॥ अनार्य! आत्मनो हृदयानुमानेनैवं पश्यति। "अविणअ"

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** — (आत्मगतम् ।) संदिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते । तथा ह्यनया –

मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ
वृत्तं रहः प्रणयमप्रतिपद्यमाने ।
भेदाद्भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या
भग्नं शरासनमिवातिरूषा स्मरस्य ॥ २३ ॥

(प्रकाशम्) भद्रे । प्रथितं दुष्यन्तचरितम् । तथापीदं न लक्षये ।

**शकुन्तला** — सुट्ठु दावं सच्छंदआरिणी किद ह्मि जा अहं इमस्स पच्चएण मुहमहुणो हिअअविसस्स हत्थब्भासं उवगदा । (सुष्ठु तावत् स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहमस्य प्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता (इति पटान्तेन मुखमावृत्य रोदिति ।)

**शार्ङ्गरवः** — इत्थमात्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति ।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ॥ २४ ॥

---

इति पाठे "अविनयेत्यर्थः ।[1265] एवमुक्तप्रकारेण । क इदानीमन्यो धर्मकंचुकप्रवेशिनस्तृणछन्नकूपोपमस्य तवानुकृतिं[1266] प्रविश्यति । धर्म इति कंचुकः परभ्रामक[1267]मावरणमात्रं तत्प्रवेशी मनसा[1268] धर्मी[1269] निवासी[1270]त्यर्थः । अनुकृतिः अनुकारम्[1271] । वृत्तम्अतीतमेव ।[1272] वृत्तं पद्ये चरित्रे त्रिष्वतीत इत्यमरः । रहः प्रणयम् अप्रकाशस्नेहम् । भेदाध्देतोः । इवेत्युत्प्रेक्षा ॥ प्रथितम् प्रसिद्धम् । सुष्ठु[1273] तावदार्यपुत्र, स्वच्छन्दरिणी कृतास्मि । याहं तव प्रत्ययेन मुखमधोः[1274] हृदयविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता ।[1275] प्रत्ययेन विश्वासेन । मुखे मधुर्यस्य । मकरन्दस्य मद्यस्य माक्षिकस्य च वाचकः । अर्धर्चादिगणे [1275] पाठात् पुंनपुंसकयोर्मधुरिति मुकुटः । रोदितीति कवेरति[[क्रमो[1277]ऽयमिति लाक्षणिकाः । नाटका[1278]दिष्वेवमष्लील–कथनस्य निषिद्धत्वात् ।[1279] इत्थमेवम् आत्माना स्वेनैव गतमवगतम् आत्मगतमन्यैरज्ञातमिति या[व]त् ।[1280]प्रतिहतं विघ्नितं, दुष्यति(न्ते) नेति शेषः । चापलं भोगासक्तिरूपं चपलत्वं दहति, दहनवत्सं[1281]तापकारि भवति यतः ॥ अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं सामान्यादिति शेषः । रहस् उद्दिश्य संगतं प्राप्तं रहस्यमिति यावत् । तद् विशेषात् परीक्ष्य[1282] कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥ अन्यथा बाधकमाह–अज्ञातेति । अज्ञातहृदयेष्वन्तःकुटिले,[1283] बहिः सौम्येषु विषये[षु]सौहृदं[1248] सख्यम्[1285] एवं वैरीभवति विरोधीभवतीत्यर्थः । ईदृशेषु प्रणयो दिष्परिणाम एवेति भावः । सौहृदं वैरीभवतीति द्विपदीमव गच्छन्निदं[1286] लिङ्गभेदात् {त}तुच्छमित्यतुच्छभ्रमः कोऽपि व्याचकार, तत्र । वैरीभवतीत्यस्यैकपदत्वात् । तथा च तन्वि चक्रीभवत्येषा तव वेणीति सार्वभौमः । राजा सर्वान्प्रत्याह[289]भो इति । संभृतरोषाण्यक्षराणि यस्मिन् । किं क्षिणुथेति पूर्वेणान्वयो[1290] हिंसयथेत्यर्थः[1291] । क्षिणोति मिनाति हिंसयतीति माठरः । अयि भो इत्यत्र निमीलिताक्षः कश्चिद्व्याचकार, तत्र । अव्ययसंबोधनद्वयस्यान्याय्यत्वात्[1292] । न च वाच्यं "कथं तर्हि भो भो

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा — अयो भोः ! किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संभृतरोषाक्षरैरधिक्षिपसि ।

शार्ङ्गरवः — (सासूयम् ।) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम् ।

आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।
परातिसंधानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ॥ २५ ॥

राजा — भोः सत्यवादिन् ! अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम् । किं पुनरिमां अतिसंधाय लभ्यते ।

शार्ङ्गरवः — विनिपातः ।

राजा — विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयमेतत् ।

शार्ङ्गरवः — भोः राजन् ! किमुत्तरोत्तरेण । अनुष्ठितो गुरु निदेशः । प्रतिनिवर्तामहे वयम् ।

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ २६ ॥

गौतमि ! गच्छाग्रत ।

(इति प्रस्थिताः)

---

इति", तत्र साजात्येन वीप्सायां[1293] द्विरुक्तिर् अव्ययानव्ययेषु संबोधनद्वयेऽपि न दोषः । अत एव"अंगावेक्षस्व सो मित्रे (?) "इत्यादि कविरिति दिक् । स्वकीयान्प्रत्याह श्रुतमिति । अधरं च तदुत्तरम् । अधरकार्याक्षमं नीचमिति यावत् । अधरस्योत्तरमिति चार्थः । राज्ञ इति भावः ॥ शाठ्यम्[1294] अनार्जवम् ।[1295] उद्दिश्येति शेषः । जनस्य अस्मदादै(दि)[भि]रिति भावः । यैर्विद्यैति परवंचनम्[1296] अधीयते, ते दुष्यन्तादय इति भावः । आप्ता वाचः सन्तु किल । आप्तवत्प्रमाणं वाचो येषाम् । किलेत्यळी(ली) के । तथा[1297] च– असत्य[1298]वादिनोऽस्याग्रे सत्यवादिनो वयं कियन्त इति भावः ॥ वैपरीत्याशयादाह – भोः सत्येति । अभ्युपगतम् अङ्गीकृतं भवद्वचनमिति[1299] शेषः । एवमिमामतिसन्धाय किं पुनर्लभ्यत इति योज्यम् । "तावत्पुनः" शब्दौ वाक्यालंकारे[1300] । विनिपातोऽ[1301]धःपतनं, तदेव प्रत्यवायो दोषः । लभ्यत इति पूर्वेणान्वयः ॥

दारेष्विति पुंभूम्नि दारा इत्यमर । सर्वतोमुखी सर्वपथीना (?)[1302] । प्रभुता समर्थता, उपपन्ना युक्ता हि ॥ अहममुना तावत्कितवेन विप्रलब्धास्मि[1303] । कितवो[1302] धूर्तः । विप्रलब्धा वंचिता । यूयमपि मां[1305] परित्यजथ । वत्स शागं(र्ङ्ग)रव इयमनुगच्छति[1306] नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला । प्रत्यादेशपरुषे[1307] भर्तरि[1308] किं वा मे पुत्रिका करिष्यति । करुणं यथा तथा । करुणस्तु रसे[1309] वृक्षे कारुण्येऽपि[1310] चेति विश्वः । करुणनीर[1311]निधाविति श्रीहर्षः । प्रत्यादेशो निरासः । तद्विषये परुषे निष्ठ(ष्ठु) रे सतीत्यर्थः । 'आः कोपे विद्याम् मातरमाः (?) प्रदर्श्यैति" क्षीरस्वामी । पुरोभागिनि दौषेकदृगिति संबोधनम् । इति इति केयं कोऽह[1312] मित्यादीत्यर्थ(?) ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला** – कहं दाव इमिणा किदवेण विप्पलद्ध ह्मि । तुम्हे वि मं परिदेविणिं परिच्चअहं । (कथं तावत् अनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि । यूयमपि मां परिदेविनीं परित्यजथ ।)

(इत्यनुप्रतिष्ठते ।)

**गौतमी** – (स्थित्वा) वच्छ सङ्र्गरव ! अनुगच्छइ इअं णो करुणपरिदेविणी सउंदला । पच्चादेसपरुसे भत्तुम्मि किं वा मे पुत्तिआ करेदि । (वत्स शार्ङ्गरव ! अनुगच्छतीयं नः करुणपरिदेविनी शकुन्तला । प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोति ।)

**शार्ङ्गरवः** – (सरोषं संनिवृत्य ।) आः पुरोभागिनि ! किमिदं स्वातन्त्र्यमवलम्बसे ।

(शकुन्तला भीता वेपते)

**शार्ङ्गरवः** – शकुन्तले !

यदि तथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कुलया त्वया ।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥ २७ ॥

तिष्ठ तिष्ठ साधयामो वयम् ।

**राजा** – भोस्तपस्विन् । किमत्रभवतीं विप्रलभसे ।

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव ।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेपराङ्मुखी वृत्तिः ॥ २८ ॥

**शार्ङगरव** – यदि पूर्ववृत्तमन्यासङ्गाद्विस्मृतो भवान् तत्कथमधर्मभीरु ?

**राजा** – भवन्तमेवात्र गुरु लाघवं पृच्छामि ।

मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये ।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ॥ २९ ॥

---

"असि किम्"" "त्वया पितुः किमिति" काकाक्षिन्यायेन[1313] किंशब्द उभयत्र योज्यः । "कथं[1314] तु", "यदि त्विति" च पाठद्वयम् । अथ प्रश्ने । यदि चेदर्थे । तुकारः पादपूरक इति केचित् । वैषम्यद्योतक इत्यन्ये । शुचि पवित्रम् । क्षममुचितम् ॥ साधयामो गच्छामः ।

विप्रलम्भसे[1315] विहाय गछ(च्छ) सीति यावत् । विप्रलम्भो विसंवाद इत्यमरः ॥ **वशिनां** निगृहीतेन्द्रियाणाम । वृत्तिर्मर्यादा । परपग्रिहसंश्लेषे[1316] अन्यपत्नीपरिष्वङ्गे पराङ्मुखी । गुरु गुरुत्वं, भावप्रधानो[1317] निर्देशः । लाघवं लघुत्वम् । संशये सतीत्यर्थः । कोटिद्वये बाधकद्वयमाह[1318] दारपरेति [1319] (दारेति परेति) ॥ **मया न व्यूढेयमित्युक्तौ**[1320] भर्यात्यागी

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



पुरोहितः — (विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम् ।

राजा — अनुशास्तु मां भवान् ।

पुरोहितः — अत्रभवती तावदाप्रसवान्मम गृहे तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत्। त्वं साधुभिरादिष्टः प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, ततः प्रतिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये पितुरस्याः समीपगमनमवस्थितमेव ।

राजा — यथा गुरुभ्यो रोचते ।

पुरोहितः — वत्से ! अनुगच्छ माम् ।

शकुन्तला — भअवदि वसुहे, देहि मे विवरं । (इति रुदती निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विजनैश्च ।) भगवति ! वसुधे देहि मे विवरम् ।)

राजा — (शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति ।)

(नेपथ्ये)

आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

राजा — (आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात् ।

(प्रविश्य)

पुरोहितः — (सविस्मयम्) देव । अद्भुतं संवृत्तम् ।

राजा — किमिव ? ।

पुरोहितः — देव ! परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु -

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला
बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता ।

---

भवामि । आहो[1321] अथवैतदुक्तं मृषां(षा) वचनाङ्गीकारे परस्त्रीस्पर्शपांसुलो भवामि । तथा चौभयथा संकटमिति भावः । अस्मिन्पद्ये व्याकुर्वन्तः कलहायमाना[:]केचिदमतयो वैद्यनाथपुरे देवीसन्निधाविव शिरोभ्रमणमाचरे(रं)ति[1322] । "यदि" संभावनायां तावदवधारणे । एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण देव एवं क्रियतामित्येव क्वचित्पाठः ।]][1323] साधुभिः सज्जनैर्[1324] दैवज्ञैरिति[1325] यावत् । प्रथमं ज्येष्ट(ष्ठ)म् । शुद्धान्तं स्त्र्यागारं, ध्वनिश्च ।[1326] विपर्यये[1327] तादृश[1328]पुत्राभावे । विवरमिति[1329] एवं कथनं स्त्रीस्वभाव इति बोध्यम् । अत एव"देमाय धरणी ठाव[1330]" इति महाराष्ट्रांगनाः । अनेन शरीरानपेक्षा[1331] लक्ष्यते । मर्यादा धारणा स्थितिरित्यमरः ।

गतं गमनम् । कण्वः कश्यपः ॥ भाग्यानि दैवानि[1332] । बाह्वोर्उत्क्षेपः ऊर्ध्वीकरणं[1333] यस्मिन् कर्मणि । स्त्री-संस्थानं[1334], स्त्रीति सूचकम्, एकं[1335] ज्योतिः मेनकेत्यर्थः । अत एव शकुन्तलामादाय[1336] मेनकेति कविना सप्तमाङ्के वक्ष्यते । एनां शकुन्तलाम् आक्षिप्य[1337] अदायेति यावत् । अप्सरस्तीर्थ[1338]मुद्दिश्य,[1339] आरात्समीपे तिरोभूता । चकारद्वयं पादपूरणे । संस्थानं[1340]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा – किं च ।

पुरोहितः – स्त्रीसंस्थानं चाप्सरस्तीर्थमारा - ।

दाक्षिप्यैनां ज्योतिरेकं तिरोऽभूत् ॥ ३० ॥

( सर्वे विस्मयं रूपयन्ति ।)

राजा – भगवन् । प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव । किं वृथा तर्केणाकृष्यते। विश्राम्यतु भवान् ।

पुरोहितः – (विलोक्य ।) विजयस्व । (इति निष्क्रान्तः ।)

राजा – वेत्रवति ! पर्याकुलोऽस्मि । शयनभूमिमार्गमादेशय ।

प्रतीहारी – इदो इदो देवो । (परिक्रामति ।) (इत इतो देवः ।)

राजा – (आत्मागतम् ।)

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।

बलवत्तु दूयमानं प्रत्यायतीव मां हृदयम् ॥ ३१ ॥

॥ इति निष्क्रान्ताः सर्वे ॥

## इति पञ्चमोऽङ्कः ।

---

पुरसु [[स्छा (स्था) नसूचके[1341]]]ष्विति केदारः । अर्थः शकुन्तलारूपं वस्तु । प्रत्यादिष्टो निरस्तम्[1342] इत्यमरः । वृथा तर्केण व्यर्थोहेन[1343] । तर्क ऊह इत्यमरः । भूमिः स्थलं[1344] प्रदेशो वा इत इतो देवः ॥ एतां परिग्रहपत्नीं[1345] न स्मरामि ॥[1346] तुशब्दः पूर्वस्माद्[1347] वैषम्य[1348] द्योतनाय । बलवत्सुष्ठु । मे हृदयं प्रत्याययतीव विश्वासं[1349] प्रापयतीव । एवं निरस्तायाम[1350]प्यस्यां खिन्नं मे हृदयं[1351] किमपि विश्वासशालीति भाव इत्यलमति[1352] - विस्तरेण ॥

इति महाराजपद....शाकुन्तल–[1353]सञ्जीवनाख्याटिप्पणे पञ्चमोऽङ्कः ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# ॥ अथ षष्ठोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशति नागरिकः स्यालः । पश्चाद्बद्धं पुरुषमादाय रक्षिणौ च ।)

**रक्षिणौ —** (ताडयित्वा ।) अले कुम्भीलअ, कहेही कहेहि कहिं तुए एशे मणिबन्धणुक्किण्णणामहेए लाअकीए अंगुलीअए शमाशाइदे ।

(अरे कुम्भीलक । कथय कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयमङ्गुलीयकं समासादितम् ।)

**पुरुषः —** (भीतिनाटितकेन ।) पशीदन्तु भावमिश्शा । अहके णेलिसकम्मकालिए । (प्रसीदन्तु भावमिश्राः । अहं नेदृशकर्मकारी ।)

**रक्षिणोः प्रथमः —** किं खु शोभणे ब्रह्मणेत्ति कलिअ रण्णा पडिग्गहे दिण्णे ? (किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः ?)

**पुरुषः —** शुणुह दाणिं । हगे शक्कावदालतित्थवाशी धीवले ।

(शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावतारतीर्थवासी धीवरः ।)

**द्वितीयः —** पाडच्चल, किं अह्महिं जादी दे पुच्छिदा ? ।

---

अथ शकुन्तलाङ्गी[1354]कार – प्रणयनिदानम्[1355] अङ्गुलीयकलाभप्रकरणं प्रवेशकमुखेन[1356] प्रक्रमते । तत इति ॥ नगरसम्बन्धी नागरिकः ।[1357] नगरपालक इति यावत् । स्यालाः स्युर्भ्रा[1358]तरः पत्न्या इत्यमरः । महिष्यारसाक्षात्[1359] भ्रातेति[1360] कश्चिन्महिषमतिः[1361] व्याचकार, तन्न । राजपत्न्या मानिनो[1362] भ्रातेति बोध्यः । कविना साक्षात्संबन्धस्यानभिधानात् । राजस्यालकस्य नगरपालनाद्य[1363]ल्पाधिकृतावनुचितत्वाच्च । प्रभुर्यं यं यथा ब्रूते[1364] तं तथा सकलो जनः । जामातृमातुलस्यालपितृव्याद्याः[1365] निदर्शनमिति लोलिम्बः[1366] । एष एव स्यालो मित्रावसु[1367]रिति भण्यते । कविनैवाग्रे "मि. तावसुणा र. ठिण्णेति", तदनुपदमेव पुनः "सुदं[1368] र. ठिअमुहादो" इति च संविधानगाहन्यपरिज्ञानाय वक्ष्यत इति दिक् । "अदन्तेषु च शब्देषु प्रथमैकवचः स्थले । सप्तमी, षसरेफेषु शळप्राया तु मागधीति" वररुचिप्रोक्तलक्षणादतिनीचपात्रोचितां[1369] वैशाचीं[1370] भाषामुपक्रमते । अळे इति । अरे कुम्भे(भी) रक कथय कथय । कथं त्वया एतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेयं राजकीयम्[1371] अङ्गुळी(ली)यकं समासादितम् ।[1372] हीने संबोधने त्वरे[1373] इत्यमरः । अरे इति महाराष्ट्राः । चोरः कुम्भीरको दस्युरिति पदमाला । मणिबन्धनेषु रत्नगर्भेषूत्कीर्णं[1374] लिखितं नामधेयं राजानाम यस्मिन् । बन्धनं बन्धगर्भयो[1375] – रिति रुद्रः । पुरुष[1376] कुम्भीरक इत्यर्थः । प्रसीदन्तु भावमिश्रा, अहं नैदृशं[1377] कर्मकारी[1378] । भावमिश्राः विद्वत्पूज्याः । विद्वत्सु पूज्या इत्यर्थः स्वस्मादपि विद्वत्पूज्यत्वममीषामस्तीति भावः । भावो त्रिकाण्डी ।[1379] अहमित्यर्थे[1380] "अगे- एहगे" इति च निपातः । प्रथम इति । रक्षिणोर्मध्य इति ज्ञेयम् । किंनु खलु शोभनो ब्राह्मण इति[1381] मनसि कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहे दत्तमङ्गळी(ली) यकम् । प्रतिग्रहे विषये । शृणुतेदानीम् आवुत्ताः । अहं शक्रावतारतीर्थवासी[1382] धीवरः । भगिनीपतिरावुत्त

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(पाटच्चर ! किमस्माभिर्जातिस्ते पृष्टा ? ।)

स्यालः – सूअअ कहेदु सव्वं अणुक्कमेण । मा णं अन्तला पडिवदेह ।

(सूचक ! कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मैनमन्तरा प्रतिबध्नीतम् ।)

उभौ – जं आवुत्तो आणवेदि । (यदावुत्त आज्ञापयति)

(इति तूष्णीं तिष्ठतः ।)

स्यालः – कहेहि कहेहि । (कथय कथय)

पुरुषः – हगे जालुग्गालादीहिं मच्छबन्धणोबाएहिं कुडुम्बभलणं कलेमि । (अहं जालोद्गालादिभीर्मत्स्यबन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि ।)

स्यालः – (विहस्य ।) विशुद्धो दाव द आजीवो । (विशुद्धस्तावत्ते आजीवः ।)

पुरुषः – भट्टा सुणोदु । (भर्ता शृणोतु ।)

शहये किल जे विणिंदिए ण खु दे कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमारणकम्मदाळुणे अणुकंपामिदु एव्व शोत्तिए ॥ १ ॥
( सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारणकर्मदारुणः अनुकंपामृदुरेव श्रोत्रियः ।)

स्यालः – तदो तदो । (ततस्ततः ।)

---

इत्यमरः । प्राणरक्षणायोपचारोक्ति[1383] रित्यूह्यम् । धीवरः कैवर्तः । पाठच्चर, किमस्माभिर्जातिः[1384] पृष्ठा । सूचक, कथयतु सर्वमनुक्रमेण । मा[1385] एनम् अन्तरा प्रतिबधान । अन्तरा[1386] मध्ये त्वामन्तरेति क्रीडाचन्द्रः । प्रतिबन्धं मा कुरुष्वेत्यर्थः । सूचक इति रक्षिणोरन्यतरस्य नाम । यद् आवुत्तः आज्ञापयति । कथय कथय । हगे जालोद्गारादिभि र्मच्छ(त्स्य) बन्धनोपायैः कुटुम्ब[1387]भरणं करोमि । जालानि बिडिशानि तेषाम् । उद्‌गारस्तु प्रसारणमिति हैमः । विशुद्धस्तावद् आजीवः । जीविकेत्यर्थः । हिंसामय[1388]इति भावः । हिंसाप्राचुर्येऽपि न बाधकमित्याह ॥

"सहजं किल यदपि निन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयकम् । पशुमारणकर्मदारुणः, अनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः ॥ "सहजं परंपरा प्राप्तम्[1389] । स्वार्थे "कः" पादपूरक इति बहवः । तथा च हिंस्रो[1390] ऽप्यहं श्रोत्रिय इव दयाळु(लु) रेवा[1391]स्मीति भावः । ततस्ततः । अथैकदिवसे खण्डशो रोहितमच्छो(त्स्यो)[1392] मया कल्पितः । तस्योदराभ्यन्तरे एतद्रत्नभासुरमंगळी(ली) यकं दृष्ट्वा पश्चाद् अस्य विक्रयाय दर्शयन्नयहं गृहीतो भावमिश्रैः । रोहितो मद्‌गुर इत्यमरः । शेक्कंडेमीन[1393] इति द्रविडधीवरजातीयाः । कल्पितः पाकायेति[1394] शेषः । भावमिश्रैर्युष्माभिः । मारयत वा मुञ्चत[1395]वा, इयम् अस्यागतिः । संहितायां ध्वनिः । जानुक विस्रगन्धी घोराकृतिर्मच्छ[1396](—त्स्य) बन्ध एव निःसंशयम् अङ्गुली(ली) यक[1397]दर्शनम् अस्य मर्षितव्यम् । राजकुलमेव गछा(च्छा)मः । जानुक इति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**पुरुषः** — अह एक्करिंश दिअशे खण्डशो लोहिअमच्छे मए कप्पिदे । तश्श उदलब्भन्तले एदं लअणभाशुलं अंगुळीअअं दक्खिअ पच्छा शे विक्कअस्स दंशअन्ते हगे गहीदे भावमिश्शेहिं । मालेह वा मुञ्चेह वा । अअं शे आअमो । (अथैकस्मिन्दिवसे खण्डशो लोहितमत्स्यो मया कल्पितः । तस्योदराभ्यन्तरे इदं रत्नभासुरमङ्गुलीयकं दृष्ट्वा पश्चादस्य विक्रयाय दर्शयन् अहं गृहीतो भावमिश्रैः । मारयत वा मुञ्चत वा अयमस्यागमः ।)

**स्यालः** — जाणुअ विस्सगन्धीघोलाकिदी मच्छबन्धो एव्व णिस्संसअं । अङ्गुलीअअदंसणं से विमरिसिदव्वं । तालाअकुळं एव्व गच्छह्यो ।

(जानुक ! विस्रगन्धिर्घोराकृतिर्मत्स्यबन्ध एव निस्संशयम् । अङ्गुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम् । तद्राजकुलमेव गच्छामः ।)

**रक्षिणौ** — तह । गच्छ अळे गन्धिभेअअ (तथा । गच्छारे ग्रन्थिभेदक ।)

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

**स्यालः** — सूअअ, हम गोउरदुवारे अप्पमत्ता पडिवाळेह णाम । जाव इदं अङ्गुळीअअं जहागमणं भट्टिणो णिवेदिअ तदो से सासणं पडिच्छिअ णिक्कमामि । (सूचक ! इमं गोपुरद्वारे अप्रमत्तौ परिपालयतम् नाम । यावदिदमङ्गुलीयकं यथागमनं भर्त्रे निवेद्य ततोऽस्य शासनं प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि ।)

**उभौ** — पविशदु आवुत्तो शामिप्पशादाहा । (प्रविशत्वावुत्तः स्वामिप्रसादाय ।)

(निष्क्रान्तस्स्यालः ।)

**प्रथमः** — जाणुअ चिराअदि खु आवुत्तो । (जानुक ! चिरायति खल्वावुत्तः)

**द्वितीयः** — णं अवशळोवशप्पणीआ लाआणो । (नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः ।)

**प्रथमः** — जाणुअ फुळन्ति मे हत्था इमश्श वज्झश्श शुमणशो पिणद्धुं । (जानुक ! स्फुरतो मे हस्तौ अस्य वध्यस्य सुमनसः पिनद्धुम् ।)

(इति पुरुषं निर्दिशति ।)

---

द्वितीयस्य[1398] रक्षिणो नाम । विस्रं स्यादाम[1399]गन्धीत्यमरः । मच्छा (त्स्या)[1400]नां बन्धो[1401] येन धीवर इत्यर्थः ॥ गच्छ,[1402] अरे ग्रन्थिभेदक । तस्करो ग्रन्थिमेदक इति जयः । जानुकः सूचकेमं[1403] गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रमिपालयतम् । यावदिदमङ्गुळी(ली)यक(कं)[1404] यथागमनं[1404] भर्त्रे[1406] निवेद्य, ततः शासनं प्रतीक्ष्य[1407], निष्क्रामामि । ततः तस्मात् भर्तु[1408]रित्यर्थः । निवेद्य[1409] ततोऽनन्तरमिति कोऽपि बभ्राम प्रतीक्ष्य प्रतिपाल्य । गच्छतु[1410] आवुत्तः स्वामिप्रसादाय । रक्षिणोरावुत्तत्वं स्यालस्याधिकारसम्बन्धयोग्यतया युज्यत इत्यूह्यम् । प्रथमः सूचक इत्यर्थः । जानुक चिरयति खल्वावुत्तः । द्वितीयः [[जानुक इत्यर्थः । ननु अवसरोपसर्पणीया[1411] राजानः ।]][1412]

जानुक स्फुरतो मे हस्तावस्य वध्यसुमनसः पिनद्धुम्[1413]। स्त्रियः सुमनस इत्यमरः । प्रकृते

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**पुरुषः** – णालहदि भावो अकालणमालणो होदुं। (नार्हति भावः अकारणमारणो भवितुम्)

**द्वितीयः** – (विलोक्य) एशे अह्माणं शामी गहिणअ लाअश्शाशण इदोमुहं देक्खदि। तदो तुमं गिद्धबळी भविश्शशि।

(एषोऽस्माकं स्वामी गृहीत्वा राजशासनमितोमुखं पश्यति। ततस्त्वं गृध्रबलिर्भविष्यसि।)

(प्रविश्य स्यालः।)

**स्यालः** – सूअअ मुच्चिअदु एसो जालोवजीवी। उववण्णो किल से अङ्गुलीआअमो। (सूचक ! मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः किलास्याङ्गुलीयकस्यागमः।

**प्रथमः** – जह आवुत्तो भणादि। (यथा आवुत्तो भणति।)

**द्वितीयः** – एशे जमसदणं पविशिअ पडिनिवुत्तो। (एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः।)

(इति पुरुषमुन्मुक्तबन्धनं करोति।)

**पुरुषः** – (स्यालं प्रणम्य।) भट्टा तुह्मकेलए मे जीविदे।

(भर्तः। युष्मदीयं मे जीवितम्)

**स्यालः** – एसो भट्टिणा अङ्गुलीअअ मुल्लसम्मिदो अत्थो पारिदोसिओ पदाविदो। (एष भर्त्रा अङ्गुलीयकमूल्यसम्मितोऽर्थः पारितोषिकः प्रदापितः। (इति पुरुषायार्थं प्रयच्छति।)

**पुरुषः** – (सप्रणामं प्रतिगृह्य।) भट्टा अणुग्गहीद म्हि। (भर्तः। अनुगृहीतोऽस्मि।)

**सूचकः** – एशे णाम अणग्गहीदे। जे शलादो ओदालिअ हत्थिक्कन्धे पडिट्ठाविदे। (एष नामानुगृहीतः यश्शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः।)

**जानुक** – आवुत्त, पारिदोशिअं एव्व कहेदि। तेण अङ्गुलीअअएण भट्टिणो सम्मदेण होदव्वत्ति। (आवुत्त। पारितोषिकमेव कथयति तेनाङ्गुलीयकेन भर्तुस्सम्मतेन भवितव्यमिति।)

**स्यालः** – ण तरिसं महारुहं रदणं भट्टिणो बहुमदंति तक्केमि। तस्स दंसणेण कोवि अभिमदो जणो भट्टिणा सुमरिदो। जं मुहुत्तअं पकिदिगम्भीरो वि पज्जस्सुणअणो आसी। (न तस्मिन् महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन कोऽप्यभिमतो जनः भर्त्रा स्मृतः।

---

अर्कपुष्पादीनि[1414] लक्ष्यन्ते।[1415] नार्हति भावोऽ[1416] कालमारणे भवितुम्। एषोऽस्माकं स्वामी[1417] लेखपत्रं गृहीत्वा राजशासनम्इतोमुखं पश्यति। त्वं गृध्रबलिर्भविष्यसि। स्वामी[1418] स्यालः। राज्ञः [[शासनं[1419] यस्मिन् लेखपत्रे। सूचक मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्नः ]] किलास्याङ्गुळी(ली) यकस्यागमः। यथावुत्तो भणति।[1422]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



यन्मुहूर्तं प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन आसीत् ।)

**सूचकः** — शेविदं णाम आवुत्तेण । (सेवितं नाम आवुत्तेन ।)

**जानुकः** — णं भणाहि इमश्श किशे मच्छशत्तुणोत्ति । (ननु भण अस्य कृते मत्स्यशत्रोरिति । (पुरुषमसूयया पश्यति ।)

**पुरुषः** — भट्टा इदो अद्धं तुम्हाणं शुमणोमुल्लं होदु । (भर्तः इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु )

**जानुकः** — एदं जुज्जइ । (एतद्युज्यते ।)

**स्यालः** — धीवर । महत्तरो पिअवअस्सो दाणिं मे सवुत्तो । कादम्बरीसक्खिअं अम्हाणं पुडमसोहिदं इच्छीअदु । ता सोण्डिआपण पडिशावो (धीवर ! महत्तरः प्रियवयस्य इदानीं मे संवृत्तः । कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं प्रथमसौहृदमिष्यताम् । तच्छौण्डाकापणं प्रविशामः ।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

## ॥ प्रवेशकः॥

---

एष यमसदनं प्रविश्य प्रतिनिवृत्तः ॥ भर्तः, युष्यत्<<केरकं[1423]मे[1424]जीवितम्। युष्मदीयमित्यर्थः ॥ "प्राणास्त्वत्केरका ममेति" कुटुम्बकविः । तुम्ह० कीदे इति पाठे युष्मत्क्रीतमित्यर्थः ॥ अस्मै भर्त्राङ्गुळी(ली) यकमूल्यसंमितोऽर्थः [[दापितः । भर्त्तः अनुगृ–हीतोऽस्मि । अस्मै नामानुगृहीतम्, अनुग्रह इत्यर्थः । ]] नाम प्रसिद्धौ ।[1426] यः शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः ।[1427] आवुत्त पारितोषिकमेव कथयति । तेनाङ्गुळी(ली) यकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यमिति । ननु महार्हं रत्नं भर्तुर्बहुमत[1428]मिति तर्कयामि । तस्य दर्शनेन कोऽप्यभिमतो भर्त्ता[1429] जनः स्मृतः । मुहूर्तं[1430] प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्यश्रुनयन आसीत्। महार्हम् "महार्हं शयनोचित[1431] इति भगवान्बोधायनः। जनः शकुन्तला । परितोऽऽश्रुयुक्ते नयने[1432] यस्य । सेवितं नामावुत्तेन ।[1433] ननु भण अस्य कृते, मच्छ (त्स्य) शत्रोरिति। परंपरया धीवरोऽस्य वृत्तस्य[1434] निमित्तमिति भावः। भर्तः इतोऽर्धं मूल्यं[1435] युष्मभ्यं भवतु। इतो मूल्यद्रव्यादित्यर्थः । एतत् युज्यते। धीवर महत्तर[1436] प्रियवयस्य इदानीमसि मे संवृत्तः ।[1437] कादम्वरीसाक्षिकम् अस्माकं प्रथमसौहृदं भवतु ।[1438] कादम्बरी साक्षिणी[1439] यस्मिन् तत्कादम्बरीसाक्षिकं, मद्यसाक्षिकमित्यर्थः । "वान्ति स्वैरं समीराः स्मरसमर–महासाक्षिण" इति राजशेखरः । कादम्बरी साक्षी यस्मिन्निति वा । "मृगाक्षी कामाक्षी हरनटन[1440] साक्षी विहरतामिति" भगवत्पादाः[1441]। सद्विनिन्द्य[1442] "कादम्बरी" पदप्रयोगेण असत्काव्यकादम्बरीकारिणि बाणकवौ प्रकृतकविना दोष उद्घाटित इति बोध्यम् । ननु "कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचत" इति, बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वमिति" च प्रसिद्धे[1443]रसूया नेयं हृदयंगमेति, चेन्न। कादम्बरी रसस्यार्थान्तरतया दोषाकरत्वमेव, न तु गुणलवाधायकत्वम् । किन्तु "नवसर्गे गते माघे नव शब्दो न विद्यत" इत्यादिवद्बाणोच्छिष्टमित्यत्र "बाणपदस्य बाणकविरित्यन्धपारंपरिकल्पितो[1445]ऽर्थः। तत्कृतस्य[1446] ग्रन्थस्यैवापूर्तेः । वासवदत्तार्थग्रहणादसदनुगृहीतत्वाच्च । वस्तुतस्तु जगच्छब्देन[1447] जगद्वर्त्ति शिष्टसामान्यं[1448] लक्ष्यते। तद् बाणेन बाणासुरेणो[1449]च्छिष्टम् उन्नतं[1450]च तच्छिष्टमित्येव प्रामाणिकविशेषज्ञा वदन्ति ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(ततः प्रविशत्याकाशयानेन सानुमती नामाप्सराः)

**सानुमती –** णिव्वत्तिदं मए पज्जाअणिवत्तणिज्जं अच्छरातित्थसंमज्जणं जाव साहुजणस्स अभिसेअकालोत्ति । संपदं इमस्स राएसिणो उत्तंतं पच्चक्खीकरिस्सं । णं मेणआसम्बन्धेण सरीरभूदा मे सउन्दला । ताए अ दुहिदुणिमित्तं आदिट्ठपुव्वाम्हि । (समन्तादवलोक्य) किं णु खु उदुच्छवकाले वि णिरुच्छवारम्भं विअ एदं राअउल दीसइ । अत्थि मे विहवो पणिधाणेण सव्वं परिण्णादुं । किं तु सहीए आआरो मए माणइदव्वो । होदु । इमाणं दाव उज्जाणपालिआणं तिरक्खरिणीपडिच्छण्णा पस्सपरिवट्टिणी भविअ उपलंभिस्सं । (निर्वतितं मया पर्यायनिर्वर्तनीयमप्सरस्तीर्थसंमज्जनं यावत्साधुजनस्याभिषेककाल इति । सांप्रतमस्य राजर्षेर्वृतान्तं प्रत्यक्षीकरिष्यामि । ननु मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला । तया च दुहितृनिमित्तमादिष्टपूर्वास्मि । किं नु खलु ऋतूत्सवकालेऽपि निरूत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते । अस्ति मे विभवःप्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम् । किं तु सख्या आदेशो मया मानयितव्यः । भवतु । अनयोस्तावदुद्यानपालिकयोस्तिरस्करिणीप्रतिच्छन्ना पार्श्ववर्तिनी भूत्वोपलप्स्ये ।)

(इति नाट्येनावतीर्य स्थिता ।)

(ततः प्रविशति चूतांकुरमवलोकयन्ती चेटी, अपरा च पृष्ठतस्तस्याः ।)

**प्रथमा –** चूअं हरिसिअपिअअं जीविदसरिसं वसन्दमासस्स ।
सच्चरणचरणभग्गं उदुमङ्गलं विअ पेक्खामि ॥ २ ॥

---

न च वाच्यमुच्छिष्टपदमुपहास्यमिति, तर्हि "विष्णुर्योनि कल्पयत्वित्यादिषु तथात्वापत्तिस्तथा [1451]चागणेय(?) बाणलिङ्गार्चनमहिम्नोन्नत[1452]शिष्टम् उत्कृष्टं[1453] शिष्टं वा भवतीति भावः । एतेन बाणस्य भक्तिरन्यादृशीति[1454] गम्यते[1455] । अत एव – तत्पुरद्धारि सकुटुम्बं त्र्यम्बको जागर्त्तीति[1456] दिक् ॥ तस्माच्छुंडिकावनं[1457] प्रविशामः । शुण्डापानं मधुस्थानमित्यमरः ।[1458]

तथा आकाशयानं [[विमानम्]]। अत्र सानुमती प्रवेशासूचनं, "अप्सरा" इत्येकवचनमिति च कवेः[1460] प्रमादः ।[1461] निर्वर्तितम् मया पर्यायनिर्वर्तनीयम् अप्सरस्तीर्थसान्निध्यं, साधुजनस्या भिषेककाल इति । साम्प्रतमस्य[1462] राजर्षेर् उदं [[तं[1463] प्रत्यक्षी ]] करिष्यामि । आकर्णयिष्यामीत्यर्थः । मेनकासम्बन्धेन शरीरभूता मे शकुन्तला । तया च दुहितृनिमित्तम् आदिष्टपूर्वाऽ[1464]स्मि । पर्यायोऽप्सरसां सेवानुक्रम इत्यर्थः ॥ "संणि झ[1465]मित्यत्र "ध्यह्योर्झ[1466]" इति झत्वम् । कालः समयो ध्वनिश्च । शरीरभूता शरीरप्राया । द्वितीयशरीरमिति यावत् । पुत्री वा[1467]। तया मेनकयेत्यर्थः । किं नु खलूत्सलवकालेऽपि निरुत्सवारम्भमिवैतद्राजकुलं दृश्यते । अस्ति मे विभवः[1468] प्रणिधानेन सर्वं परिज्ञातुम् । किन्तु सख्या आदरो मया मानयितव्यः । भवतु एषां तावदुद्यानपालकानां[1469] तिरस्करणी प्रतिच्छन्ना[1470] पार्श्ववर्त्तिनीभूत्वोपलप्स्ये । राजकुलस्येति ।[1471] "ज"लोपात् महाराष्ट्रव्यवहारानुसारेण "देउलमिव" "राउलमिति[1472] वक्तव्ये "राअउळमिति" कथनं कवेः प्रमादः । प्रणिधानं समाधिः । तिरस्करणी नामान्येषामदृश्यो विद्याविशेषः । उपलप्स्येऽनुभविष्यामि ज्ञास्यामीति यावत् । उदन्तमिति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(चूतं हर्षितपिककं जीवितसदृशं वसन्तमासस्य ।

षट्चरणचरणभग्नमृतुमङ्गलमिव पश्यामि ॥)

द्वितीया — परहुदिए किं एअइणी मन्तेसि ? । (परिभृतिके । किमेकाकिनी मन्त्रयसे ? ।)

प्रथमा — महुअरिए चूतकलिअं दक्खिअ उम्मत्तिआ खु परहुदिआ होदि । (मधुकरिके ! चूतकलिकां दृष्ट्वा उन्मत्ता खलु परभृतिका भवति ।)

द्वितीया — (सहर्षं त्वरयोपगम्य ।) कहं उवट्टिदो महुमासो । (कथमुपस्थितो मधुमासः ।)

प्रथमा — महुअरिए तुह दाणिं कालो एसो मदविब्भमगीदाणं ।

(मधुकरिके ! तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगीतानाम् ।)

द्वितीय — सहि ओलम्बेसु मं जाव अग्गपादट्टिआ भविअ कामदेवच्चणस्स चूअंकुरावअअं करोमि । (सखि ! अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा कामदेवार्चनाय चूताङ्कुरापचयं करोमि ।)

प्रथमा — जइ मम वि अद्धं अच्चणफलस्स । (यदि ममाप्यर्धमर्चनफलस्य ।)

द्वितीया — अभणिदे वि एदं संपज्जइ । जदो एक्कं एव्व णो जीविदं दुहा ट्टिदं सरीरं । (अभणितमप्येतत्संपद्यते यत एकमेव नौ जीवितं द्विधा स्थितं शरीरम् ।

(सख्यावलम्बिता चूतांकुरं गृह्णाति ।) अह्महे अप्पडिबुद्धो वि चूदप्पसवो एत्थ बन्धणभङ्गसुरभो होदि । (अये । अप्रतिबुद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभङ्गसुरभिर्भवति ।)

---

शेषः ॥ चूताङ्कुरमिति ध्वनिः । अपरा च प्रविष्टेत्यन्वयः । प्रथमा परभृतिकेत्यर्थः । चूतं हर्षितपिककं[1473] जीवितसदृशं वसन्तमासस्य । षट्चरणचरणभग्नं मंगळ(ल) मृतोर्व[1474] पश्यामि । चूतम् आम्रपुष्पं, हर्षिताः पिककाः कोकिलप्रमुखा येन । मुख्यार्थे[1475] कप्रत्ययः । भवत्का[1476] विबुधा इति मयूरः । ऋतोर्वसन्ततोः । मंगळं(लं), शुभमिव । इवार्थे "व" शब्दः । कादम्बखण्डितदळ(ला)नि[1477] [[व]][1478]पङ्कजानी[[ति]][1479]प्राञ्चः । 'मंगळमुदुणो' इत्यत्र 'शेषः संस्कृताद्'[1480] इति सन्धिः । "अकुंकममचन्दणमिति,[1481] "असोसणममोहणमिति"[1482] च राजशेखरः ।[[भग्नं[1483] मंगळ(ल) मृतोरिति ध्वनिः ॥ द्वितीया मधुरकरिकेत्यर्थः । सखि परभृतिके किमेतदेकाकिनी[1484]मन्त्रयसे ॥ मधुकरिके, चूतकळिकां(लिकां)[1485] दृष्ट्वोन्मत्ता खलु परभृतिका भवति । परभृतिका कोकिला च ॥

कथमुपस्थितो मधुमासः ॥ मधुकरिके[1486] तवेदानीं काल एष मदविभ्रमगतीनाम् । मधुकरिका भ्रमरी च । विभ्रमो[1487] विलासः । सखि अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा कामदेवार्चनाय चूतांकुरापचयं करोमि । यदि ममाप्यर्धम्[1488] अर्चनफलस्य । अभणितेऽप्येवमेतत् संपद्यते — भवतीत्यर्थः । यत एकमेव नौ जीवितं, द्विधास्थितं शरीरम् । अम्हें हे[1490] अप्रतिबद्धोऽपि चूतप्रसवोऽत्र बन्धनभंगसुरभिर्भवति । अम्हें हे[1491] आश्चर्ये । अप्रतिबुद्धोऽ[1492]स्फुटः । वृन्तं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(इति कपोतकं कृत्वा)

तुं सि मए चूअंकुर दिण्णो कामस्स गहिदधणुअस्स ।
परिकुविदयुवइलक्खो पञ्चब्बहिओ सरो होहि ॥ ३ ॥
(त्वमसि मया चूतांकुर दत्तः कामाय गृहीतधनुषे ।
परिकुपितयुवतिलक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरो भव ॥)

(इति चूतांकुरं क्षिपति)

(प्रविश्य पटाक्षेपेण कुपितः कञ्चुकी)

**कञ्चकी** – मा तावत् अनात्मज्ञे ! प्रतिषिद्धे वसन्तोत्सवे त्वमाम्रकलिकाभङ्गमारभसे ।

**उभे** – (भीते ।) पसीददु अज्जे । अगहीदत्था वअं । (प्रसीदत्वार्यः। अगृहीतार्थे आवाम्)

**कञ्चुकी** – न किल श्रुतं युवाभ्यां यथा वासन्तिकैस्तरुभिरपि देवस्य शासनं प्रमाणीकृतं तदाश्रयिभिः पत्रिभिश्च । तथा हि –

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः
सन्नध्दं यदपि स्थितं कुरबक तत् कोरकावस्थया ।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्ट शरम् ॥ ४ ॥

**सानुमती** – णत्थि सन्देहो । महापहावो खु राएसी । (नास्ति सन्देहः । महाप्रभावः खलु राजर्षि :।)

---

प्रसवबन्धनमित्यमरः । योवुन्नतीकृतां[1493]गुष्टा(ष्ठा) वन्योन्यं संयुक्तौ[1494] करौ[1495] कपोतमुद्रा सा ज्ञेया । प्रणताञ्जलिरूपिणीति भरताचार्याः । "त्वमसि मया चूतांकुर दत्तः कामाय[1496] गृहीतधनुष्काय । पथिकजनयुवतिलक्षः पञ्चाभ्यधिकः करो भव ॥ धनुष्कायेत्यत्र स्वार्थे कः ।[1497] युवतयो लक्षं यस्य । लक्षं[1498] लक्ष्यम्इत्यमः[1449] । पञ्चस्वरविन्दादिषु । अभ्यधिकः[1500] श्रेष्ठः । मा तावदिति सामान्यतः खण्डूरपो[1501] निषेधः । विशेषमाह – अनात्मेति । आत्मा[1502] बुद्धिः । प्रसीदत्वार्यः[1503] अगृहीतार्थे आवाम् । अगृहीतार्थे इति प्रथमाद्विवचनम् । "वअम्"इत्यत्र द्विवचने बहुवचनमिति बहुत्वम् ॥ स्वं स्वकीयं, रजः परागसन्नद्धं केसरादिभिरगैः(?) समेतम् । यदपि कुरबकं कुरवकपुष्पम् । कंष्ठेषु र(रु) खलितं बहिर्न[1504] निर्गतमित्यर्थः । ध्वनिश्च । शिशिरे शिशिरर्तौ गते सत्यपि । पुंस्कोकिलो नदत्यादौ मधौ पस्चात्पिकांगना इति वस्तुनिर्णयात् पुंस्कोकिलानामिति प्रयोगः । अत्र कश्चिन्निमीलिताक्षो व्याचकार । संहरतीति[1506] ध्वनिः । अनन्यगत्योपसंहारतीत्यर्थः । "बाणान् संहरेति" राजशेखरः । तूणादर्ध कृष्टस्तं शरमिति विवेकः । अर्ध समेंऽशक[1507] इत्यमरः ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**प्रथमा** — अज्ज कदि दिअहाइं अम्हाणं मित्तावसुणा रट्टिएण भट्टिणो पाअमलं पेसिदाणं। इदं अ णो पमदवणस्स पालकम्म समप्पिदं। ता अस्सुदपुव्वो अम्हेहिं एसो वुत्तन्तो। (आर्य ! कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं प्रेषितयोः। इदं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम्। तदश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तान्तः।)

**कञ्चुकी** — भवतु न पुनरेवं प्रवर्तितव्यम्।

**उभौ** — अज्ज कोदूहलं णो होइ। अइ इमिणा जणेण सोदव्वं कहेदु अज्जो। किं णिमित्तं भट्टिणा वसन्तुस्सवो पडिसिद्धो। (आर्य ! कौतूहलं नौ भवति। यद्यनेन जनेन श्रोतव्यं कथयत्वार्यः:। किं निमित्तं भर्त्रा वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः)

**सानुमती** — उत्सवप्पिआ क्खु माणुसा। गुरुणा कारणेण होदव्वं।

(उत्सवप्रियाः खलु मानुषाः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्।)

**कञ्चुकी** — बहुलीभूतमेतत्किं न कथ्यते। किंमत्रभवत्योः कर्णपथं नायातं शकुन्तलाप्रत्यादेशकौलीनम्।

**उभे** — सुदं रट्ठिअमुहादो जाव अङ्गलीअअदंसणं।

(श्रुतं राष्ट्रियमुखाद्यावदंगुलीकदर्शनम्।)

**कञ्चुकी** — तेन ह्यल्पं कथयितव्यम् यदैव खलु स्वांगुलीयकदर्शनादनुस्मृतं देवेन सत्यमूढपूर्वा मया तत्रभवती रहसि शकुन्तला मोहात् प्रत्यादिष्टेति। तदाप्रभृत्येव पश्चात्तापमुपगतो देवः। तथा हि –

---

नात्र संदेहो, महाप्रभावः खलु राजर्षिः। आर्य, कति दिवसानि गतान्यस्माकं मित्रावसुना राष्ट्रियेण प्रेषितानां भर्तुः[1508] पादमूलादत्र चरन्तीनाम्। एतच्च नाम[1509] प्रमदवनाय सकलं प्रतिकर्मार्पितम्। तस्मादश्रुतपूर्वोऽस्माभिरेष वृत्तान्तः। क्लीबे दिवसेत्यमरः। राष्ट्रेऽधिकृतो राष्ट्रियः। राज्ञः स्यालस्तु राष्ट्रिय इत्यमरः।[1510] एष एव मित्रावसुः प्रवेशके[1511] स्यालत्वेनोक्त इत्यनुसन्धेयः। प्रतिकर्म प्रसाधनमित्यमरः। न प्रतिपत्तव्यं[1512] न कर्तव्यमिति यावत्।[1513] आर्य,[1514] कौतूहलं नौ भवति। यद्यावाभ्यां श्रोतव्यं कथयत्वार्यः। किं निमित्तं भर्त्रा[1515] वसन्तोत्सवः प्रतिषिद्धः[1516]। "जइ अम्हें हिं"[1517] इति सुपाठ, इमिणाजणेणेति[1518] कुपाठः, णो[1519] हाइ इति पूर्ववाक्यविरोधात्। अत्र कश्चिन्न किंचिदपि व्याकार्षीत्।[1520]

उत्सवप्रियाः खलु मानुषाः। गुरुणा कारणेन भवितव्यम्। बहुळी(ली) भूतं प्रसिद्धम्। तस्मान् मया कथ्यत[1521] इति भावः। शकुन्तलायाः प्रत्यादेशो निरास एव। कौलीनं लोकवाद इत्यमरः। श्रुतं राष्ट्रियमुखाद् यावदंगुळी(ली) यकदर्शनम्। यावत्साकल्य इत्यमरः। राष्ट्रियो मित्रावसुः स्याल ईति यावत्॥ **रम्यं वस्त्विति** शेषः। पुरा यथा, यथापुरम्। विवर्त्तनैः लोलनैः विवर्तनेन गमयतीति[1522] च पाठः। उन्निद्रः उद्गतनिद्रः निद्राहीन इत्यर्थः। अन्तःपुर[1523] सुन्दरीभ्य इति लक्ष्यते।[1524] गोत्रेषु नामग्रहणेषु स्खलितः। प्रकृते[1525] शकुन्तलाया नाम गृह्णन्निति भावः। विलक्षो विस्मयान्वितः॥ प्रियं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्न प्रत्यहं सेव्यते
शय्याप्रान्तविवर्तनैर्विगमत्युन्निद्र एव क्षपाः ।
दाक्षिण्येन ददाति वाचमुचितामन्तःपुरेभ्यो यदा
गोत्रेषु स्खलितस्तदा भवति च व्रीडाविलक्षश्चिरम् ॥ ५ ॥

**सानुमती** – पिअं मे । (प्रियं मे ।)

**कञ्चुकी** – अस्मात् प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः ।

**उभे** – जुज्जइ जुज्जइ । (युज्यते युज्यते ।)

(नेपथ्ये ।)

इदो इदो भवं । (इत इतो भवान् ।)

**कञ्चुकी** – (कर्णं दत्वा ।) अये ! इत एवाभिवर्तते देवः । स्वकर्मानुष्ठीयताम्।

**उभे** – तह । (तथा ।)

(इति निष्क्रान्ते)

(ततः प्रविशति पश्चात्तापसदृशवेषो राजा विदूषकः प्रतीहारी च ।)

**विदूषकः** – इदो इदो भवं । (इत इतो भवान् ।)

**कञ्चुकी** – (राजानमवलोक्य) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् । एवमुत्सुकोऽपि हि प्रियदर्शनो देवः । तथा हि –

**प्रत्यादिष्टविशेषमण्डनविधिर्वामप्रकोष्ठार्पितं**
**बिभ्रत् काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासापरक्ताधरः ।**
**चिन्ताजागरणप्रतान्तनयनस्तेजोगुणादात्मनः**
**संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यत ॥ ६ ॥**

---

मे, प्रियं मे । प्रभवतः संभवतः । प्रत्याख्यानं निरसनम् । युज्यते । अनुष्टी(ष्ठी) यताम्. ध्वनिः । तथा । एतु एतु भवान् । अवस्था दशा । उत्सुको[1526] विरहोत्कंठितः । "सोमवत् प्रियदर्शन" इति कलहप्रियोक्तेः[1527] । विष्णुरूप इति भावः ॥ **विशेषमण्डनं** किरीटादिकम् । कूर्पराधः प्रदेशे स्यात् प्रकोष्ट(ष्ठ) इति त्रिकाण्डशेषः । काञ्चनं कनकमयम् ।" न शोभते हि गौरांगि काञ्चनं भूषणं त्वयीति[1528] धोयीकविः । श्वासैरपगतो रक्तगुणो[1529] यस्मात् तादृगधरो यस्य । गुणे शुक्लादयः[1530] पुंसीत्यमरः । प्रकर्षेण तान्ते क्लान्ते नयने यस्य । तेजः प्रभावे दीप्तौ चेत्यमरः । संस्कारेण उत्तेजनेनोल्लिखित उत्कीर्णः । संस्कार इति ध्वनिः । वज्रो हीरो महामणिरिति केदारः । क्षीणो नालक्ष्यते यथा पूर्व एवालक्ष्यत इत्यर्थः । अपि संभवनायाम् । विरहक्लिष्टोऽपि देवः स्वप्रभावादविकृत एवेति भावः ॥ स्थाने खलु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**सानुमती** — (राजानं दृष्ट्वा) ठाणे खु पच्चादेसविमाणिदा वि इमस्स किदे सउन्दला किलम्मदि। (स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यति।)

**राजा** — (ध्यानमन्दं परिक्रम्य।)

प्रथमं सारङ्गाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमानमपि सुप्तम्।
अनुशयदुःखायेदं हतहृदयं संप्रति विबुद्धम्॥ ७॥

**सानुमती** — णं ईरिसाइ तवस्सिणीभाअहेआइ। (नन्वीदृशानि तपस्विनीभागधेयानि।)

**विदूषकः** — (स्वागतम्।) लङ्घिदो एसो भूवो वि सउन्दलावाहिणा। ए आणे कहं चिकिच्छिदव्वो भविस्सदित्ति। (लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति।)

**कञ्चुकी** — (उपगम्य) जयतु जयतु देवः। महाराज! प्रत्यवेक्षिताः प्रमदवनभूमयः। यथाकाममध्यास्तां विनोदस्थानानि महाराजः।

**राजा** — वेत्रवति। मद्वचनादमात्यमार्यपिशुनं ब्रूहि। चिरप्रबोधान्न सम्भावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम्। यत् प्रत्यवेक्षितं पौरकार्यमार्येण तत् पत्रमारोप्य दीयतामिति।

**प्रतीहारी** — जं दवो आणवेदि। (यद्देव आज्ञापयति।)

(इति निष्क्रान्ता।)

**राजा** — वातायन! त्वमपि नियोगमशून्यं कुरु।

**कञ्चुकी** — यदाज्ञापयति देवः।

(इति निष्क्रान्तः)

---

प्रत्यादेशविमानितापि अस्य कृते शकुन्तला क्लाम्यति। अस्य ईदृशरूपस्येति भावः। प्रत्यादेशो निरासः[1532]॥ हतं नीचं च तद् हृदयं कर्तृ(?) प्रथमं पूर्वं सुप्तम्। सम्प्रत्यनुशयदुःखोऽथ[1533] पश्चात्तापखेदाय विबुद्धं विशेषेण[1534] बुद्धम्। तथा च पुरा विबुद्धं चेदिच्छापूर्तिरधुना न किमपि, प्रत्युत बाधातिशय एवेति भावः। मृगे चकोरे सारङ्ग इत्यमरमाला। हतस्त्वपशदो(ब्दो), नीच इति हैमः॥[1536] नन्वीदृशानि तपस्विनीभागधेयानि। तपस्विन्या दीनायाः शकुन्तलाया भाग्यानीदृशान्येवमाकार-दुष्यन्तसंप्रार्थनीयानीति भावः॥ लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना। न जाने कथंचिद् एष्टव्यो भविष्यतीति। व्याधि विरहरो[1537]गयोरिति वामनः। कथंचित्प्रयासेन। आर्यविषये पिशुनः सूचको राजानमुदिश्य[1538] तत्तत् कार्यनिवेदनकारक इति पर्यवसन्नोऽर्थः[1539]। चिरप्रबोधनाद् विलम्बेन बोधादित्यर्थः। एतेन, "वेत्रवति पर्याकुलोऽस्मि, शयनभूमि मार्गमावेदयेति" पञ्चमाङ्कपूर्त्य- वसरोक्तं[1540] राजवाक्य - संविधानं(न)मूह्यमिति[1541] दिक्। धर्मासनं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** — किदं भवदा णिम्मक्खिअं। संपदं सिसिरे दिणिसत्तअण्णरमणिज्जे इमस्सिं पमदवण्णुद्देसे सुहं अत्ताणं रमइस्ससि।

(कृतं भवता निर्मक्षिकम् । साम्प्रतं शिशिरे तापच्छेदिनि सप्तपर्णरमणीयेऽस्मिन् प्रमदवनोद्देशसुखमात्मानं रमयिष्यसि ।

**राजा** — वयस्य । रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्था इति यदुच्यते तदव्यभिचारि वचः । कुतः ।

मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना
मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता
धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ ८ ॥

**विदूषकः** — चिट्ठ दाव। इमिणा दण्डकटेठेण कन्दप्पविआधं णासइस्सं।) (तिष्ठ तावत्। अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधं नाशयिष्यामि ।)

(इति दण्डमुद्यम्य चूतांकुरं पातयितुमिच्छति ।)

**राजा** — (सस्मितम्) भवतु। दृष्टं ब्रह्मवर्चसम्। सखे। क्वोपविष्टः प्रियायाः किंचिदनुकारिणीषु लतासु दृष्टिं विलोभयामि ।

**विदूषकः** — णं आसण्णपरिआरिआ चदुरिआ भवदा संदिट्ठा । महावीमण्डवे इमं वेलं अदिवाहिस्सं। तहिं मे चित्तकलए सहत्थलिहिदं तत्तहोदीए सउन्दलाए पडिकिदिं आणेहि त्ति। (नन्वासन्न परिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टा। माधवीमण्डपे इमां वेलामतिवाहयिष्यामि। तत्र मे चित्रफलके स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिमानयेति ।)

---

न्यायविचारस्थानम्[1542] । यद्देव आज्ञापयति । वातायन इति कञ्चुकिनो[1543] नाम । कृतं भवता निर्मक्षिकम्। आवाभ्यां विना जनराहित्यं कृतमिति भावः। साम्प्रतं शिशिरे(रा) तपच्छेदरमणीयेऽस्मिन् प्रमदवनोद्देशे सुखमात्मनं रमयिष्यसि।

रन्ध्रं छिद्रे सति उप समीपे निपातिन आपतिनो रन्ध्रोपनिपातिनः। अव्यभिचारि सत्यम्।।रोधिना घातिना। तमसाऽज्ञानेन। शापजो मोहो[1545] गतो, मन्मथशरस्य लक्ष्यमस्मीति भावः। आद्यश्चकारो व्यर्थ इति केचित्॥ तिष्ठ[1546] तावदमुना[1547] दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयामि। अनुकारिणीषु सदृशीषु विलोभयामि विनोदयामि। नन्वासन्नपरिचारिका चतुरिका भवता संदिष्टामाधवीमण्डपे इमां वेलाम् अतिवाहयिष्यामि। तस्मिन्मे[1548] चित्रफलके स्वहस्तलिखितां तत्रभवत्याः शकुन्तलायाः प्रतिकृतिम् आनयेति। प्रतिमायां प्रतिकृतिरिति त्रिकाण्डी। इत इतो भवान्। एष मणिशिलापट्टनाथो माधवीमण्डप उपचाररमणीयतया[1549] निःसंशयं स्वागतेनैव[1550]नौ प्रतीक्षते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** — ईदृशं हृदयविनोदस्थानम् । तमेव मार्गमादेशय ।

**विदूषकः** — इदो इदो भवं । (इत इतो भवान् ।)

(उभौ परिक्रामतः । सानुमत्यनुगच्छति ।)

**विदूषकः** — एसो मणिसलापट्टअसणाहो माहवीमण्डवो उवहाररमणिज्जदाए णिस्संसअं साअदेण विअ णो पडिच्छदि । ता पविसिअ णिसीददु भवं (एष मणिशिलापट्टकसनाथो माधवीमण्डप उपहाररमणीयतया निस्संशयं स्वागतेनेव नौ प्रतीच्छति। तत् प्रविश्य निषीदतु भवान् ।)

(उभौ प्रवेशं रूपयित्वोपविष्टौ)

**सानुमती** — लदासिंणिहिदा दक्खिस्सं दाव सहीए पडिकिदि । तदो से भट्टिणो बहुमुहं अणुराअं णिवेदइस्सं । (इति तथा कृत्वा स्थिता ।)

(लतासंनिहिता द्रक्ष्यामि तावत् सख्याः प्रतिकृतिम् । ततोऽस्या भर्तुर्बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि ।)

**राजा** – सखे ! सर्वमिदानीं स्मरामि शकुन्तलायाः प्रथमवृत्तान्तम् । कथितवानस्मि भवते । स भवान् प्रत्यादेशवेलायां मत्समीपगतो नासीत् । पूर्वमपि न त्वया कदाचित् सङ्कीर्तितं तत्रभवत्या नाम । कच्चिदहमिव विस्मृतवानसि त्वम् ? ।

**विदूषकः** — णविसुमरामि । किं तु सव्वं कहिअ अवसाणे उणं तुए परिहासाविअप्पओ एसो ण भूदत्थो त्ति आचक्खिदं । मए वि मिप्पिण्ड बुद्धिणा तह एव्व गहीदं । अहवा भविदव्वदा बलवदी । (न विस्मरामि । किं तु सर्वं कथयित्वावसाने पुनस्त्वया परिहास विजल्प एष न भूतार्थ इत्याख्यातम् । मयापि मृत्पिण्डबुद्धिना तथैव गृहीतम् । अथवा भवितव्यता बलवती ।)

**सानुमती** — एव्वं एदं । (एवमेतत् ।)

---

तस्मात् प्रविश्य निषीदतु भवान् । पट्टस्तूलपूरित[1551] आसन इति त्रिकाण्डशेषः ।[1552] गादी इति महाराष्ट्राः ।

लतासन्निहितां[1553] द्रक्ष्यामि तावत्सख्याः प्रतिकृतिम् । ततोऽस्यै[1554] भर्तुर् बहुमुखमनुरागं निवेदयिष्यामि । वृत्तान्त[:][1555] ध्वनिश्च । संकथा – सुकथा - प्रस्तावेष्टि(ष्वि)[1556] त्यर्थः । वास्त्वमिति[1557] शास्त्रीयोऽपि सन्धिः "प्रावृड्वासरजगज्जगदि"त्यादिवच्छ्रुतिकटुरपि दयनीयः । न विस्मरामि, किन्तु सर्वं कथयित्वाऽवसाने त्वया परिहासविजल्प एष[1558] न भूतार्थ इत्याख्यातम् । मयाऽपि मृत्पिण्डबुद्धिना[1559] तथैव गृहीतम् । अथवा भवितव्यता बलवती । भूतार्थः परमार्थः । यथार्थ इति यावत्[1560] । भूतं तु परमेऽतीते[1561] प्रासे निष्कर्षसत्ययोरिति धरणिः ।[1562] तथा च परिहासेऽपिजल्पितं सखे परमार्थेन न

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



गृह्यतां क्व इति पुरा त्वयैव[1563] कथितमिति भावः । इदं द्वितीयाङ्क पूर्त्यंचले[1564] (पूर्त्यवसरे - ?

**राजा** – (ध्यात्वा) सखि ! परित्रायस्व माम् ।

**विदूषकः** – भो किं एदं । अणुव्वण्णं ईरिसं तुइ । कदा वि सुप्पुरिसा सोअपत्तक्काणो ण होंति । णं पवादे वि णिक्कंपा गिरीओ ।)

(भोः किमेतत् । अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । कदापि सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मानो न भवन्ति। ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः ।

**राजा** – वयस्य ! निराकरणविक्लवायाः प्रियायाः समवस्थामनुस्मृत्य बलवदशरणोऽस्मि । सा हि -

इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता ।<br>
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे<br>
पुनर्दृष्टिं बाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती ॥ ९ ॥<br>
मयि क्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्

**सानुमती** – अम्महे ईरिसी सकज्जपरदा णाम । इमस्ससन्दावेण अहं रमामि । (अहो ईदृशी स्वकार्यपरता । अस्य सन्तापेनाहं रमे ।)

**विदूषक** – भोः अत्थि मे तक्को केण वि तत्तहोदो आआसजारिणा णीदेत्ति । (भोः अस्ति मे तर्कः । केनापि तत्रभवत्याकाशचारिणा नीतेति ।)

**राजा** – कः पतिदेवतामन्यः परामर्ष्टुमुत्सहते । मेनका किल सख्यास्ते जन्मप्रतिष्ठेति श्रुतवानस्मि । तत्सहचारिणीभिस्तां हृतां मे हृदयमाशङ्कते ।

**सानुमती** – संमोहो खु विम्हअणिज्जो ण पडिबोहो ।

---

द्रष्टव्यम् । मृत्पिण्डस्येव बुद्धिर्यस्य, बुद्धेरत्यन्ताभाव इति भावः ॥ एवमेतत् । भोः किमेतद् अनुपपन्नं खल्वीदृशं त्वयि । अधैर्यमिति शेषः । कदापि सत्पुरुषाः शोकग्रस्तात्मानो न भवन्ति ।[1565] ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पा गिरयः । अधैर्येप्यप्रकम्प्येन[1566] त्वया भवितव्यमिति भावः ॥

इतः अस्माज्जनात्[1567] मदित्यर्थः । स्वजनं गौतम्यादिम् । तिष्ठेति – "तिष्ठ साधयामो वयमिति" पञ्चमाङ्क पूर्ता[1568]वाश्रमं प्रतिगमनप्रस्तावे कुपितेन शार्ङ्गरवेणोक्तमिति द्रष्टव्यम् । गुरुसमे बृहस्पतिसदृशे । गुरोः शकुन्तलापितुः काश्यपस्य शिष्ये शार्ङ्गरवे । अर्पितवतीति–यत् तच्चरितमिति शेषः । शल्यम् अयोमयं बाणाग्रं कर्तृ- । विषाक्ते दिग्धलिप्तकावित्यमरः । अत एव दहतीत्युक्तम् । ध्वनिश्च । अम्हो ईदृशी स्वकार्यपरता । अस्य संतापेनाहं रमे । मम[1569] शकुन्तलायां[1570] वात्सल्यादिति[1571] भावः । प्राकृते[1572] रमामीति साधुः, आत्मनेपदव्यवस्थाविरहात् ।[1573] अस्ति मे तर्कः । केनापि तत्रभवत्याकाशचारिणाऽपनीतेति । सख्याः प्रकृते शकुन्तलाया इत्यर्थः । जन्मप्रतिष्ठा उत्पत्ति भूमिर्मातेति यावत् । प्रतिष्ठा भूमियशसोरिति यादवः । तदिति तस्या मेनकायाः[1575] सहचारिणीभिः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(संमोहः खलु विस्मयनीयो न प्रतिबोधः)

**विदूषकः –** जइ एव्वं अत्थि समाअमो कालेण तत्तहोवीए।

(यद्येवमस्ति समागमः कालेन तत्रभवत्या।)

**राजा –** कथमिव ?

**विदूषकः –** ण खु मादापिदरौ भत्तुविओअदुक्खिअं दुहिदरं देक्खिदुं पारेंति।

(न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं द्रष्टुं पारयतः।)

**राजा –** वयस्य।

**स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु**
**क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम्।**
**असंनिवृत्त्यै तदतीतमेव**
**मनोरथानामतटाः प्रपाताः ॥ १० ॥**

---

सानुमत्यादिभिरित्यूह्यम्। संमोहः खलु विस्मयनीयो, न प्रबोधः। तथा च जनाः प्रबोधे विविध मूहंते न स विस्मयः।[1576] दुष्यन्तस्तु "तत्सहचारिणीभिरिति संमोहे विरहभ्रमेऽप्यूहते[1577]। तस्मादस्य संमोहो विस्मयनीयः[1578]। खल्विति भावः। संमोहः प्रणयासक्त्या(यो)र्विरह-भ्रम[1579]मूर्च्छयोरित्यगस्त्यः[1580] ॥ यद्येवम् अस्ति, समागमः कालेन भवतस्तत्रभवत्योः[1581]। कालेनेति कतिपयदिवसैरित्यर्थः। ध्वनिश्च। न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदु(दुः)खितां[1582] दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः ॥ भातृपितराविति वक्तव्यं, मातापितराविति प्रमाद इत्यजागळ(ल) स्तनायितव्युत्पत्तियुक्तिः कश्चन व्याचकार, तत्र। "मातापितरौ पितरौ मातरपितराविव्यमरसिंहेनाभिधानात्। भर्तृवियोगेति, पारयत[1583] इति च ध्वनी। चिरं दीर्घकालम्। न खलु पारयत[1584] इति पूर्वेणान्वयः।

अथ विदूषकं प्रत्युत्तरयन्नेव राजा विरहबाधेन विवधमर्थमुट्टंकयति – **स्वप्न इति**। नु वितर्के[1586]। शकुन्तला निमिषमनुभूतेति भावः। तथा च – "क्षणं तावत्स्वप्ने तटि(डि) दिव[1587] मृगाक्षी परिचितेति" नळ(ल) चरिते[1588] नीलकण्ठः। माया न्विन्द्रजालं, "किं मायेन्द्रजाल शांबर्य[1589] (?) इति रत्नमाला। मतेर्भ्रमो नु, भ्रान्तिः[1590] किम्। शुक्तौ रजतत्वारोपवदिति भावः। क्लिष्टं क्लेशसिद्धम्। तावत्फलं मित्येकपदम्। कारणीभूत(तं)पुण्यं यावद्वर्तते तावत्कार्यभूतं फलं यस्य तत्, तावत्फलं पुण्यमेव नु किमित्यर्थः। पुण्यस्य फलं शकुन्तलालाभ इति भावः। ननु तादृशे[1591] पुण्ये सति कथं सा निरस्तेत्यत आह – असदिति। असत इतः परं मां प्रत्यसंभवतः शकुन्तलालाभ–रूपफलस्य[1592] निवृत्यायप्रासयै तत् कारणीभूत(तं) पुण्यम् अतीतम्[1593] अतिक्रान्तं गतमेवेति यावत्। कारणाभावात् कार्याभाव इति भावः। नन्वित्थं[1594] जानतोऽपि[1595] कुतः पुनरभिलाष[1596] इत्याशङ्क्याह – मनोरथानामिति। अतटाः तटरहिताः अपारा इत्यर्थः। अत एव "नालमेकस्य पर्याप्तमिति (?) प्राञ्चः। निवृत्तिः स्यादप्रवृत्तावप्राप्तौ च नि]]वर्तन[1598] इत्यमरशेषः। अत्र "नु" त्रयं[1599] पुनरुक्तम्। पद्यमिदं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** – मा एव्वं; णं अङ्गुलीअअं एव्व णिदंसणं अवस्सं भाविणो अत्थस्सं अचिन्तणिज्जो समाअमो होदि ति । (मैवं । नन्वङ्गुलीयकमेव निदर्शनमवश्यंभाविनोऽर्थस्य । अचिन्तनीयः समागमो भवतीति ।)

**राजा** – (अंगुलीयकं विलोक्य ।) अये ! इदं तावदसुलभस्थानभ्रंशि शोचनीयम् ।

**तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन ।**
**अरुणनखमनोहरासु तस्याश्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु ॥ ११ ॥**

**सानुमती** – जइ अण्णहत्थगदं भवे सच्चं एव्व सोअणिज्जं भवे । (यद्यन्यहस्तगतं भवेत् सत्यमेव शोचनीयं भवेत् ।)

**विदूषकः** – भो इअं णाममुद्दा केण उग्घादेण तत्तहोदीए हत्थसंसग्गं पाविदा ? (भोः, इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं प्रापिता ?)

**सानुमती** – मम वि कोदूहलेण आकारिदो एसो (ममापि कौतूहलेनाकारित एषः ।)

**राजा** – श्रूयताम् । तदा स्वनगराय प्रस्थितं मां प्रिया सबाष्पमाह कियच्चिरेणार्यपुत्रः प्रतिपत्तिं दास्यतीति ।

**विदूषकः** – तदो तदो (ततस्ततः ।)

**राजा** – पश्चादिमां मुद्रां तदङ्गुलौ निवेशयता मया प्रत्यभिहिता –

---

सदधनं (?)[1600] व्याकुर्वतः केऽपि राजवत्प्रविष्टानां यतीनां गमनमनुकुर्वन्तीत्यलमतिविस्तरेण । मैवं, [[नन्वङ्गुळी(ली)) यकमेव]][1601]निदर्शनम् । अभाविनि[1602] । तस्या लाभे पुनर्नैव[1603] लभ्येतां गुळी(ली) यकमिति भावः । अवश्यंभाविनोऽर्थस्याचिन्तनीयः समागमो भवतीति निदर्शनमिति[1604] पूर्वेणान्वयः । असुलभम् अनिर्वाच्यपुण्यैरप्यप्राप्यं स्थानं[1605], स्थलं शकुन्तलेति यावत् ॥ हे अङ्गुळी( ली ) य[1607], ममेव[1608] तव सुचरितं सुकृतं, फलेन कार्यसिध्या, "प्रतनु" अत्यल्पं विभाव्यते । यत् यस्मात् तस्या अङ्गुळी(ली)षु लब्धपदं प्राप्तस्थानं[1609] सत् । च्युतम[1610]सीत्यर्थः । च्युतत्वाद्धेतोरावयोः पुण्यम् अतिनिकृष्टमिति भावः । "श्रेयः[1611] सुचरितं[1612] पुण्यसुकृते[1613]" इति हलायुधः । ऊर्मिका त्वङ्गुळी(ली) यं स्यादङ्गुळी(ली) यकमित्यपीति रुद्रः । पद्येऽस्मिन्बहवो भ्रमन्ति ॥ यद्यन्यहस्तगतं भवेत् सत्यमेव शोचनीयं भवेत् । तता च पूर्वमिव त्वमङ्गुळी(ली) यकसनाथ एव, तां लप्स्यस[1614] इति भावः । भो इयं नाम मुद्रा केनोद्धातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं[1615] प्रापिता । उद्‌घातस्तु प्रसङ्गे स्यादिति मेदिनी । संसर्गं सम्बन्धम्[1616] ।

ममापि कौतूहलेनाकारित एष प्रश्नः । "आआरिदा[1617] एसा पण्हा' इति पाठे आकारितैषा प्रश्नेत्यर्थः । पृष्टाक्षि प्रश्नाः स्त्रियां वेति[1618] विकल्पात् स्त्रीत्वं बोध्यम् ।[1619] प्रश्न एषो ममाप्यभिमतः इति भावः । आह स्म उवाच, अहेति पाठे स्मेत्यध्याहारः । कियच्चिरेणेत्येकपदं कियता दीर्घकालेनेत्यर्थः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं
नामाक्षरं गणय गच्छसि यावदन्तम् ।
तावत् प्रिये मदवरोधगृहप्रवेशं
नेता जनस्तव समीपमुपैष्यतीति ॥ १२ ॥

तच्च दारुणेन मया मोहान्नानुष्ठितम् ।

**सानुमती** – रमणिओ खु अवही विहिणा विसंवादिदो । (रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः ।)

**विदूषकः** – कहं धीवलकप्पिअस्स लोहिअमच्छस्स उदलब्भंतले आसी ? (कथं धीवरकल्पितस्य रोहिततमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत् ?)

**राजा** – शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद्गङ्गास्रोतसि परिभ्रष्टम् ।

**विदूषकः** – जुज्जइ । (युज्यते ।)

**सानुमती** – अदो एव्व तवस्सिणीए सउन्दलाए अदम्भभीरुणो इमस्स राएसिणो परिणए एव्व सन्देहो आसि । कुदो ईरिसो अणुराओ अहिण्णाणं अवेखख्दि । कहं विअ एदं ? :

(अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणय एव सन्देह आसीत्। कुत ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् ।)

**राजा** – उपालप्स्ये तावदिदमङ्गुलीयकम् ।

**विदूषकः** – (आत्मगतम् ।) गदीदो णेण पंथा उन्मत्ताणं ।

(गृहीतोऽनेन पन्था उन्मत्तानाम् ।)

**राजा** – कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं
करं विहायासि निमग्नमम्भसि ।

---

"के० चिरेणेत्यप्रमादः पाठः । प्रतिपत्तिः समागम इति सारस्वतः । भेटि इति महाराष्ट्राः । ततस्ततः ॥ अन्तं पूर्तिं ध्वनिश्च । यावत्तावच्च[1620] साकल्येऽवधावित्यमरः । प्रवेशं प्रतीति शेषः । नेता नयनकर्ता । तन् नयनम् । नीङ् प्रापणे[1621] ॥ चकारोऽलंकारे । मोहाद् अज्ञानात् । रमणीयः खल्ववधिर्विधिना संवादितः । अवधिः[1622] कालमर्यादा, ध्वनिश्च । संवादितः[1623] संवादं प्रापितः । स्त्रीपुरुषयोर्वृथा वाग्वादो जनीत इति काकुः ।[1624] अथ कथं धीवरखण्डितस्य रोहितमच्छ (त्स्य) स्य[1625] उदराभ्यन्तर आसीत् । मुद्रेति शेषः । युज्यते । कुतस्तपस्विन्यां शकुन्तलायामधर्मभीरोर् अस्य राजर्षेः परिणयसंदेहः । अथ[वा]कुत ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानम् अपेक्षते । कथमिवैतत् ॥ गृहीतोऽनेन पन्था[1627] उन्मत्तानाम् ॥ अचेतनं बुद्धिरहितम् इदम् अङ्गुळी(ली) यकमित्यर्थः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



अथवा –

अचेतनं नाम गुणं न लक्षये -

न्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया ॥ १३ ॥

**विदूषकः** – (आत्मगतम् ।) आम ! कहं बुभुक्खाए खादिदव्वो म्हि । (अहो, कथं बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि ।)

**राजा** – अकारणपरित्यागानुशयतप्तहृदयस्तावदनुकम्प्यतामयं जनः पुनर्दर्शनेन । (प्रविश्य चतुरिका पटाक्षेपेण चित्रफलकहस्ता ।)

**चतुरिका** – इअं चित्तगता भट्टिणी । (इयं चित्रगता भट्टिनी ।)

(इति चित्रफलकं दर्शयति ।)

**विदूषकः** – साहु वअस्स साहु । महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाणुप्पवेसो । खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु । (साधु वयस्य साधु । मधुरावस्थानदर्शनीयो भावानुप्रवेशः । स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु ।)

**सानुमती** – अम्हो राएसिणो वट्टिआणिउणदा । जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति । (अहो एषा राजर्षेर्वर्तिकानिपुणता । जाने सख्यग्रतो मे वर्तत इति ।)

**राजा** – यद्यत् साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत्तदन्यथा ।

तथापि तस्या लावण्यं लेखया किंचिदन्वितम् ॥ १४ ॥

**सानुमती** – सरिसं एदं पच्छादावगुरुणो सिणेहस्स अणवलेवस्स अ । (सदृशमेतत् पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च ।)

---

नाम प्रसिद्धौ । मयैव बुद्धिसागरेणेति भावः ॥ अहं खलु बुभुक्षया खादितव्योऽस्मि । खादनं भक्षणयोग्यमन्नादिकं प्रापितव्योऽस्मीत्यर्थः । इयं चित्रगता भट्टिनी । इतरासु तु[1828] भट्टिनीत्यमरः । अत्र "चउरिआ[1629] भवदा संदि.ठा[1630]" इति पूर्वं विदूषकोक्तं वाक्यानुवादसंविधानमूह्यम् । साधु वयस्य साधु । मधुरावस्थानदर्शनीयो[1631] भावानु[1633]प्रवेशः । स्खलतीव मे दृष्टिर्निम्नोन्नतप्रदेशेषु । मधुरं मनोज्ञं च तद् अवस्थानम् आकृतिविन्यासविशेषः । "ठेवी" इति महाराष्ट्राः । द्वेऽवस्थानसंस्थाने[1633] आकृतिन्यासभेदक इति रभसः । भावानाम् अनुप्रवेशोऽन्तर्भावः ।[1635] प्रान्तजीवरेखासु भावा" इति शब्दमाला । निम्नोन्नतप्रदेशेषु शिरोललाटनेत्रघ्राणाधरचुबुक[1636] – कण्ठस्तनवलीनाभ्यादिविभागेषु । अहो एषा राजर्षे र्वर्त्तिकानिपुणता, जाने सखी मेऽग्रतो वर्त्तत इति । वर्त्तिकया[1637] लेखनसाधनी-भूततूलिकया करणेन । निपुणता चित्रनिर्माण[1638]रूपा चातुरीत्यर्थः

अथ निरुपम[1639] व्यक्ति[1640] तां लिखितुं[1641] चतुराननोऽपि नालम्, अहं किया[1642]नित्याह यदिति । यद्यत्[1543] स्त्रीपुरुषादिवस्तुस्वाकृताविति शेषः । साधु सुन्दरं, न स्यात् । तत्तत् सर्वं वस्तु चित्र आलेख्येऽन्यथा क्रियते [ऽ ?]सुन्दरं लिख्यत इति यावत् । तथाप्येवं[1644] सत्यपि चित्र इत्यनुषङ्गः । किंचित् स्वल्पं, न तु यावदित्याशयः । तस्या लावण्यं सौन्दर्यं, तदपि रेखया[1645]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** – भो दाणिं तिण्णि तत्तहोदीओ दीसन्ति । सव्वा दंसणीआओ । कदमा एत्थ तत्तदोही सउन्दला । (भोः इदानीं तिस्रस्तत्रभवन्त्यो दृश्यन्ते । सर्वा दर्शनीयाः । कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला ?)

**सानुमती** – अणभिण्णो क्खु सही रूवस्य मोहदिट्ठी अअं जणो । (अनभिज्ञः खलु सखीरूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः ।)

**राजा** – त्वं तावत् कतमां तर्कयसि ?

**विदूषकः** – तक्केमि जा एसा सिढिलकेसबन्धणुव्वंतकुसुमेण केसन्तेण उब्भिण्णसेअबिन्दुणा वअणेण विसेसदो ओसरिआहिं बाहाहिं अवसेअसिणिद्ध तुरुणपल्लवस्य चूअपाअवस्स पासे ईसिपरिस्मिता विअ आलिहदा एसा तत्तहोदी सउन्दला । इदराओ सहीओ त्ति । (तर्कयामि यैषा शिथिलकेशबन्धनोद्वान्त कुसुमेन केशान्तेनोद्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहुभ्यामवसेकस्निग्धतरुणपल्लवये चूतपादपस्प पार्श्वे ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता एषा तत्रभवती शकुन्तला इतरे सख्याविति ।)

**राजा** – निपुणो भवान् । कुतः ? अस्त्यत्र मे भावचिह्नम् ।

> **स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः ।**
> **अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्णिकोच्छ्वसात् ॥ १५ ॥**

---

एकदेशेनान्वितं युक्तमित्यर्थः । तथा च, न खलु जडेन मयेयं सम्यगलेखीति (?) भावः । किंचित् किमपि च स्वल्पमिति रेखाश्रेण्येकदेशयोरिति च ध्वनि मञ्जरीशब्दार्णवौ । पद्यमिदं व्याकुर्वता केनचिदुपक्रमोपसंहारयोरुत्तरकुमारायितमिति दिक् । सदृशमेतत् पश्चात्तापगुरोः स्नेहस्यानवलेपस्य च । "एतद्" एवं कथनमित्यर्थः । स्नेहानवलेपयोः[1640] सदृशं युक्तमिति बोध्यम् । अन्तःपुरबह(हु)ळो(लो)ऽप्येष[1647] आरण्यककन्यायामनुरक्त इत्यनवलेपो व्यज्यते । भो इदानीं तिस्रस्तत्र[1648]भवत्यो दृश्यन्ते । सर्वां दर्शनीयाः । कतमात्र तत्रभवती शकुन्तला[1649] । "ति०णी" – त्यत्र कश्चिद् अजानन्[1650] "तिविहा" इति स्वकल्पितं कुपाठमाश्रित्य "त्रिविधा" इति व्याचकार, तदभिज्ञपरिहास्यम् । ति०णीति देशीयः शब्दः । "तीनि" इति महाराष्ट्राः । अनभिज्ञः खलु सखीरूपस्य मोहदृष्टिरयं जनः । मोहे चाटूक्तौ[1651] दृष्टिर्ज्ञानं यस्य । "लेहः[1652] प्रणयचाटूक्ति[1653] – कश्मल – भ्रान्त्यबुद्धिष्विति" केदारः । दृष्टिर्ज्ञानं इत्यमरः । अयं जनो विदूषक[1654] इत्यर्थः । तर्कयामि[1655] यैषा शिथिल[1656]–बन्धोद्वान्त[1657]कुसुमेन केशान्तेनो–द्भिन्नस्वेदबिन्दुना वदनेन विशेषतोऽपसृताभ्यां बाहाभ्याम् अवसेकस्निग्धतरुणपल्लवस्य चूतपादपस्य[1658] पार्श्व ईषत्परिश्रान्तेवालिखिता सा तत्रभवती शकुन्तला । उद्भिन्ना उदिताः, अपसृताभ्यां निवृत्ताभ्यां बाहाभ्यां चोपलक्षितेत्यर्थः । इत्थंभूते तृतीयेति मल्लिनाथोक्तेः । अवसेकेन सेचनेन [1659]स्निग्धा [1660]मसृणा इत्यर्थः । इतरे सख्याविति ।

भावोऽभिप्रायश्चेष्टा वा । भावोऽभिप्रायचेष्टयोरिति[1662] केशवः । तदेव विवृणोति कुत इति । कुतः कस्मात्[1663] ॥ रेखाप्रान्तेषु सात्त्विकगुणेन खिन्नत्वाद[1664]ङ्गुळी(ली)नां विनिवेशो विन्यासे मलिन इत्यनुभवसिद्धम् । चिह्नान्तरमाह – वर्तिकेति[1665] । वर्तिकाया मत्करस्थिततूलिकायाः[1666] सकाशाद् उच्छ्वासः किंचिन्निर्गमः, तस्माद्धेतोः । वर्तिका तूलिका समे इति । द्रवद्रव्यस्य रुद्धस्योच्छ्वसः किंचिद् विनिर्गम इत्यमरागस्त्यौ । प्रतिकृतेरिति शेषः । तस्याः कपोले गल्ले पतितम् । इदं दृश्यमानम् । अश्रु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



चतुरिके ! अर्धलिखितमेतद्विनोदस्थानम् । गच्छ । वर्णिकास्तावदानय ।

**चतुरिका** – अज्ज मांडव्य, ओलम्ब चित्तफलअं जाव आअच्छम्मि । (आर्य माण्डव्य । अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि ।)

**राजा** – अहमेवैतदवलम्बे । (यथोक्तं करोति ।)

(निष्क्रान्ता चेटी ।)

**राजा** – (निश्वस्य ।)

साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पितामहमिमां बहुमन्यमानः ।
स्रोतोवहः पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम् ॥ १६ ॥

**विदूषकः** – (आत्मगतम्) एसो अत्तभवं णदिं अतिक्कमिअ । मिअतिण्हिआए संकन्तो (प्रकाशम्) भो अवरं किं एत्थ लिहिदव्वम् ? (एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य मृगतृष्णिकायां संक्रान्तः । भोः, अपरं किमत्र लिखितव्यम् ।)

**सानुमती** – जो जो पदेसो सहीए मे अहिरूइदो तं तं आलिहिदुकामो भवे । (यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरुचितस्तं तमालिखितुकामो भवेत् ।)

---

च रङ्गबिन्दुः । ठिबका[1667] इति महाराष्ट्राः । अश्रुरङ्गबिन्दौ दृगम्बुनीत्यगस्त्यः । दैवात् कपोले पतनवर्णनमहिम्ना प्रकरणवशान्नीलरङ्गो लक्ष्यते । अत एव दृष्टिदोषपरिहाराय[1668] कपोले नीलबिन्दुम् आन्ध्रद्रविडा निक्षिपन्ति । लक्ष्यं लक्षितुं योग्यं वर्तत इति शेषः । तथा च ईदृगेषैव शकुन्तला, इतरे सख्यौ, निपुणो भवानत एवं[1669] तर्कयतीति भावः । बाष्पं विकिरतीत्यग्र एव कविना वक्ष्यमाणं[1670] सन्दर्भविज्ञायात्र कपोलपतितमश्रुनेत्रजलमिति[1671] व्याकुर्वन् कश्चिदन्योऽहं तासीदन्तत (?) इति न्यायभंगी [[मङ्गी]][1672]चकारेति दिक् ॥ आर्य[1673] माण्डव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकं यावदागच्छामि ।[1674] "जाव" इत्यत्र "जा" इति पाठे "यावदादिषु वस्येति[1675] वलोपः । अहमित्यनेन प्रतिकृतावप्यतिप्रेमाभिमानो व्यज्यते ।साक्षात्प्रत्यक्षम्॥ एषोऽत्रभवान्नदीमतिक्रम्य सत्यं मृगतृष्णिकायां संक्रान्तः । भो वयस्य, अपरं किमत्र लेखितव्यम् । अपरमिति ध्वनिः । असंशयं यो यः[1676] प्रदेशोऽभिरुचितस्तं तमालिखितुकामो भवेत् ।।तां मालिनीम्। गौरीगुरोर्हिमवतः पादाः पर्यन्तपर्वताः । मृगस्य शृङ्गे विषाण इति सप्तमी । वामनयनं स्वकीयरम्यनेत्रं, कण्डूयमानां मृगीम् ।[1677] परस्परहितासक्तेः शृङ्गचलने[1678] भयशङ्का[1679] नास्तीति भावः । शृङ्गे शिखरे । वल्कलस्येति – ऋषिभ्यो वल्कलजनकस्येत्यर्थः । तादृशयस्य तरोर् अधो मूलभागे ।[1680] अनेन मृगस्य मर्मरात्मकवल्कल[1681] चर्वणप्रसक्तिसंभावना लक्ष्यते । अत एव "वल्कल[1682] चर्वकमृगं संप्राप[1683] रामाश्रममिति" दण्डी । वामेति – तत्र सर्वेऽपि प्राणिनोऽर्धनारीश्वरस्वरूपा[1684] इति व्यज्यते[1685] । वामभागस्य देव्यधिष्ठानतया

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा — श्रूयताम् ।

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्त्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥ १७ ॥

विदूषकः — (आत्मगतम्) जह अहं दक्खामि पूरिदव्वं णेणचित्तफलअं अम्बकुच्चाणं कदम्बेहिं । (यथाहं पश्यामि पूरयितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकुर्चानां कदम्बैः ।)

राजा — वयस्य । अन्यच्च शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्र विस्मृतमस्माभिः ।

विदूषकः — किं विअ । (किमिव ।)

सानुमती — वणवासरस सोउमारस्स अ जं सरिसं भविस्सदि । (वनवासस्य सौकुमार्यस्य च यत् सदृशं भविष्यति ।)

राजा — कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम् ।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे ॥ १८ ॥

---

"नरा नृषु स्त्रियः, स्त्रीषु साभिमान" इति कामन्दकोक्तेः । वामनयनं दक्षिणेतरलोचनं कण्डूयमानां[1686] मृगीमित्युक्तम् । नयनविषये मिथः साम्येन[1687] स्वसख्याः शकुन्तलायाः प्रीतय[1688] इति वा बोध्यम् । अत एव प्रकृते मृगीनिर्माणं[1689] सुसंगतमित्यन्यव्याख्यातृजनविषयपरिहासचणरसिक[1690]–विशेषज्ञदयनीयोऽयं पन्थाः ॥ नूनमनेन पूरितव्यं चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां सार्थेन । सार्थः संघः । कूर्चो स्त्रीकुशदण्डे । भ्रूमध्ये[1691] चुबुककैशिक इत्यगस्त्यः । दाढी इति महाराष्ट्राः । अभिप्रेतं ध्वनिः । अभिप्रायं प्रतिगमितमित्यर्थः । इदानीमिति शेषः । किमिव ॥ वनवासस्य स सौकुमार्यस्य च यत् सदृशं भविष्यति ॥

यथाक्रममर्धाभ्यां द्वयं वर्णयति – कृतमिति । [[कर्णेऽर्पितं दत्तबन्धनं[1692] संबन्धो यस्य तत् बन्धनमित्यत्र मण्डनमिति पाठे]][1693]कर्णार्पितं[1694] च तन्मण्डनमिति[1695] बोध्यम् । आगण्डं ध्वनिः, गल्लपर्यन्तमित्यर्थः । शिरीषं[1696] शिरीषपुष्पम् । स्तनान्तरे कुचयोर्मध्ये । वने वासात्र रत्नादिकं भूषणम्, किन्तु शिरीषमेवेति भावः । मृणालसूत्रपदसारस्येन सौकुमार्यपूर्वकं स्तनयोः परस्परलग्नत्वं[1697] व्यज्यते । भो किंनु खलु तत्रभवती रक्तकुवलयदळ(ल) शोभिनाग्रहस्तेन मुखमावृत्य चकितचकितेव[1698] स्थिता । रक्तकुवलयं कोकनदमित्यर्थः । रक्तपदं विहाय कुवलयमित्यस्येन्दीवरमर्थ[1699] इति कोऽपि बभ्राम, तत्र । "स्यादुत्पलं कुवलयमिति", रक्तोत्पलं कोकनदमिति" चामरसिंहेनाभिधानात् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** — भो किं णु तत्तदोही रत्तकबलअसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं आवारिअ चइदचइदा विअ ट्ठिआ। (सावधानं निरूप्य।) आ एसो दासीए उत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्रहोदीए वअणं अहिलङ्घेदि महुअरो। (भोः किं नु तत्रभवती रक्तकुवलयशोभिनाग्रहस्तेन मुखमावार्य चकितचकितेव स्थिता। आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनमभिलङ्घते मधुकरः।

**राजा** — ननु वार्यतामेष धृष्टः।

**विदूषकः** — भवं एव्व अविणीदाणं सासिदा इमस्स वारणे पहविस्सदि। (भवानेवाविनीतानां शासिताऽस्य वारणे प्रभविष्यति।)

**राजा** — युज्यते। आयि भोः कुसुमलताप्रियातिथे! किमत्र परिपतनखेदमनुभवसि।

**एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।**
**प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु विना त्वया पिबति॥ १९॥**

**सानुमती** — अज्ज अभिजादं खु एसो वारिदो। (अद्याभिजातं खल्वेष वारितः।)

**विदूषकः** — पडिसिद्धा वि वासा एसा जादी। (प्रतिषिद्धापि वामैषा जातिः।)

**राजाः** — एवं भो न मे शासने तिष्ठसि। श्रूयतां तर्हि सम्प्रति।

**अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं**
**पीतं मया सदयमेव रतोत्सवेषु।**
**बिम्बाधरं स्पृशसि चेद्भ्रमर प्रियाया-**
**स्त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्॥ २०॥**

---

चकितचकितेति वीप्सायां द्विरुक्तिः। आः, एष दास्याः पुत्रः कुसुमासव[1700] पाटच्चरोऽत्रभवत्या वदनमतिलंघयति[1701] दुष्टमधुकरः।[1702] आः कोपे। कीटं प्रति दास्याः पुत्र इत्येतदाग्रहातिशयलक्षणम्। पाटच्चरश्चोरः। अतीति अतिक्रामतीत्यर्थः। बाधत इति यावत्। कुसुमेत्यनेन पद्मिनीयमिति व्यज्यते। "सज्जन्ति मधुपा[1703] यस्या मुखे सा पद्मिनी मतेति" नायिका लक्षणात्॥ भवानेवाविनीतानुशासी, अस्य वारणे प्रभविष्यति। अयीति[1704] संबोधनम्। अयी(यि)चासावित्येकपदं च। अयः शुभावहो विधिरित्यमरः। यतः शकुन्तला इतः किं कुसुमलतामेव याहीति भावः। **भवन्तमुद्दिश्येत्यर्थः**॥ अद्य खल्वाभिजातं वारित[1705] एषः। मधुकर इत्यनुषङ्गः। अभिजातं[1706] युक्तं यथा तथा। "अभिजातस्तु साधौ नास(पुंसि ?) क्लीबे युक्तवाचक" इति केदारः। प्रतिषिद्धवामा[1707] खलु एषा जातिः। प्रतिषिद्धा वामा मया।[1708] वामा स्त्री मनोज्ञा च। प्रकृते शकुन्तलेति यावत्। प्रतिषिद्धा मधुपतया[1709] निषिद्धा चासौ वामा वक्रेत्यर्थः[1710]। एषा जातिः कीटजातिरित्यर्थः। एवं बाढ[1711]मित्यर्थः। इदमुत्तरं विदूषकं प्रतीति बोध्यम्। अथ मधुकरमाह भोइति॥ **अक्लिष्टः**[1712] सुखाभिवृद्धः। लोभनीयं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**विदूषकः** – एव्वं तिक्खदंडस्स ण विभेइस्सदि । (प्रहस्य आत्मगतम् ।) एसो दाणं उम्मत्तो । अहं वि एदस्स संसग्गेण ईरिसो ह्मि संवुत्तो । (प्रकाशम्) भो चित्तं क्खु एद । (एवं तीक्ष्णदण्डस्य न भेष्यति । एष इदानीमुन्मत्तः । अहमप्येतस्य संसर्गेणेदृशोऽस्मि संवृत्तः । भोः, चित्रं खल्वेतत् ।)

**राजा** – कथं चित्रम् ?

**सानुमती** – अहं वि दाणिं दाव अणवगदत्था । किं उण जगलिहिदाणुभावी एसो । (अहमपीदानीं तावदनवगतार्था । किं पुनर्यथालिखितानुभाव्येषः ।)

**राजा** – वयस्य ! किमिदमनुष्ठितं पौरोभाग्यम् ।

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन ।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता ॥ २१ ॥

(इति बाष्पं विकिरति ।)

**सानुमती** – पुव्वावरविरोही अपुव्वो एसो विहाणमग्गो । (पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विधानमार्गः ।)

**राजा** – वयस्य ! कथमेवमविश्रान्तं दुःखमनुभवामि ।

प्रजागरात् खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने समागमः ।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि ॥ २२ ॥

**सानुमती** – सव्वहा मज्जिदं तुए पच्चादेसदुक्खं सउन्दलाए । (सर्वथा मार्जितं त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः ।)

(प्रविश्य)

---

कमनीयम् ।[1713] सदयं क्षतरहितं यथा तथा । बन्धने निर्बन्धे । निर्बन्धेऽपि च बन्धनमिति[1714] हलायुधः । उत्सवेष्विति पदमहिम्ना बहुवारं पीतमित भावः ॥ एवं तीक्ष्णदण्डादपि एष न बिभेति[1715] । "दण्डादो" इति कवेः[1716] प्रमादः । "दोळ(ला) दशनदण्डेषु ड"[1717] इति दस्थाने[1718] डकारस्य विधानात् ।एष इदानीम् उन्मत्तः, अहमप्येतस्य संसर्गेणेदृशोऽस्मि संवृत्तः । ईदृश उन्मत्त इत्यर्थः ॥ भोश्चित्रं खल्वेतत् । अहमपि तावद् इदानीम् अनवगतार्था, [1719]किं पुनर्यथार्थलिखितानुभव्येषः । अहमपि देवयोनिरपीत्यर्थः । अनुभावः प्रभावे च सतां[1720] च मतिनिश्चय[1721] इत्यमरः । एष राजेत्यर्थः ॥

पौरोभाग्यं दौषैकदृक्त्वम् ॥ तन्मयेन[1722] शकुन्तलान्तर्भूतेन[1723] । पुनरपीति[1724] पदमहिम्ना लेखनावसरे, सम्प्रति भवत्कृत स्मृत्यनन्तरं च चित्रमिदमित[1725] बुद्धिः । एतन्मध्ये तु साक्षाच्छकुन्तलेति निर्वृतोऽ[1726]हमिति भावः ॥ पूर्वापराविरोध्यपूर्व एष विभागमार्गः ।[1727] पूर्वापरयोः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**चतुरिका** – जेदु जेदु भट्टा। बण्णिआकरंडअं गेण्हिअ इदो मुहं पत्थिद म्हि। (जयतु जयतु भर्ता। वर्णिकाकरण्डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थितास्मि।)

**राजा** – किं च।

**चतुरिका** – सो मे हत्थादो अंतरा तरलिआदुईआए देवीए वसुमदीए अहं एव्व अज्जउत्तस्स उवणइस्सं त्ति सबलक्कार गहीदो। (स मे हस्तादन्तरा तरलिकाद्वितीया देव्या वसुमत्याहमेवार्यपुत्रस्योपनष्यामीति सबलात्कारं गृहीतः)

**विदूषकः** – दिजीआ तुमं मुत्ता। (दिष्ट्या त्वं मुक्ता।)

**चतुरिका** – जाव देविए विडवलग्गं उत्तरीअं तरलिआ मोएदि ताव मए णिव्वाहिदो अत्ता। (यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा।)

**राजा** – वयस्य! उपस्थिता देवी बहुमानगर्विता च। भवानिमां प्रतिकृतिं रक्षतु।

**विदूषकः** – अत्ताणं त्ति भणाहि। (चित्रफलकमादायोत्थाय।) जइ भवं अंतेउर कलहादो मुच्चीअदि तदो मं मेहप्पडिच्छंदे पासादे सद्दावहि। (आत्मानमिति भण। यदि भवानन्तःपुरकलहान्मुच्यते ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय।)

(इति द्रुतपदं निष्क्रान्ता।)

**सानुमती** – अण्णसंकंतहिअओ वि पढमसंभावणं अवेक्खदि। थिरसोहदो दाणिं एसो। (अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावनामवेक्षते। स्थिरसौहृद इदानीमेषः।)

---

साक्षादनुभवचित्रानुभवयोरविरोध्यनुकूलः। पूर्वापरेति ध्वनिश्च। विभागस्य साक्षादिति, चित्रमिदमिति च परिच्छेदस्य मार्गः पन्थाः। अपूर्वश्चतुर इत्यर्थः॥ अश्रान्तं सततम्॥[1728] प्रजागराद्धेतोः खिलीभूतः कुण्ठितः।[1729] चित्रगतां द्रष्टुमपि न ददाति, कुतः पुनर्भोक्तुं साक्षादेनां दास्यतीति चमत्कारः। बाष्पवशाद् द्रष्टुमपि, नाहं प्रगल्भ इति भावः। चित्रगतामपीति ध्वनिः॥ सर्वथा प्रमार्जित त्वया प्रत्यादेशदुःखं शकुन्तलायाः। ध्वनिश्च। जयतु भर्ता वर्तिकाकरं[1730]डकं गृहीत्वेतोमुखं प्रस्थिताऽस्मि[1731]। पेटी या[1732] वर्तुला, प्रोक्तं स करंडक इति रभसः। करंडा इति महाराष्ट्राः॥ स च मे हस्ताद्[1733] अन्तरा तरळि(लि)काद्वितीयया देव्या वसुमत्याऽहमेवैनमा[1734]र्यपुत्रायोपनेष्यामीति करंडकः सबलात्कारं गृहीतः। अन्तरा मध्ये। दिष्ट्या त्वं मुक्ता[1735]। यावल्लतालग्नमुत्तरीयं[1736] देव्यास्तरळि(लि)का मोचयति तावन्मया निर्वासित आत्मा। शीघ्रं निर्गमः कृत इति भावः। उपस्थिता[1737] ध्वनिः॥ आत्मानमिति भण। आत्मानं विदूषकमित्यर्थः। यदि भवानन्तः पुरकलहान्[1738] मुच्यते, ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापयतु। प्रतिच्छन्दः प्रतिकृतिरिति वैजयन्ती।[1739] मेघपदमहिम्ना प्रासाद औनत्यधावळ्या(ल्या)तिशयो व्यज्यते। "स०दावेउ" इति सुपाठः। "स०दावय,", "सदावेहीति" कुपाठौ कश्चन व्याचकार, तत्र।[1740] कविना भवानित्यभिधानाद् द्रुतानि शीघ्राणि[1741] पदानि पदक्षेपणानि यस्मिन्कर्णणि। अन्यसंक्रान्तहृदयोऽपि प्रथमसंभावना [[मपेक्षते।[1742] अन्यत्र

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(प्रविश्य पत्रहस्ता ।)

**प्रतीहारी** — जेदु देवो । (जयतु देवः ।)

**राजा** — वेत्रवति । न खल्वन्तरा दृष्टा त्वया देवी ।

**प्रतीहारी** — अह इं । पत्तहत्थं मं पेक्खिअ पडिणिउत्ता । (अथ किम् । पत्रहस्तां मां प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता ।)

**राजा** — कार्यज्ञा कार्योपरोधं मे परिहरति ।

**प्रतीहारी** — देव ! अमच्चो विण्णवेदि । अत्थजादस्स गणणाबहुलहाए एक्कं एव्व पोरकज्जं अवेक्खिदं । तं देवो पत्तारूढं पच्चक्खीकरेदु त्ति । (देव ! अमात्यो विज्ञापयति । अर्थजातस्य गणनाबहुलतयैकमेव पौरकार्यमवेक्षितम् । तद्देवः पत्रारूढं प्रत्यक्षीकरोत्विति ।)

**राजा** — इतः पत्रिकां दर्शय । (प्रतीहार्युपनयति ।)

**राजा** — (अनुवाच्य ।) कथम् । समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम नौव्यसनेन विपन्नः । अनपत्यश्च किल तपस्वी । राजगामी तस्यार्थसंचय इत्येतदमात्येन लिखितम् । कष्टं खल्वनपत्यता । वेत्रवति ! महाधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम् । विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्या स्यात् ।

**प्रतीहारी** — देव दाणिं एव्व साकेतसेट्ठिणो दुहिदा णिव्वुत्तपुंसवणा जाआ से सुणीअदी । (देव ! इदानीमेव साकेतश्रेष्ठिनो दुहिता निर्वृत्त पुंसवना जायाऽस्य श्रूयते ।)

---

शकुन्तलायां संक्रान्तं हृदयं यस्य । प्रथमा संभावना]][1743]उपचारो यस्याम् । तां देवीमित्यर्थः । स्थिर[1744] – शोभित एष इदानीम् । संजाता[1745] शोभा यस्य शोभितः । स्थिरं[1746] शाश्वतं यथा तथा शोभित इत्यर्थः । अत एव मञ्चरितपल्लव[1747]कर्णपूरेति भगवत्पादाः ।तथा चैष राजा प्रणयदाक्षिण्याभ्यां नित्यं शोभत इति भावः । "ठिर सोहो" इति पाठमुरीकृत्य "स्थिर-[1748]शोभ" इत्यर्थ इत्यविशेषविदो व्याकुर्वन्ति। पत्रहस्ता प्रतिहारीति । पत्रमारोप्य दीयतामिति प्रेषिता वेत्रवती[1749] सेयमिति जानद्भिः[1750] पूर्वोक्तं[1751] संविधानमूह्यम् । जयतु देवः ॥ अन्तरा मध्ये मार्गस्येति शेषः । अथकिम् अङ्गीकारे ।[1752] पत्रहस्तां मां[1753] प्रेक्ष्य प्रतिनिवृत्ता । देव, अमात्यो विज्ञापयति – अर्थजातस्य गणनाबह (हु)ळ (ल) तयाऽ[1754]द्यैकमेव पौरकार्यं प्रत्यवेक्षितं तत्तावत्पत्रारूढं देवः प्रत्यक्षी करोत्विति । अर्थजातस्य द्रव्यसमूहस्य प्रत्यवेक्षितं विचारि(र्य)मिति यावत् । व्यवहारः क्रयविक्रयरूपः । सार्थवाहो वणिक् । व्यसनं भ्रंशः । विपन्नो विपदं प्राप्तः, परासुरित्यर्थः । तपस्वी[1755] दीनः । संचयः संघः । ध्वनिश्च । अनपत्याऽपत्यरहितत्वम् ।[1756] अपत्यं पुत्रः पुत्री च । महाधनस्यैव बहुपत्नीकत्वं, नान्यस्येत्यर्थः । अत एव दरिद्रस्य![1757] द्विभार्यत्वं निषिद्धमिति नीतिचन्द्रिकायाम् । आपन्नसत्वा गर्भिणी, ध्वनिश्च । देव, इदानीं[1758] तस्य जायानां साकेत[1759] श्रेष्टि (ष्ठि)नो दुहिता निर्वृत्तपुंसवना[1760] श्रूयते । जायानां मध्य इति शेषः । "धनिको

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा – ननु गर्भः पित्र्यं रिक्थमर्हति । गच्छ । एवममात्यं ब्रूहि ।

प्रतीहारी – जं देवो आणवेदि । (यद्देव आज्ञापयति) (इति प्रस्थिता)

राजा – एहि तावत् ।

प्रतीहारी – इअम्हि । (इयमस्मि)

राजा – किमनेन संततिरस्ति नास्तीति ।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ॥ २३ ॥

प्रतीहारी – एव्वं णाम घोसइदव्वं । (निष्क्रम्य । पुनः प्रविश्य ।) काले पवुट्टं विअ अहिणंदिदं देवस्स सासणं । (एवं नाम घोषयितव्यम् । काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम् ।)

राजा – (दीर्घमुष्णं च निश्वस्य ।) एवं भोः संततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने संपदः परमुपतिष्ठन्ति । ममाप्यन्ते पुरुवंशश्रिय एष एव वृत्तान्तः ।

प्रतीहारी – पटिहदं अमंगलं । (प्रतिहतममङ्गलम् ।)

राजा – धिङ्मामुपस्थितश्रेयोवमानिनम् ।

सानुमती – असंसअं सहिं एव्व हिअए करिअ णिंदिदो णेण अप्पा । (असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा ।)

राजा – संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा ।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा ॥ २४ ॥

---

वर्तकः[1761] श्रेष्ठी(ष्ठी) ति" त्रिकाण्डी । पित्र्यं पितृसम्बन्धि । रिक्यं(क्थं) द्रव्यम् । यद्देव आज्ञापयति । इयमस्मि । **स स बन्धुः** तासां प्रजानाम् । ननु गतधवा[1742] विषये कथमि–[1763]त्याशंक्याह–पापादृते इति पापं विनेत्यर्थः ॥ एवं नाम घोषयितव्यम् । काले प्रवृष्टमिवाभिनन्दितं देवस्य शासनम् । पउ. ठमित्यत्र "ष्टस्य ठ"[1764] इति ठत्वम् । परम् अन्यम् । प्रतिहतममंगळ(ल)म् प्रतिहतममंगळ(ल)म् । श्रेयः शकुन्तला । असंशयं सखीमेव हृदये कृत्वा निन्दितोऽनेनात्मा । "अ.पा" इत्यत्र "आत्मनि प[1765]" इति पत्वम् ॥ **आत्मनि** मय्येव । संरोपितेऽपि[1766] उप्ते सत्यपि मया कृतगर्भेत्यर्थः ।[1767] कुलस्य गृहस्य वंशस्य च । प्रतिष्टा(ष्ठा) तु यशः स्थित्योरित्यमरमाला । महते विपुलाय । फलाय व्रीह्यादिप्राप्तये । वसुन्धरेव ।[1768] तथा च सन्निहितफलत्यागादहमतिमूढः[1769] । अन्ते[1770] पराधीनभाग्यः । पितृ(तृ)णां विषय ऋणपातकीति भावः ॥ अपरिछि(च्छि) न्नेदानीं ते संततिर्भविष्यति । अपरिछि (च्छि) न्ना शाश्वती । जनान्तिकं रहसीत्यर्थः । अये अमुना सार्थवाहवृत्तान्तेन[1771] विमनायते भर्ता[1772] त्वं[1773] गत्वा मेघप्रतिच्छन्दादार्यमाण्डव्यं गृहीत्वाऽऽगच्छेति । आहूय तेन सहागच्छेत्यर्थः । दुर्मना विमना इत्यमरः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**सानुमती** — अपरिच्छिण्णा दार्णि दे संददी भविस्सदि । (अपरिच्छिन्नेदानीं ते सन्ततिर्भविष्यति ।

**चतुरिका** — (जनान्तिकम् ।) अए इमिणा सत्थवाहउत्तंतेण विमणाअदि भट्टा । णं अस्सासेदुं मेहप्पडिच्छंदादो अज्जमांडव्वं गेहिणअ आअच्छेहि । (अये । अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन विमनायते भर्ता । एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यमाण्डव्यं गृहीत्वाऽगच्छ ।)

**प्रतीहारी** — सुठ्ठु भणसि । (सुष्ठु भणसि ।)

(इति निष्क्रान्ता ।)

**राजा** — अहो दुष्यन्तस्य संशयमारूढाः पिण्डभाजः । कुतः।

**अस्मात् परं बत यथाश्रुति संभृतानि**
**को नः कुले निवपनानि करिष्यतीति ।**
**नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं**
**धौताश्रुशेषमुदकं पितरः पिबन्ति ॥ २५ ॥**

(इति मोहमुनुपगतः ।)

**चतुरिका** — (ससंभ्रममवलोक्य ।) समस्सदतु समस्सदतु भट्टा । (समाश्वसितु समाश्वसितु भर्ता ।)

**सानुमती** — हद्धी हद्धी । विद्दमाने दीवे ववधाणदोसेण एसो अंधआरं अणुहोदि । अहं दार्णि एव्व णिण्वुदं करेमि । अह वा सुदं मए सउन्दलं समस्सासअंतीए महेदजणणीए मुहादो । जण्णभओ सुआ देवा एव्व तह अणुचिट्ठिस्संति जह अईरेण धम्मपईर्णि भट्टा अहिणंदिस्मदि त्ति । ता जुत्त एदं कालं पडिपालेदुं । जाव इमिणा उत्तंतेण पिअसहिं समस्सासेमि ।

---

सुष्टु(ष्ठु) भणसि ॥ पिण्डभाजः पिण्डादाः[1775] । पिण्डेत्यश्लीलम् । अस्माद् दुष्यन्तात् । परम् अनन्तरम् ।[1776] यथाश्रुति यथाऽऽम्नायम् ।[1777] संभृतानि सिद्धानि । विकलेन हीनेन । प्रदिष्टं[1778] दत्तम् । धौताः शुभ्राः ।[1779] अश्रूणां शेषाः । यस्मिन्कर्मणि । अश्रुबाहुळ्या(ल्या) पगमेन ।[1780] कालुष्याभावाद्[1781] धौतत्वं युज्यते । तथा च – "अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित[1782] इव मुक्तामणिसर" इति श्रीकण्ठः । इतः परमश्रु नास्तीति द्योतयितुं[1783] शेष इत्युक्तम् । शेषः स्याद् अवशिष्टतेत्यमरमाला । शेषमुर्वरितं सम इति विश्वः । त्रिषु शेषमिति केदारः । अत एव वाक्यशेष इति गोवर्धनः । यज्ञशेषभोजनशेषयोरित्यमरः । "शेषमेतद्वनं व" इति षण्मासकविः ।[1784] "शेषोऽपि वृत्तान्तं" इति लीलाशुकः । "हतशेषा निशाचरा" इत्यादिकविः ।" शेषाद्विबाणीति"[1785] श्रीहर्षः । अत्र कोऽपि व्याकुर्वन्भीतो न शेषपदमस्मार्षीदिति दिक् ॥ मोहो मूर्च्छा ।[1786] आश्वसितु आश्वसितु भर्ता ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(हा धिक् हा धिक्। विद्यमानेऽपि दीपे व्यवधानदोषेणैषोन्धकारमनुभवति। अहमिदानीमेव निर्वृतं करोमि। अथ वा श्रुतं मया शकुन्तलां समाश्वासयन्त्या महेन्द्रजनन्या मुखात्। यज्ञभागोत्सुका देवा एव तथानुष्ठास्यन्ति यथाऽचिरेण धर्मपत्नी भर्ताऽभिनन्दिष्यतीति। तस्माद्युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुम्। यावदनेन वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि।) (इत्युद्भ्रान्तकेन सानुमती निष्क्रान्ता।)

**(नेपथ्ये।)**

अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णं। (अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्।)

**राजा** — (प्रत्याश्वस्तः। कर्णं दत्वा।) अये मांडव्यस्येवार्तस्वरः। कः कोऽत्र भोः।

(प्रविश्य।)

**प्रतिहारी** — (ससंभ्रमम्) परित्ताअदु देवो संसअगदं वअस्सं। (परित्रायतां देवः संशयगतं वयस्यम्।)

**राजा** — केनात्तगंधो माणवकः।

**प्रतिहारी** — अदिट्ठरुवेण केण वि सत्तेण अदिक्कमिअ मेहप्पडिच्छन्दस्स पासादस्स अग्गभूमिं आरोविदो।) (अदृष्टरूपेण केनापि सत्वेनातिक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः।)

**राजा** — (उत्थाय।) मा तावत्। ममापि सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः। अथवा

**अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातु प्रमादस्खलितम् न शक्यम्।**
**प्रजासु कः केन पथा प्रयातींत्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्तिः॥ २६॥**

---

विद्यमानेऽपि दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारमनुभवति। सुखोदये सति मुनिशापेन चिन्तां निर्विशतीति भावः। अहमिदानीमेवैनं निर्वृतं करोमि। अथवा श्रुतं मया। शकुन्तलां समाश्वासयन्त्याः[1797] महेन्द्रजनन्याः[1788] मुखात् यज्ञभागपर्युत्सुकाः। देवा एव तथाऽनुष्ठा(ष्ठा)—स्यन्ति।[1789] यथा त्वां(तां) धर्मपत्नीम् अचिरेण भर्ता[1790] अभिनन्दयिष्यतीति। निर्वृत्तं[1791] सुखितम्। महेन्द्रजनन्या अदितेरित्यर्थः। तदिदं ससमाङ्के स्पष्टीभविष्यति। तस्माद् युक्तमेतं कालं प्रतिपालयितुम्। अमुना वृत्तान्तेन प्रियसखीं समाश्वासयामि। उद्भ्रान्तकेन[1792] विमानेन।[1793] विमानमुद्भ्रान्तकम् अभ्रयानमित्यगस्त्यः॥ अथ महेन्द्रप्रेषितमातलिबाध्यमानविदूषकप्रकरणकोलाहलं प्रक्रमते–नेपथ्ये इति॥ अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम्। अब्रह्मण्यमवध्योक्तावित्यमरः। परित्रायतां भर्ता संशयगतं वयस्यम्।[1794] माणवको बटुः। देव, अदृष्टरूपेण केनापि सत्वेनाक्रम्य मेघप्रतिच्छन्दस्य प्रासादस्याग्रभूमिमारोपितः। "मा तावद्"[9] इति निवारण[1795]सूचको वाक्यखण्डो ममापि गृहा इत्यन्वयः। गृहाणीत्यर्थः "गृहाः पुंसि च भूम्नीति, सत्वोऽस्त्री जंतुभूतयोरित्यमरहेमचन्द्रौ॥ **तावद् अलंकारे**। स्खलितं गमने[1796] पदक्षेप[1797]व्यत्यासः।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(नेपथ्ये ।)

भो वअस्स अविहा । (भो वयस्य ! अपि हा । अपि हा ।)

राजा – (गतिभेदेन परिक्रामन् ।) सखे ! न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

(नेपथ्ये)

(पुनस्तदेव पठित्वा) अत्त भवन् कहं म भाइस्स । एस म को वि पच्चा अवणदसिशेहरं इक्खुं विए तिक्खमङ्गं करेदि । (अत्र भवन् कथं न भेष्यामि एष मां कोऽपि पश्चादवनतशिरोधरमिक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोति ।)

राजा – (सदृष्टिक्षेपम् ।): धनुस्तावत् ।

(प्रविश्य शार्ङ्गहस्ता ।)

यवनिका – भट्टा एदं हत्थावावसहिदं सरासणं । (भर्तः! एतद्धस्तावापसहितं शरासनम् )

(राजा सशरं धनुरादत्ते ।)

(नेपथ्ये ।)

एष त्वामभिनवकण्ठशोणितार्थी  
शार्दूलः पशुमिव हन्ति चेष्टमानम् ।  
आर्तानां भयमपनेतुमात्तधन्वा  
दुष्यन्तस्तव शरणं भवत्विदानीम् ॥ २७ ॥

---

अशेषतः साकल्यात् । वेदितुम् अवगन्तुम् । कस्येति शेषः । शक्तिरस्तीति काकुः । न कस्यापीत्यर्थः । प्रयातीत्यत्र पादान्तयति–भङ्गेऽपि न दोषः । अत एव – ओं नमो मन्मथायेत्यस्तोयन् मध्यरत्नमिति राजशेखरः । अपि हा अपि हा ।" खेदवाचकोऽयं निपातः ॥ गतिभेदस्त्वरागमनम् । कथमत्रभवान् । तर्हि न[1793] बिभेमि । एष मां कोऽपि पश्चादवनतशिरोधरम् इक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोति । ग्रीवा शिरोधरेति हारावळी(ली) । शिरसो[1799]ऽग्रस्य धरमितीक्षुपक्षेऽर्थः ।[1800] तीक्ष्णो निर्दयकृतो भङ्गो भंजनं पराभवश्च[1801] यस्येति, इक्षुविदूषकपक्षयोरर्थः । दृष्टिर्दर्शनम्, तस्याक्षेपो विकारभेदः । तेन सहितं यथा तथा । शार्ङ्गम् शृङ्गं निमित्तं धनुः । यवनिकेति प्रायः परिचरणविषये यवन जागरूका[1803] इत्यनुभवसिद्धम् । प्रकृते मितजनावसरगुणेन यवनिकायाः प्रवेशः । अत एव "एसो बाणासण ह०था हिं जवणीहिमिति" द्वितीयाङ्कप्रवेशके कविनोक्तम् ॥ भर्तः । इदं शरासनं हस्तावापसहितम् । क्लीबे गोधांगुलित्राणं हस्तावाप इति पदमाला । बद्धगोधांगुलित्राण इत्यादिकविः । दस्ताना[1804] इति महाराष्ट्राः ॥ **अभिनवं** च तत्कण्ठशोणितम् । वेष्टमानं लुठन्तम् ।[1805] श्लोकोऽयं मातलिभाषित इत्यूह्यम् ॥ इत इतो देवः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** – (सरोषम्) कथं मामेवोद्दिशति । तिष्ठ कोणपापशद त्वमिदानीं न भविष्यसि। (शार्ङ्गमारोप्य ।) वेत्रवति ! सोपानमार्गमादेशय ।

**प्रतीहारी** – इदो इदो देवो । ( इत इतो देवः ।)

**राजा** – (समन्ताद्विलोक्य ।) शून्यं खल्विदम् ।

(नेपथ्ये ।)

अविहा अविहा । अहं अत्तभवन्तं पेक्खामि । तुमं मं ण पेक्खसि । बिडालगहिदो मूसओ विअ णिरासो म्हि जीविदे संवुत्तो । ( अपिहा अपिहा अहमत्रभवन्तं पश्यामि । त्वं मां न पश्यसि। बिडालगृहीतो मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः ।)

**राजा** – भोस्तिरस्करिणीगर्वित । मदीयमस्त्रं त्वां द्रक्ष्यति । एष तमिषुं संदधे ।

**यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम् ।**
**हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः ॥ २८ ॥**

(अस्त्रं संधत्ते ।)

(ततः प्रविशति विदूषकमुत्सृज्य मातलिः ।)

**मातलिः** – **कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः**
**शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम् ।**
**प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने**
**पतन्ति चक्षूंषि न दारुणाः शराः ॥ २९ ॥**

**राजा** – (अस्त्रमुपसंहरन्) अरे मातलिः । स्वागतं महेन्द्रसारथे ।

(प्रविश्य)

**विदूषकः** – अहं जेण इट्ठिपसुमारं मारिदो सो इमिणा साअदेण अहिणन्दीअदि। (अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽनेन स्वागतेनाभिनन्द्यते।)

**मातलिः** (सस्मितम्) आयुष्मन् । श्रूयतां यदस्मि हरिणा भवत्सकाशं प्रेषितः ।

**राजा** – अवहितोऽस्मि ।

---

अपिहा अपिहा । अहमत्रभवन्तं[1806] पश्यामि । त्वं मां न पश्यसि । बिडालगृहीतो[1807] मूषक इव निराशोऽस्मि जीविते संवृत्तः । तिरस्करणी नामादर्शनविद्या । अस्त्रं कर्तृ । एषोऽहम् इत्यर्थः ॥ य इषुः । त्वां कुणपाशनम् ।[1808] द्विजं माण्डव्यम् । यथाक्रमं दृष्टान्तमुदाहरति – हंस इति । तन्मिश्राः क्षीरान्तर्भूताः । अप उदकानि कर्म[1809] । हंसमुख्य[1810]स्याम्लतया स्पृष्टमात्रे[1811] क्षीरे धनीभवति सत्यापो यथा स्थिता भवन्तीति भावः । अम्लं हंसमुखमिति वस्तुनिर्णयः । संधत्त इत्येतावत्पर्यन्तं[1812] मातालिप्रकरणमिति बोध्यम् ॥ **हरिणा**[1813] इन्द्रेण । तवासुरा शरव्याः[1814] । लक्ष्यवद्भेद्याः[1815] कृताः । सुहृज्जनो मादृश[1816] इत्यर्थः । पतन्तीति ध्वनिः । ॥ अये आश्चर्ये । अहं येनेष्टिपशुमारं मारितः सोऽमुना स्वागतेनाभिनन्द्यते पशुमारं पशुवत् । अमुना राज्ञा । स्वागतं कुशलप्रश्न इति सारस्वतः । कालनेमिर्दैत्यभेदः । तस्य प्रसूतिः प्रसवः ॥ **अजय्यो** जय्यो(य्य)तरः ।[1817]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मातलिः – अस्ति कालनेमिप्रसूतिर्दुर्जयो नाम दानवगणः ।

राजा – अस्ति श्रुतपूर्वो मया नारदात् ।

मातलिः – सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजय्य–
स्तस्य त्वं रणशिरसि स्मृतो निहन्ता ।
उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्ति–
स्तन्नैशं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः ॥ ३० ॥

स भवानात्तशस्त्र एवेदानीमैन्द्रं रथमारुह्य विजयाय प्रतिष्ठताम् ।

राजा – अनुगृहीतोऽहमनया मघवतः संभावनया । अथ माडव्यं प्रति भवता किमेवं प्रयुक्तम् ।

मातलिः – तदपि कथ्यते । किन्निमित्तादपि मनःसंतापादायुष्मान् मया विक्लवो दृष्टः । पश्चात् कोपयितुमायुष्मन्तं तथा कृतवानस्मि । कुतः ।

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जन्तुः ॥ ३१ ॥

राजा – (जनान्तिकम्) वयस्य अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा । तदत्र परिगतार्थं कृत्वा मद्वचनादमात्यपिशुनं ब्रूहि ।

त्वन्मतिः केवला तावत् परिपालयितुं प्रजाः ।
अधिज्यमिदमन्यस्मिन् कर्मणि व्यापृतं धनुः ॥ ३२ ॥

विदूषकः – जं भवं आणेवदि । (यद्भवानाज्ञापयति ।) (इति निष्क्रान्ताः)

मातलिः – आयुष्यमान् रथामारोहतु । (राजा रथारोहणं नाटयति ।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

## ॥ इति षष्ठोऽङ्कः ॥

---

जय्यः स शक्यो यो जेतुमित्यमरः । तस्य दानवगणस्य । सप्तसप्ति सूर्यः । यत् यत् द्वितीयैकवचनम् । नैशं निशासंबन्धि ॥ आत्तशस्त्रः प्राप्तायुधः । मर्यादायामादरे च भवेत्संभावनेति नानार्थमाला । अथेति प्रश्ने । किमपि निमित्तं कारणं यस्य, तस्मात् किं निमित्तात् । "आयुष्मानिति वक्तव्यो रथी सारथिनेति" नाट्यचिन्तामणिः ॥ चलितो( ता )नि कम्पितानीन्धनानि यस्य । विप्रकृतो निकृतः[1818] फणा द्वयोरित्यमरः । स्वं निजम् । प्रतिपद्यते प्राप्नोति । अनुष्टि(ष्ठि) तं ध्वनिकृत[1819]मित्यर्थः ॥ जनोऽन्तिके यस्मिन् कर्मणि तज्जनान्तिकम् एकान्तवाचकौ शब्दावपवार्य–जनान्तिकमिति रूपकादर्शः । दिवस्पतेरिन्द्रस्य तत्तस्मात् । अत्रास्मिन् विषये । परिगतोऽवगतोऽर्थः प्रयोजनं येन ॥ केवलस्त्वेकमुख्य[1820]यो–रिति त्रिकाण्डी । तावत्साकल्ये । अधिज्यम्[1821] अधिरोपि [[पि]]तृ[1822] – मौर्विकम्[1823] अन्यस्मिन्कर्मणि दानवगणसंहार इत्यर्थः । व्यापृतं व्यापारयुक्तम् । त्वया मानवा रक्ष्या[1824], मया दानवाः शिक्ष्या इति भावः ॥ यद् भवानाज्ञापयति ॥

इति महाराजपद....शाकुन्लसञ्जीवनाख्यटिप्पणे षष्ठोऽङ्कः ॥[1825]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# ॥ अथ सप्तमोऽङ्कः ॥

(ततः प्रविशत्याकाशयानेन रथाधिरूढो राजा मातलिश्च)

राजा – मातले, अनुष्ठितनिदेशोऽपि मघवतः सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवात्मानं समर्थये।

मातलिः – (सस्मितम्।) आयुष्मन् उभयोरप्यपरितोषः। यतः।

प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु मन्यते भवान्।
गणयत्यवदानतोषितो भवतः सोऽपि न सत्क्रियागुणान् ॥ १ ॥

राजा – मातले! मा मैवम्। स खलु मनोरथानामप्यभूमिर्विसर्जनावसरसत्कारः। मम हि दिवौकसां समक्षमर्धासनोपवेशितस्य।

अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्तमुद्वीक्ष्य कृतस्मितेन।
आमृष्टवक्षोहरिचन्दनाङ्का मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा ॥ २ ॥

मातलिः – किमिव नामायुष्मानमरेश्वरान्नार्हति। पश्य –

सुखपरस्य हरेरुभयैः कृतं
त्रिदिवमुद्धृतदानवकण्टकम्।
तव शरैरधुना नतपर्वभिः
पुरुषकेसरिणश्च पुरा नखैः ॥ ३ ॥

---

अथ। वृत्तानुवादसंल्लापनेपथ्याकाशभाषितैः। पूर्यते[1826] पञ्चसन्ध्यङ्कं[1827] चतुःषष्ट्यङ्गि[1828] नाटकम् इति रूपकादर्शोक्तं निर्वहणं सन्ध्युपक्षेपोट्टंकितम्[1829] आदौ साधारणपात्राप्रवेशाद्विष्कंभप्रवेशकवर्जितं दुष्यन्तमातलिवचनानुवादसिद्धं सप्तमाङ्ककथासंविधानमुपक्रमते तत इत्यादि। आकाशयानेन गगनगमनेनोपलक्षित इत्यर्थः। विमानेनेत्यर्थ इति कश्चिदाह, तन्न। रथाधिरूढ इति मूलवाक्यविरोधात्। राजा मनः शोधयन्नाह[1831] – मातल इति। सत्क्रिया सत्कारो बहुमान इति यावत्। ध्वनिश्च। बहुमानेऽध्वरे पुण्यदानपूजासु सत्क्रियेति हेमचन्द्रः। अनुपयुक्तं कार्याक्षममिव। लोकेऽभिमानिनो हि प्रभवो दयया[1832] कार्याक्षममप्यतिसंमानयन्ति। तथा समर्थय इति भावः। सस्मितमिति – मातलिरपि राजभावज्ञ एवाह – आयुष्मन्निति। अपरितोषः तोषाभाव इति विरोधः। न[1833] विद्यते परितोषो यस्मादपरितोषः। संतोषातिशय इति परिहारश्चमत्कारश्च। अत एव "अकण्ठे कळ्(लं) कादिति भगवत्पादाः[1834]। प्रथमं पूर्वं च तदुपकृतं कर्मेदं बोध्यम्। भवान् प्रतिपत्त्या मर्यादया लघु[1855] मन्यत इति काकुः। अलघु गुरु मन्यत इत्यर्थः। अलघु इति च पदं बोध्यम्। उपकृतम् उपकारम्। वृष्टिविसर्जनरूपम्। अत एव – "तव भवतु बिडौजाः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा — अत्र खलु शतक्रतोरेव महिमा स्तुत्यः ।

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
संभावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।
किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥ ४ ॥

मातलिः — सदृशमेवैतत् । (स्तोकमन्तरमतीत्य ।) आयुष्मन् ! इतः पश्य नाकपृष्ठ प्रतिष्ठितस्य सौभाग्यमात्मयशसः ।

विच्छित्तिशेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।
संचिन्त्य गीतिक्षममर्थबन्धं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ॥ ५ ॥

---

प्राज्यवृष्टिरित्यग्रे कविना वक्ष्यते। वृष्टि[1836]कृन्मेघ वाहन इति नीतिसारोक्तेः। अत्रेन्द्रांशसंभवत्वरूपम्[1837] उपकृतम् । अष्टाभिर्लोकपालापां[1838] मात्राभिर्निर्मितो[1839] नृप इति स्मृतेरिति कश्चिदाह, तन्न । अग्न्यादिसप्तलोकपालसाधारण्यात्। अपदानं कर्मवृत्तं[1840] स इन्द्रोऽपि सत्क्रियागुणान् यज्ञगुणान्। अत्र दानवसंहाररूपगुणानिति कश्चिदर्थमाह, तन्न। तस्यापदानेत्यनेनैव सिद्धतया सत्क्रियात्वानुपपत्तेः । त्वमपि विततयज्ञ[1841] इति वक्ष्यमाणमूलवाक्यविरोधाच्च।[1842] न गणयतीति काकुः, गणयतीत्यर्थः[1843] । यद्वा न गणयति, गणनां[1844] संख्यां न करोतीत्यर्थः । गुणाः संख्यातीता इति भावः । न गणयति, न मानयतीति कश्चिदाह, तन्न। विस्मितवाक्यविरोधात्॥ मा मैवमिति। वदेति शेषः। तथा चात्मप्रशंसया राज्ञः संकोचोऽवगम्यते । अतिभूमिर्निस्सीम इत्यर्थ" ॥ **अन्तर्गता** मनः स्थिता प्रार्थना याञ्चा[1846] यस्य। जयन्तं पुत्रं सर्वोत्कृष्टं मां चेति व्यज्यते। न योग्यस्त्वं, – योग्यस्त्वमिति जयन्तदुष्यन्तपक्षे कृतस्मितेन[1847] हरिणेन्द्रेण ।[1848] आ [[समन्तात् मृष्टं संपूर्णं यद्वक्षो हरिचन्दनं तदेवांको यस्याः सा]][1849]निबद्धा ।[1850] मत्कंठ इति शेषः । त्रैलोक्यनाथेन महेन्द्रेणानिमिषेषु पश्यत्सु पुत्रमप्यतिक्रम्य स्वयं माला मद्गळे(ले) बद्धा॥ किमितोऽपि भाग्यमिति[1851] भावः। न द्वयोः पूर्वग्रन्था[1852] – वग्रे चेति हारावळी(ली) । **पुरुषकेसरिणो** नरसिंहस्यात्र कृत्स्नस्य नाम्नः पर्यायेऽपि[1853] न दोषः । अत एव दैत्यारिरित्यमरोक्तौ[1854], अर्धं दानव[1885]वैरिणेत्यौतरहाः (?) ॥ **नियोज्याः**[1856] किंकराः । **सिद्ध्यन्ति** इति यावत् ।[1857] गुणानुरोधेन तमिति पुंल्लिङ्गतां(ता) । अरुणोऽनूरुः, तम् अनूरूं। धुरि अग्रे धुर्यग्र इति शब्दमाला ॥ स्तोकमल्पम् । अन्तरं[1858] देशेऽवकाशे[1859] चेति वामनः ॥ **विच्छित्तिशेषैः** प्रकृते लेखनविशेषाद्यवशिष्टैर् वर्णैः शुक्लादिभिः – पञ्चरङ्गैः। लतांशुकेषु लताबद्धवस्त्रेषु। अंशुकं[1860] त्वचि वस्त्रे चेति यादवः । तच्चरितं कर्म, गीतक्षमं गानार्हम् अर्थप्रबन्धं पदपद्यार्थप्रबन्धं[1861] संचिन्त्य कल्पयित्वा दिवौकसो लिखन्ति ॥[1862]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** — मातले ! आसुरसम्प्रहारोत्सुकेन पूर्वेद्युर्दिवमधिरोहता न लक्षितः स्वर्गमार्गः । कतमस्मिन् मरुतां पथि वर्तामहे ?

**मातलिः** —
त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां
ज्योतींषि वर्तयति च प्रविभक्तरश्मिः ।
तस्य द्वितीयपरिविक्रमनिस्तमस्कं
वायोरिमं परिवहस्य वदन्ति मार्गम् ॥ ६ ॥

**राजा** — मातले ! अतः खलु सबाह्यान्तःकरणो ममान्तरात्मा प्रसीदति । (रथाङ्गं विलोक्य ।) मेघपदवीमवतीर्णौ स्वः ।

**मातलिः** — कथमवगम्यते ।

**राजा** —
अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि-
र्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।
गतमपरि घनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकरक्लिन्ननेमिः ॥ ७ ॥

**मातलिः** — क्षणादायुष्मान् स्वाधिकारभूमौ वर्तिष्यते ।

**राजा** — (अधो विलोक्य ।) वेगावतरणादाश्चर्यदर्शनः संलक्ष्यते मनुष्यलोकः । तथा हि ।

---

संप्रहारो युद्धम् ॥ त्रिस्रोतसं भागीरथीम् । विभक्ताः रश्मयः, कान्तयो यस्मिन्कर्मणि । ज्योतींषि[1863] नक्षत्राणि वर्तयति स्थापयति[1864] । द्वितीयश्चासौ हरिविक्रमो[1865] विष्णुपदोत्क्षेपः। तेन निस्तमस्कं तमोरहितम्। परिवहाख्य परिवहो नाम सप्त मरुत्स्वेको मरुत्। वदन्ति पौराणिका इति शेषः । पुराणगम्येयं कथा ॥ इतोऽस्मान् मार्गाद्धेतोः । इतः अत्रेति वार्थः । बाह्यैं कर्मेन्द्रियैः । करणेन मनसा सहितः सबाह्यकरणोऽन्तरात्मा जीवात्मा। अन्तरात्मा तु जीवात्मपरमात्मनोरिति पदार्थममाला । रथाङ्गं चक्रम् । मेघपदं मेघमण्डलम् । पदं मण्डललक्ष्माङ्घ्रिस्थानाऽधी(धि)[1866]कारवस्तुष्विति केदारः ॥

अराणां विवरेभ्यो बिलेभ्यः चक्रप्रान्ते विशेष्यमिति[1867] पदमाला । निष्पतद्भिर्नितरां पतद्भिः । अचिरभासां विद्युतां तेजसानुलिप्तैः ।[1868] हरिभिरश्वैश्च[1869] करणैः । क्लिन्ना[1870] नेमयो यस्य । चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमिः । स्त्री स्यात्प्रथिः पुमानित्यमरः । "धांव" इति महाराष्ट्राः । ते तेव रथः । वारि गर्भे यस्य तत्वारिगर्भम् उदरं येषां घनानाम्[1871] [[उपरि[1872] ऊर्ध्वंगतं गमनं सूचयति इत्यर्थः । ऊर्ध्वगामिभ्यो[1873] घनेभ्यः शीकरपतनं जगत्यनुभवसिद्धम् ॥ आत्मनोऽधिकारो यस्यां सा चासौ भूमिः । वियतः गगनादवतरणं तेन ।उन्मज्जताम्[1874] ऊर्ध्वीभवताम्[1875] । अभ्यन्तरेऽन्तराळे(ले)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मुज्जतां मेदिनी
पर्णाभ्यन्तरलीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः ।
संतानैस्तनुभावनष्टसलिला व्यक्तिं व्रजन्त्यापगाः
केनाप्युत्क्षिपतेव मर्त्यभुवनं मत्पार्श्वमानीयते ॥ ८ ॥

मातलिः — साधु दृष्टम् । (सबहुमानमवलोक्य ।) अहो उदग्ररमणीया पृथिवी ।

राजा — मातले ! कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाढः कनकरसनिष्यन्दी सांध्य इव मेघः सानुमानालोक्यते ।

मातलिः — आयुष्यमान् । एष खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपस्विनां सिद्धिक्षेत्रम् । पश्य -

स्वायम्भुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः ।
सुरासुरगुरुः सोऽस्मिन् सपत्नीकस्तपस्यति ॥ ९ ॥

राजा — तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि । प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि ।

मातलिः — प्रथमः कल्पः (अवतरणं नाटयित्वा) एतावववतीर्णौ । स्वः ।

राजा — (सविस्मयम् ।)

उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः
प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः ।
अभूतलस्पर्शतया निरुद्धत
स्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते ॥ १० ॥

---

लीनतां प्रच्छन्नत्वम् । विजहति मुंचन्ति[1876] । उदयात् प्रकाशनात् । संतानैर् दैर्घ्यैरुपलक्षिताः ।[1877] संतानो वंशदैर्घ्ययोरिति, केशवः । तनुभावेन[1828] कृशत्वेन । व्यक्तिं स्पष्टतां, भुवनं[1879] भूलोकम्, उत्क्षिपतोर्ध्वं प्रेरयता केनापि मत्पार्श्वं प्रति । आनीयत इव पश्य, आगगनादवतरतां भूम्यादिकं प्रत्युद्गच्छतीव भासत इति भावः ॥ उद् उन्नतान्यग्राणि येषां तैः रमणीया ।[1880] "वृक्ष गोपुर शैलाद्या[1881] उग्रा इति रुद्रः ।

प्रकरणवशात् प्रसंगसंगतिमङ्गीकुर्वन्नाह मातल इति । समुद्रोऽवगाढः[1882] प्रविष्टः । सानुमान[1883] भूधरः । हेमकूटादयो नगा इत्यमरः । परं भृशार्थे चोत्कृष्ट इति वामनः ॥ मुख्यः स्यात्प्रथमः कल्प इत्यमरः । सिद्धान्त[1884]-पक्ष इत्यर्थः । एवमेव कर्तव्यमिति यावत् ॥ "स्वः" इति द्विवचनान्तो धातुः ।

उपोढः प्राप्त इति यावत् । शब्दो घोषो यैः । न[1885] विद्यते भूतलस्य स्पर्शो यस्य तस्य भावो भूस्पर्शाभावेनेत्यर्थः ।[1886] अन्तरिक्षस्यानाधारतया नृपाणां रथस्येवास्य रथस्य नेमिघोषो धूळि(लि) रकत्रावस्थानं[1887] वा किमपि न ज्ञायत इति भावः ॥ आयुष्मतश्चेति, रथयोरिति शेषः ॥ संदष्टा संबद्धा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मातलिः — एतावानेव शतक्रतोरायुष्मतश्च विशेषः ।

राज — मातले ! कतमस्मिन् प्रदेशे मारीचाश्रमः ?

मातलिः — (हस्तेन दर्शयन् ।)

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा संदष्टसर्पत्वचा
कण्ठे जीर्णलताप्रतानवलयेनात्यर्थसंपीडितः ।
अंसव्यापि शकुन्तनीडनिचितं बिभ्रज्जटामण्डलं
यत्र स्थाणुरिवाचलो मुनिरसावभ्यर्कबिम्बं स्थितः ॥ ११ ॥

राजा — नमस्ते कष्टतपसे ।

मातलिः — (संयतप्रग्रहं रथं कृत्वा ।) महाराज ! एतावददितिपरिवर्धितमन्दारवृक्षं प्रजापतेराश्रमं प्रविष्टौ स्वः ।

राजा — स्वर्गादधिकतरं निर्वृतिस्थानम् । अमृतह्रदमिवावगाढोऽस्मि ।

मातलुः — (रथं स्थापयित्वा ।) अवतरत्वायुष्मान् ।

राजा : — (अवतीर्य) भवान् कथमिदानीम् ।

मातलिः — संयन्त्रितो मया रथः । वयमप्यवतरामः (तथा कृत्वा ।) इत आयुष्मान् । (परिक्रम्य) दृश्यन्तामत्रभवतामृषीणां तपोवनभूमयः ।

राजा — ननु विस्मयादवलोकयामि ।

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे धर्माभिषेकक्रिया ।
ध्यानं रत्नशिलातलेषु विबुधस्त्रीसंनिधौ संयमो
यत् काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥ १२ ॥

---

सर्पत्व यस्मिन् । इदमुरसो विशेषणम् । उपसोपलक्षित इत्यर्थः । लतायाः प्रतानानाम् अङ्गानां वलयेन जालेन । "प्रतानं तु लताङ्गम्" इति[1888], वलयं कङ्कणे जाल" इति नामनिधानशाश्वतौ । अत्यर्थं भृशम् । सम्यक्पूडितः संपीडितः । अत्यर्थसमुपसर्गयोरन्यतरं पुनरुक्तम् । नीडैः कुलायै र्निचितं निबिडम्[1889] । ब्रिभत् वहन् [1890] । स्थाणुः[1891] शङ्कुरिव । अभ्यर्केति सूर्यमंडलाभिमुखं यथा तथा ॥ कष्टम्[1892] अन्यदुष्करम् । प्रग्रहा अश्वरज्जवः । "वृक्षकं" मुख्यार्थे कप्रत्ययः । स्वो वर्तावह इति यावत् अवगाढः प्रविष्ट आश्रममित्यनुषंगः । संयन्त्रितः संयमितः ॥

अनिलेन प्राणानाम् उचितावृत्तिर्वनम् ।]][1893]काञ्चनपद्मानि कनकवर्णकमलानि । धर्मेति पुण्यप्रापकस्नानकृत्यम् ।[1894] संयमो नियमः । इत्याद्याचरणायेति शेषः । अन्यमुनयो यत् स्छ(स्थ) लं[1895] तपोभिः काङ्क्षन्ति तस्मिन् सुरलोकेऽमी ऋषयस्तपस्यन्तीत्यर्थः । तस्मिस्तपेति सन्धिसंकटमार्थिकम् । तथा चात्र तपस्यतामितो[1896]–ऽप्यतिशयितं स्छ(स्थ)लान्तरं[1897] वर्तत इति भावः ॥ उत्सर्पिणी[1998]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मातलिः – उत्सर्पिणी खलु महतां प्रार्थना। (परिक्रम्य आकाशे।) अये वृद्धशाकल्य। किमनुतिष्ठति भगवान् मारीचः ? किं ब्रवीषि ?" दाक्षायण्या पतिव्रताधर्ममधिकृत्य पृष्टस्तस्यै महर्षिपत्नीसहितायै कथयती ति।

राजा – (कर्णं दत्वा।) अये ! प्रतिपाल्यावसरः खलु प्रस्तावः।

मातलिः – (राजानमवलोक्य।) अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान् यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि।

राजा – यथा भवान् मन्यते। (इति स्थितः)

मातलिः – आयुष्मन्। साधयाम्यहम्।

(इति निष्क्रान्तः।)

राजा – (निमित्तं सूचयित्वा।)

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥ १३ ॥

(नेपथ्ये।)

मा खु चापलं करेहि। कहं गदो एव्व अत्तणो पकिदिं। (मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्।)

राजा – (कर्णं दत्वा।) अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष शिक्ष्यते। (शब्दानुसारेणावलोक्य। सविस्मयम्।) अये ! को नु खल्वयमनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्यामबालसत्त्वो बालः।

---

उत्तरोत्तरा। किमनुतिष्ठति किं करोति। दाक्षायणीति मारीचपत्नी। पुण्यं धर्मम् उपाख्यानमिति यावत्। प्रस्तावोऽवसरः। अन्तर् अभ्यन्तरम्।[1899] अशोकेति। त्वमप्यशोको भविष्यसीत्यभिप्रायः। अन्तरमवकाशः, निमित्तं शुभचिह्नम्। बाहो दक्षिणेति शेषः। वामं दोर्नयनं स्त्रीणां, दक्षिणं तु स्फुरेन्नृणामिति शकुनावळ्या(ल्या) म्॥ पूर्वावधीरितं प्राक्प्रत्याख्यातं श्रेयः,[1900] शकुन्तलारूपं, कर्तृ। साम्प्रतमिति शेषः। दुःखं बाधकं सत्। परिवर्तते परितो[1901] वर्तत इत्यर्थः॥ अथ नासूचितस्य पात्रस्य प्रवेशो निर्गमोऽपि वेति लक्षणादि दौष्यन्तिप्रवेशं सूचयति॥

[[नेपथ्य इति]]।[1902] मा खलु चापलं कुरुष्व। कथं गत[1903] एवात्मनः प्रकृतिं, क्षात्रधर्ममिति यावत्। अभूमिर् अस्थानम्।[1904] अबालस्य तरुणवीरस्येव, सत्वं बलं यस्य। मातुः अर्धं पीतः स्तनो येन। आग्रहावसरद्योतकमिदं विशेषणम्। आमर्दन[1906] संघर्षातिशयेन क्लिष्टा व्यत्यस्ताः केसराः सटाः यस्य॥ जृम्भस्व जृम्भस्व[1907] सिंहपोत दन्तांस्ते गणयिष्यामि। सिंहेति कवेः प्रमादः। "ई सिंहजिह्वयो"[1908]-रित्यनुशासनात् सीहेति कथनस्यैव साधीयस्त्वात्। पोतो डिम्भः। "दंताई" इति भ्रान्तः पाठः। दन्ता इत्यमरोक्तेः। "दंता" इति, "दंते" इति वा सुपाठः। "वंदामि[1909] ब्रह्मणाणि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम् ।
पक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ॥ १४ ॥

(ततः प्रविश्यति यथानिर्दिष्टकर्मा सह तपस्विनीभ्यां बालः ।)

**बालः** – जिंभ सिंघ दंताइ दे गणइस्सं । (जृम्भस्व सिंह दन्तांस्ते गणयिष्यामि ।)

**प्रथमा** – अविणीद किं णो अपच्चणिव्विसेसाइ सत्ताइ विप्पआरेसि । हंत वड्डइ दे संरंभो । ठाणे खु इसिजणेण सव्वदमणो त्ति किदणामहेओ सि। (अविनीत! किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि? हन्त वर्धते ते संरम्भः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।

**राजा** – किं न खलु बालेऽस्मिनौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः । नूनमनपत्यता मां वत्सलयति ।

**द्वितीया** – एसा खु केसरिणी तुमं लंघेदि, जइ से पुत्तअं ण मुंचेसि । (एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि ।)

**बालः** – (सस्मितम्) अम्हे बलिअं खु भीदो म्हि । (अहो, बलवत् खलु भीतोऽस्मि ।) (इत्यधरं दर्शयति ।)

**राजा** – महतस्तेजसो बीजं बालोऽयं प्रतिभाति मे ।
स्फुलिङ्गावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थितः ॥ १५ ॥

**प्रथमा** – वच्छ एदं बालमिएंदअं मुंच । अवरं दे कीलणाअं दइस्सं । (वत्स! एतं बालमृगेन्द्रं मुञ्च । अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि ।)

**बालः** – कहिं । देहि णं । (इति हस्तं प्रसारयति ।) (कुत्र । देह्येतत् ।)

---

च मित्ति", "मअणो पंचवि[1910] बाणे मुंचइ[1911]" इति क्रमेण सायणमायणप्रयोगात् । अत्र निमीलिताक्षः[1912] कोऽपि मौनमेव व्याकार्षीत् ।[1913] अविनीत, किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्वानि विप्रकरोषि । हंत, वधते ते संरम्भः । स्थाने[1914] ऋषिजनेन सर्वदमन कृति कृतनामधेयोऽसि । नोऽस्माकम् निर्विशेषाणि समानि । सत्वमस्त्री[1915] टु जन्तुष्वित्यमरः[1916] : विप्रकरोषि धिक्करोषि[1917] । स्थाने युक्तम् सर्वान्[1919] दमयति सर्वदमनः, [[दमु]][1920]उपशमे । एषा खलु केसरिणी[1921] त्वां लंघयति । यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि । केसरिणी सिंही । प्रीत्या पोतकाद्युल्लंघनं सत्वानां नैसर्गिको गुण इति मार्जार्यादिष्वनुभवसिद्धम् ।

अम्हो बलवत्खलु भीतोऽस्मि । अम्हो इति भीतिविस्मयादिद्योतको निपातः ।स्फुलिंगस्य[1922] दशया[1923] आकृत्या । एधे काष्ठेऽपेक्षा वांछा यस्य स वह्निरिव स्थितः[1924] । अयं बाल इत्यन्वयः । तेजसो वींजं कारणम् इदानीमीदृगयं महावीरो भावीति भावः। दशा[1925] त्वाकृत्यवस्थयोरिति[1926] संसारावर्तः । [[एघ सींघन[1927] मेघवदिति विक्रमार्कः । एधोपेक्ष[1928] इत्यदन्तभीताः[1929] केचिदाहुः ॥]][1930]वत्स, मुञ्चैतं बालमृगेन्द्रम्, अपरं ते क्रीडनीयं दास्यामि । ध्वनिश्च ॥ क्व देहि ननु । विरोधे निश्चये नन्विति लिङ्गानुशासनम् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** — कथं तक्रवर्तिलक्षणमप्यनेन धार्यते । तथा ह्यस्य ।

प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो
विभाति जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।
अलक्ष्यपत्रान्तरमिद्धरागया
नवोषसा भिन्नमिवैकपङ्कजम् ॥ १६ ॥

**द्वितीया** — सुव्वदे ण सक्को एसो वाआमेत्तेण विरमावेदुं । गच्छ तुमं । मम केरए उडए मक्कंडेअस्स इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि । तं मे उवहर । (सुव्रते । न शक्य एष वाङ्मात्रेण विरमयितुं । गच्छ । त्वं मदीय उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति तमस्मायुपहर ।)

**प्रथमा** — तह (इति निष्क्रान्ता ।) (तथा ।)

**बालः** — इमिणा एव्व दाव कीलिस्सं । (इति तापसीं विलोक्य हसति ।) (अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि ।)

**राजा** — स्पृहयामि खलु दुर्ललितायास्मै ।

आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै–
रव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन् ।
अअङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति ॥ १७ ॥

**तापसी** — होदु । ण मं अअं गणेदी । (पार्श्वमवलोकयति ।) को एत्थ इसिकुमाराणं (राजानमवलोक्य ।) भद्दमुह एही दाव । मोएहि इमिणा दुम्मोअहत्थग्रहेण डिंभलीलाए बाहीअमाणं बालमिएंदअं ।

---

प्रलोभ्यं प्रलोभ[1931]योग्यं यद्वस्तु क्रीडनीयं तद्विषय इत्यर्थः । जागै विवरै[1932]ग्रंथिता[1993] अनुबद्धा अङ्गळ(ल)यो[1934] यस्य । गवाक्ष विंवरौधेषु[1935] जालमिति रत्नकोशः । चक्रवर्ती[1936] भवेदेष यत्करश्छिद्रितांगुलिरिति[1937] लक्षणप्रपंचेऽभिधानात् । अलक्ष्याणि लक्ष्येतराणि[1938] पत्रान्तराणि पर्णभेदा यस्मिन् इद्धरागयाऽभिवृद्धारुण्यया नवोषसा नूतनाहर्मुखेन,[1939] भिन्नं स्फुटम् । एकेति व्यस्तं विशेषणं चाविति न्यायाद् भिन्नपदं प्रयोज्यम् । अथापि[1940]सर्वेन्द्रियाणां नयनमिति'', ''स्वयं दद(दा?)ति राजेन्द्र त्वा माताः (?) सर्वे[1941] याचका इति च विक्रमचरिते सार्वभौमप्रयोगवद्दयनीयम् । स्त्रीनपुंसकयोरुष[1942] इति नामनिधानम् ॥ सुव्रते न शक्य एष वाङ्मात्रेण विरमयितुम् । गच्छ मदीय उटजे मार्कण्डेयस्या[1943]षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति, तमस्मायुपहर आनयेत्यर्थः । ''मयूरमयूखयोर्वेत्यनेन ''मोरो'' ईति रूपसिद्धिः ।[1945] अमुनैव तावत् क्रीडिष्यामि[1946] शत्रवे दुष्टं ललितं विलासो यस्य ॥ आसमन्तात् ।[1947] अव्यक्तवार्णैर्[1948] अस्फुटाक्षरैः । प्रवृत्तिस्तु प्रकारे चेति रत्नकोशः । ध्वनिश्च । अङ्कस्योत्संगस्याश्रयो[1949] भजनं तत्र प्रणयिनः ॥ भवतु भवतु, न पुनरेष[1950] मां गणयिति । कोऽत्रार्षिकुमाराणाम् । मध्य इति शेषः । भद्रमुख, एहि,

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(भवतु । न मामयं गणयति । कोत्र ऋषिकुमाराणाम् ?। भद्रमुख ! एहि मोचय तावदनेन। दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् ।)

राजा – (उपगम्य सविस्मयम् । अयि भो महर्षिपुत्र !

एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना
संयमः किमिति जन्मनस्त्वया ।
सत्त्वसंश्रयगुणोऽपि दूष्यते
कृष्णसर्पशिशुनेव चन्दनः ॥ १८ ॥

तापसी – भद्दमुह ण खु अअं इसिकुमारओ । (भद्रमुख ! न खल्वयमृषिकुमारः। )

राजा – आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति । स्थानप्रत्ययात्तु वयमेवं तर्किणः । (यथाभ्यर्थितमनुतिष्ठन् बालस्पर्शमुपलभ्य, आत्मगतम् ।)

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण
स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम् ।
कां निर्वृतिं तस्य जनस्य कुर्या-
द्यस्यायमङ्गात् कृतिनः प्ररूढः ॥ १९ ॥

---

मोचय तावदमुना दुर्मोहकार्थग्राहिणा[1951] डिम्भेन लीलया बाध्यमानां बालमृगेन्द्रम् ॥ भद्रं मुखं यस्येति, नामापरिज्ञाने संबोधनम् ॥ दुष्टो मोहो भ्रान्तिर्यस्मिन्दुर्मोहः । दुर्मोह एव दुर्मोहकः,स चासावर्थः सिंहरूपस्तस्य ग्राहिणेत्यर्थः ।[1952] लीला विलासक्रिययोरित्यमरः[1953] । "बाहिअमाणमिति" प्रमादः, "बाहि जंतमिति" सुपाठः ॥

**सत्वसंश्रयः** सत्वाधारो गुणो यस्मिन् । सत्वगुणप्रधानोऽपीति यावत् । संयमो नियमः । जन्मतो जन्मनः प्रभृतीत्यर्थः । दूष्यते[1954] किम् । किं पृच्छायामिति लिंगानुशासनम् ॥ भद्रमुख, न खल्वयमृषिकुमारकः । आकारेति आकृतिचेष्टाभ्यां क्षत्रियकुमार एव, आर्षकस्थान[1955]निवासाद्[1956] ऋषिकुमार इति[[तर्कयाम इति]][1957]भावः । वयमिति बहुवचनामाश्चर्यव्यंजकम् । भीतिविस्मयखेदादौ[1958] बहुत्वं प्रायिकं क्वचिदिति समयकोशः । यथाभ्यर्थितं सिंहशिशुमोचनमित्यर्थः ॥ गात्रेष्वङ्गेषु । वपुष्यवयवे गात्रमिति संसारावर्तः । अत्र गात्रे चेति पठन्[1959]कोऽपि बभ्राम ।[1960] एवम् अनिर्वाच्यं निर्वृत्ति सुखम् । प्ररूढः[1961] सञ्जातः । कृतिनौ[1962] धन्यनिपुणाविति विक्रमार्कः ।[1963] अङ्गादिति । अङ्गादङ्गादिति श्रुतिमन्त्रात् । यममिति ध्वनिः ॥ निर्वर्ण्य दृष्ट्वा[1964] वर्णयित्वेति कोऽपि बभ्राम,[1965] तत्र । निर्वर्णनं[1966] तु निध्यानं दर्शनेत्यमरसिंहेनाभिधानात् ॥ "अचरिअमिति[1967] कवेरितरव्याख्यातुश्च प्रमादः । "अचेरमिति" सुपाठः । आश्चर्यमित्यर्थः । "तूर्यधैर्यसौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु"[1968] इति सूत्रानुशासनात् । अस्य च भवतोऽपि संबन्धसंवादिन्याकृतिरिति विस्मिताऽस्मि । अपरिचितस्यापि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



तापसी – (उभौ निर्वर्ण्य) अच्छरिअं अच्छरिअं। ( आश्चर्यमाश्चर्यम् ।)

राजा – आर्ये ! किमिव ?

तापसी – इमस्स बालअस्स रुवसंवादीणी दे आकिदित्ति विम्हाविद म्हि। अपरिइदस्स वि दे अप्पडिलोमो संवृत्तो त्ति अ। (अस्य बालस्य रूपसंवादिनी ते आकृतिरिति विस्मापितास्मि। अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्त इति च ।)

राजा – (बालमुपलालयन् ।) न चेन्मुनिकुमारोऽयमथ कोऽस्य व्यपदेशः ।

तापसी – पुरुवंसो । (पुरुवंशः ।)

राजा – (आत्मगतम्) कथमेकान्वयो मम। अतःखलु मदनुकारिणमेनमत्रभवती मन्यते। अस्त्येतत् पौरवाणामन्त्यं कुलव्रतम् ।

भवनेषु सुधासितेषु पूर्वं
क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम् ।
नियतैकयतिव्रतानि पश्चा–
त्तरुमूलानि गृहीभवन्ति तेषाम् ॥ २० ॥

(प्रकाशम् ।) न पुनरात्मगत्या मानुषाणामेव विषयः ।

तापसी – जह भद्दमुहो भणादि अच्छरासंबन्धेण इमस्स बालस्स जणणी एत्थ देवगुरुणो तवोवणे पसूदा। (यथा भद्रमुखो भणति अप्सरः- सम्बन्धेनास्य बालस्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता ।)

राजा – (आत्मगतम्) हन्त, द्वितीयमिदमाशाजननम्। (प्रकाशम्) सा तत्रभवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ?

---

तेऽप्रतिलोमा संवृत्त इति च । अप्रतिलोमाऽनुकूलः । प्रतिलोमा तु प्रतिकूल इति व्यपदेशस्तु सम्बन्ध[1969] इति नामनिधानशाश्वतौ। पुरुवंश एषः पूरोर्वंशो यस्य। पूरुरिति कश्चित्तत्र। जन्म यस्य पुरोर्वंश[1970] इति प्रथमाङ्कोक्तिविरोधापत्तेः।[1971] **सुधाभिश्शीर्णैः**। रक्षार्थं रक्षणाय। अथवा रक्षा–रक्षो वार्थः प्रयोजनं यस्य। तं निवासं वासम्[1972] उशन्तीच्छन्ति। रक्षास्त्राण इत्यमरः। तरुमूलानीति पदं कर्तृबोध्यम्॥[1973] मानुषाणाम् ईदृशाबालकादीनाम् आत्मगत्या स्वसंचारेणैष सुरलोक इति शेषः। कथं विषयो[1947] गोचर इत्यर्थः । अत्र ममापि संचारो न स्वतइः, किन्तु मातल्यधीनः ईदशेषु कैमुतिकन्याय इति भावः ।

यथा भद्रमुखो भणत्यप्सरःसंबन्धेनास्य बालस्य जनन्यत्र देवगुरोस्तपोवने प्रसूता । द्वितीयमिति। पूर्वं "पुरुवंश" इति साम्प्रतं परंपरया " अत्र प्रसूतेति", इदं कथनद्वयम् आशाजननं ममेति[1975] भावः। का आख्या नाम[1976] यस्य किमाख्यः। कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**तापसी** — को तस्स धम्मदारपरिच्चाइणो णाम संकित्तइ ? (कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिणो नाम संकीर्तयिष्यति ?।)

**राजा** — (स्वगतम्) इयं खलु कथा मामेव लक्षीकरोति । यदि तावदस्य शिशोर्मातरं नामतः पृच्छामि । अथवा अन्याय्यः परदाराणां व्यवहारः ।

(प्रविश्य मृण्मयूरहस्ता ।)

**तापसी** — सव्वदमण । सउंदलावण्णं पेक्ख । (सर्वदमन । शकुन्त लावण्यं पश्य ।)

**बालः** — (सदृष्टिक्षेपम्) कहिं मे अज्जू । (कुत्र मे माता ?)

**उभे** — णामसारिस्सेण वंचिदो माउवच्छलो । (नामासादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः ।)

**द्वितीया** — वच्छ इमस्स मित्तिआमोरस्स रम्मत्तणं पेक्खत्ति भणिदोसि । (वत्स ! अस्य मृत्तिकामयूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि ।)

**राजा** — (आत्मगतम् ।) किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या । सन्ति पुनर्नामधेयसादृश्यानि । अपि नाम मृगतृष्णिकेव नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते ?

**बालः** — अज्जूए रोअदि मे एसो भद्दमोओ । (क्रीडनकमादत्ते ।) (मातः । रोचते म एष भद्रमयूरः ।)

**प्रथमा** — (विलोक्य, सोद्वेगम् ।) अम्महे रक्खाकरंडअं से मणिबन्धे ण दीसदि । (अहो, रक्षाकरण्डकमस्य मणिबन्धे न दृश्यते ।)

**राजा** — अलमावेगेन । नन्विदमस्य सिंहशाबकविमर्दात् परिभ्रष्टम् ।

(आदातुमिच्छति ।)

---

चिन्तयिष्यति । चिन्तनेऽपि स न योग्य[1977] इति भावः । सर्वदमन, शकुन्तलावण्यं पश्य । शकुन्तस्य पक्षिणः । प्रकृते मयूरस्य लावण्यं सौन्दर्यं, शकुन्तलेति नाम च श्रूयते । अत्र शकुन्तला लावण्यमिति[1978] कोऽपि बभ्राम । "सउंदळावणमि" त्यस्य शकुन्तलावर्णमिति चार्थः । वर्णः कान्तिविशेषः । वर्णः शुक्लादावित्यमरः । स्तुतौ वर्ण इत्यमरोक्त्या वर्णस्तुतिमिति कश्चिदाह, तन्न । पश्येति विरोधापत्तेः । सदृष्टिक्षेपं विकसितनेत्रप्रसारसहितं यथा तथा । क्वा मेऽम्बा । मे ममेत्यर्थः । नामसादृश्येन वञ्चितो मातृवत्सलः । वत्स, अस्य[1979] मृत्तिकामयूरस्य रमणीयत्वं पश्येति भणितोऽसि । अपि ,संभावनायां, नाम प्रसिद्धौ । मातः, रोचते मे एष भद्रमयूरः ।[1980] "अ०जुआ" इति मातृवाचको निपातः । प्रकृत औपचारिकः प्रयोगः । भद्रः शुभः ॥ अम्हो रक्षाकरंडकम् अस्य मणिबन्धे न दृश्यते । अम्हो इति खेदे । "स्यात्करंडक[1981] मस्त्रियामिति" रत्नमाला । वर्तुळ(ल)मुकुळ(ला)कारो[1982] वस्तुविशेषः करंडक शब्दार्थः । प्रकृते करंडकशब्देना[1983]ङ्गळि(लि)सरळे(लो)हेऽयादिनिर्मितोऽर्गळ(ल) सनाथो द्विकोटिकौ

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



उभे — मा क्खु एदं ओलंबअ । कहं गहीदं णेण । (विस्मयादुरोनिहितहस्ते परस्परमवलोकयतः ।) (मा खल्विममालम्ब्य । कथं गृहीतेमनेन ।)

राजा — किमर्थं प्रतिषिद्धाः स्मः ।

प्रथमा — सुणादु महाराओ । एसा अवराजिदा णाम ओसही इमस्स जातकम्मसमए भअवदा मारीएण दिण्णा । एदं किल मादापिदरो अप्पाणं वज्जि अ अवरो भूमिपडिदं ण गेण्हदि। (शृणोतु महाराजः । एषा अपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता । एतां किल मातापितरावात्मनं च वर्जयित्वाऽपरो भूमिपतितां न गृह्णाति ।

राजा — अथ गृह्णाति ।

प्रथमा — तदो तं सप्पो भविअ दंसइ । (ततस्तं सर्पो भूत्वा दशति ।)

राजा — भवतीभ्यां कदाचिदस्याः प्रत्यक्षीकृता विक्रिया ?

उभे — अणेअसो । (अनेकशः ।)

राजा — (सहर्षं । आत्मगतम् ।) कथमिव सम्पूर्णमपि मनोरथं नाभिनन्दामि । (बालं परिष्वजते ।)

द्वितीया — सुव्वदे एहि । इमं उत्तंतं णिअमव्वावुदाए सउंदलाए णिवेदेह्म । (सुव्रते ! एहि। इमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयाव ।)

(इति निष्क्रान्ते ।)

बालः — मुंच मं । जाव अम्माए सआसं गच्छामि । (मुञ्च मां यावदम्बा सकाशं गच्छामि ।)

राजा — पुत्रक, मया सहैव मातरमभिनन्दयिष्यसि ।

बालः — मम खु त । दो दुस्सदो । त तुमं । (मम खलु तातो दुष्यन्तः । कस्त्वम् ।)

---

दैर्घ्यवर्तुळ(ल) श्चतुर्दळो(लो)ष्ट दळो (लो) वस्तुविशेषो वा लक्ष्यते ।[1985] "ता इत इति[1986]महाराष्ट्राः । आवेगः सम्भ्रमः । मा खलु मा खलु कथं गृहीतमनेन । इमं[1987] कुमारम् इत्यर्थः । हस्त इति प्रथमाद्विवचनं स्त्रीस्वभाव इति बोध्यम् ।

शृणोतु[1988] महाराजः । एषा अपराजिता नामौषधिरस्य जातकर्मसमये भगवता मारीचेन दत्ता । एतां किल मातापितरावात्मानं चवर्जयित्वा[1989]परो भूमिपतितां न गृह्णाति । गळे(ले) वा मणिबन्धादौ बद्धा मन्त्रैश्च मन्त्रेता । शिशून् सर्वोपद्रवेभ्यः पालयत्य[1990]पराजितेति मन्त्रसारे ॥ अथ सर्पो

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** – (सस्मितम्) एष विवाद एव प्रत्याययति ।

(ततः प्रविशति एकवेणीधरा शकुन्तला ।)

**शकुन्तला** – विआरकाले वि पिकिदित्थं सव्वदमणस्स ओसहिं सुणिअ ण मे आसा आसी अत्तणो भाअहेएमुं । अह वा जह साणुमदीए आचक्खिदं तह संभावीअदि एदं । (विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न मे आशाऽऽसीदात्मनो भागधेयेषु। अथवा यथा सानुमत्याऽऽख्यातं तथा सम्भाव्यत एतत् ।)

**राजा** – (शकुन्तलां विलोक्य ।) अये सेयमत्रभवती शकुन्तला । यैषा,

> **वसने परिधूसरे वसाना**
> **नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।**
> **अपि निष्करुणस्य शुद्धशीला**
> **मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥ २१ ॥**

**शकुन्तला** – (पश्चात्तापविवर्णं राजानं दृष्ट्वा) ण खु अज्जउत्तो वि अ । तदो को एसो दाणि किदरक्खामंगलं मे गत्तसंसग्गेण दूसेदि । (न खल्वार्यपुत्र इव । ततः क एष इदानीं कृतरक्षामङ्गलं दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति ।)

**बालः** – (मातरमुपेत्य ।) अम्माए एसो को वि परकेरओ मं पुत्तत्ति आलिंगदि । (अम्ब ! एष कोऽपि परकीयो मां पुत्र इत्यालिङ्गति ।)

**राजा** – प्रिये ! क्रौर्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तम् । यदहमिदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातमात्मानं पश्यामि ।

---

भूत्वा दशति । अस्या ओषध्याः । क्रिया परीक्षेत्यर्थः ।[1991] क्रिया कृतिपरीक्षयोरिति विक्रमार्कः । अनेकशः । प्रत्यक्षीकृतेत्यनुषंगः[1992] । सुव्रते एहीमं वृत्तान्तं नियमव्यापृतायै शकुन्तलायै निवेदयावः । मुञ्च मां, यावदम्बायाः सकाशं गच्छामि, यावद् गच्छामि,[1993] गमिष्यामीत्यर्थः । मम खलु तातो दुष्यन्तः, कस्त्वम् । प्रत्याययति विश्वासं प्रापयतीत्यर्थः । एकेति[1994] वियोगवशाद् इति भावः । तदुक्तमादिकविना "एकवेणीधरा दीनति" । विचा(का)रकाले प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वाऽपि न म आशंसाऽऽसीत् ।[1995] आत्मनो भागधेयेषु । अथवा यथा सानुमत्या आख्यातं तथा संभाव्यत एतत् । प्रकृतिस्थां[1996] पुनर्लब्धतया यथास्थानस्थितामित्यर्थः ।[1997] आशंसोत्कण्ठा । आख्यातं पुरेति शेषः ॥

**वसने इति** – अधो[1998] वस्त्रोत्तरीयं इदं द्वितीयाद्विवचनम् । परि परितः । क्षामं कृशम् । लीला विलासक्रिययोरित्यमरः ॥ विवर्णं विगतकान्तिम् ।[1999] न खल्वार्यपुत्र इवेति काकुः । न चेत्कथमित्याशंक्याह – तदो इति । ततः क एष इदानीं कृतरक्षामंगळ(ल) दारकं मे गात्रसंसर्गेण दूषयति । अव्ययानामनेकार्थतया । तत इत्यस्य तर्हीत्यर्थः । अत एव – "अर्थात् प्रकरणाल्लिङ्गादौचित्यादर्थनिर्णय" इति कवीनां समयः । तरिहीति क्वचित्पाठः । दारकं पुत्रम् । दूषयति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**शकुन्तला** – (आत्मगतम् ।) हिअअ समस्सस । परिच्चत्तमच्छरेण अमुअंपिअ म्हि देव्वेण । अज्जउत्तो एव्व । (हृदय । समाश्वसिहि । परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पिताऽस्मि दैवेन । आर्यपुत्र एव ।

**राजा** – प्रिये !

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि मे सुमुखि ।
उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम् ॥ २२ ॥

**शकुन्तला** – जेदु जेदु अज्जउत्तो । (इत्यर्धोक्ते बाष्पकण्ठी विरमति ।)

(जयतु जयत्वार्यपुत्रः ।)

**राजा** – सुन्दरि ।

बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं मया ।
यत्ते दृष्टमसंस्कारपाटलोष्ठपुटं मुखम् ॥ २३ ॥

**बालः** – अज्जूए को एसो ? । (मातः । कः एषः ?)

**शकुन्तला** – वच्छ दे भाअहेआइ । पुच्छ । (वत्स ! ते भागधेयानि पृच्छ ।)

**राजा** – (शकुन्तलायाः पादयोः प्रणिपत्य ।)

सुतनु हृदयात् प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपि मनसः संमोहो मे तदा बलवानभूत् ।
प्रबलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया ॥ २४ ॥

**शकुन्तला** – उट्ठेदु अण्णउत्तो । णूणं मे सुअरिअप्पडिबंधअं पुराकिदं तेसु दिअहेसु परिणामाहिमुहं आसी । जेण साणुक्कोसो वि अज्जवुत्तो मइ विरसो संवुत्तो । (उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखमासीत् येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः ।)

---

मलिनयति । अम्ब, एष कोऽपि परकेरकः मां पुत्र इत्यालिङ्गति । परकीयस्तु परकेरक इति संसारावर्तः । त्वयि विषये । पश्यामि । [[पूर्वं ना पश्य(श्या) मि(मी) त्यर्थः]]2000मया तु त्वं नैव प्रत्यभिज्ञातासीति भावः । हृदय, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । परित्यक्तमत्सरेणेवानुकम्पिताऽस्मि दैवेन । आर्यपुत्र एवैषः ॥

स्मृत्या स्मरणेन । भिन्नं भेदितम् मोहतमोऽज्ञानतिमिरं यस्य । दिष्ट्या दैवात् । उपरागान्ते2001 ग्रहणावसाने । योगं संगतिम् ॥ जयत्वार्यपुत्रः । बाष्पः कण्ठे यस्याः । किंनर कण्ठीति जयदेवः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(राजोत्तिष्ठति ।)

**शकुन्तला** – अह कहं अज्जउत्तेण सुमरिदो दुक्खभाई अअं जणो । (अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभागी अयं जनः ।)

**राजा** – उद्धृतविषादशल्यः कथयिष्यामि ।

मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते
यो बाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः ।
तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य
बाष्पं प्रमृज्य विगतानुशयो भवामि ॥ २५ ॥

(इति यथोक्तमनुतिष्ठति ।)

**शकुन्तला** – (नाममुद्रां दृष्ट्वा) अज्जउत्त एदं तं अंगुलीअअं । (आर्यपुत्र । एतत् तदङ्गुलीयकम् ।)

**राजा** – अस्मादङ्गुलीयोपलम्भात् खलु स्मृतिरुपलब्धा ।

**शकुन्तला** – विसमं किदं णेण । जं तदा अज्जउत्तस्स पच्चाअणकाले दुल्लहं आसी । (विषमं कृतमनेन यत्तदाऽऽर्यपुत्रस्य प्रत्यायनकाले दुर्लभमासीत् ।)

**राजा** – तेन ह्यृतुसमवायचिह्नं प्रतिपद्यतां लताकुसुमम् ।

---

**संस्कारेण** तांबूलादिनेति[2002] यावत् । एतेनातिपातिव्रत्यं व्यज्यते । अत एव जितमिति भावः ॥ अम्ब, को वा एषः । वत्स, ते भागधेयानि पृच्छ ॥ प्रणिपत्येति । "धन्याः प्रणमन्ति सुन्दरीः पुरुषा" इति मयूरः ॥ व्यळी( ली )कं त्वप्रियेऽनृत इत्यमरः । किमपीति व्यळी(ली) कविशेषणम् । प्रबलतमसां महाभ्रमाणां नृणामिति शेषः । शुभेषु वस्तुषु । वृत्तयः वर्त्तनानि । एवम् ईदृशानीत्यर्थः । अत्रार्थान्तरन्यासमाह[2003] स्रजमिति । उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । नूनं मम सुचरितं प्रतिबन्धकं पुरा । येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथाविधः संवृत्तः । एतेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखम् आसीत् । सुचरितमित्यनुषङ्गः । सुकृतमित्यर्थः । अथ कथमार्यपुत्रेण स्मृतो दुःखभागी[2004] अयं जनः । अहमित्यर्थः ॥ परीति – स्वपतनेनेति[2005] शेषः । अधरस्यामिमार्दवं लक्ष्यते । आसमन्तात् पक्ष्मणि विलग्नं सक्तम् । पक्ष्मणो नैबिड्यं सूच्यते । अनुशयः पश्चाता(त्ता)पो, यथोक्तं बाष्पप्रमार्जनम् । एतच्च मुद्राविलोकनायोपक्रान्तमिति बोध्यम् ॥। आर्यपुत्र, एतत्तदंगुळी(ली) यकम् ।

विषमं कृतमनेन । विषमम् अयुक्तमिति यावत् । यत्तावदार्यपुत्रस्य प्रत्यायनकाले दुर्लभमासीत् । प्रत्यायनं विश्वासप्रापणम् । इदम् अङ्गुळी(ली) यकमित्यर्थः । नास्त्यत्र मे विश्वासः । आर्यपुत्र एव ननु धारयतु । अत्र अङ्गुळी(ली) यके प्रविश्येति । अत्र पात्रासूचनं प्रमादः । संपादितत्वात् संपादनात् । न खल्विति काकुः । यमेति ध्वनिः । ईश्वराणां महताम् । परोक्षम् अप्रत्यक्षम् । लज्ज आर्यपुत्रेण सह

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



गुरोः समीपं गन्तुम् ॥ एवमिति । यथा मयोच्यते तथैवेति भावः । कालेष्वित्यत्र

**शकुन्तला** — ण मे एत्थ विस्सासो । अज्जउत्तो एव्व णं धारेदु । (न मेऽत्र विश्वासः । आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु ।)

(ततः प्रविशति मातलिः ।)

**मातलिः** — दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते ।

**राजा** — सुह्यत्सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथः । मातले न खलु विदितोऽयमाखण्डलेन वृत्तान्तः स्यात् ?

**मातलिः** – (सस्मितम् ।) किमीश्वराणां परोक्षम् । एह्यायुष्मन्, भगवानन्मारीचस्ते दर्शनं वितरति ।

**राजा** — शकुन्तले । अवलम्ब्यतां पुत्रः । त्वां पुरस्कृत्य भगवन्तं द्रष्टुमिच्छामि ।

**शकुन्तला** — हिरिआमि अज्जउत्तेण सह गुरुसमीव गन्तुम् । (जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरोस्समीपं गन्तुम् ।)

**राजा** — अयि एवमाचरितव्यमभ्युदयकालेषु । एह्येहि ।

**( सर्वे परिक्रामन्ति ।)**

(ततः प्रविशत्यदित्या सार्धमासनस्थो मारीचः ।)

**मारीचः** — (राजानमवलोक्य ।) दाक्षायणि !

**पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी**
**दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य गोप्ता ।**
**चापेन यस्य विनिवर्तितकर्म जातं**
**तत्कोटिमत् कुलिशमाभरणं मघोनः ॥ २६ ॥**

**अदितिः** — संभावणीआणुभावा से आकिदी । (संभावनीयानुभावाऽस्याकृतिः ।)

**मातलिः** — आयुष्यमान् ! एतौ पुत्रप्रीतिपिशुनेन चक्षुषा दिवौकसां पितरावायुष्मन्तमवलोकयतः । तावुपसर्प ।

---

समयेष्विति सुपाठः ॥ दाक्षायणीति अदितिं प्रति संबोधनम् । ते तव । पुत्रस्येन्द्रस्य । यस्य दुष्यन्तस्य । चापेन विनिवर्त्तितं कर्मजातं युद्धकृत्यसमूहो यस्मात् । तत् प्रसिद्धम् । कोटिधरिति[2006] लिङ्गनिर्णयः । धार इति महाराष्ट्राः । आभरणं[2007] कटकाङ्गुळी(ली) यकादिनिर्विशेषमिति[2008] भावः । देवमाता[2009] अदितिः । संभाावनीयानुभावाऽस्याकृतिः । अनुभावः[2010] प्रभावः । एतावदिति मारीचौ । पिशुनेन[2011] सूचकेन । चक्षुषेत्येकवचने मूढाश्चक्षुर्भिरिति[2012] केचिदाहुस्तत्तु[2013] छन्[द]दृष्ट्यापि वावीक्षत इति मूकः । जीवयन्ति दृशेव या इति राजशेखरः । कचे[2014] शैवले मग्नाऽद्रितुङ्गे[2015] कुच इत्यौतरहाश्च[2016] ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



राजा – मातले !

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयो यत्तेजसः कारणं
भर्तारं भुवनत्रयस्य सुषुवे यद्यज्ञभागेश्वरम् ।
यस्मिन्नात्मभुवः परोऽपि पुरुषश्चक्रे भवायास्पदं
द्वन्द्वं दक्षमरीचिसंभवमिदं तत् स्त्रष्टुरेकान्तरम् ॥ २७ ॥

मातलिः – अथ किम् ।

राजा – (उपगम्य ।) उभाभ्यामपि वासवनियोज्यो दुष्यन्तः प्रणमति ।

मारीचः – वत्स, चिरं पृथिवीं पालय ।

अदितिः – वच्छ अप्पडिरहो होहि । (वत्स ! अप्रतिरथो भव ।)

शकुन्तला – दारअसहिदा वो पादवंदणं करेमि । (दारकसहिता वां पादवन्दनं करोमि ।)

मारीचः – वत्से !

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते योग्या पौलोम्याः सदृशी भव ॥ २८ ॥

अदितिः – जादे भत्तुणो बहुमदा होहि । अवस्सं दीहाऊ वच्छओ उहअकुलणंदणो होदु । उवविसद । (जाति, भर्तुर्बहुमता भव । अवश्यं दीर्घायुर्वत्स उभयकुलनन्दनो भवतु । उपविशत ।)

(सर्वे प्रजापतिमभित उपविशन्ति ।)

---

यच्छब्दत्रयं द्वन्द्व[2017] परामर्शीति बोध्यम् । तेजसः सूर्यस्य । द्वादशात्मदिवाकरा इत्यमरः । भर्तारम् इन्द्रम् । ईश्वरं मुख्यम् । आत्मभुवो ब्रह्मणोऽपि पर उत्कृष्टः, पुरुषो नारायणः । यस्मिन् द्वन्द्वे ।[2018] भवायोत्पतये ।[2019] आस्पदं स्थान् ।[2020] चक्रे चकार । तदिदं स्त्रष्टुर्विश्वसृजः । एकम् अन्तरं व्यवधानं यस्य । दक्षमरीचिभ्यां संभावो जन्म यस्य । द्वन्द्वं मिथुनम् । जयतीति शेषः । आत्मभूर्दक्षो मरीच[ः]स्त्रष्ट(ष्टे) त्याद्याः प्रजापतिविशेषास्त एते पुराणगम्याः ॥ नियोज्यः किंकरः । अप्रतिरथो भव । दारकसहिता[2022] वां पादवन्दनं करोमि ॥ जयन्तः प्रतिमा प्रतिबिम्ब यस्य । प्रतिबिम्बं प्रतिमेत्यमरः । अत्र बहवो भ्रमन्ति । ते तव । पौलोम्या शच्या ॥[2023]जाते, भर्तुर्बहुमता भव । अवश्यं दीर्घायुर्वत्स उभयकुशलानन्दनो[2024] भवतु । स्वतः स्वैरमवश्यं चेत्यगस्त्यः । उपविशता(ति) ।[2025] प्रजापतिमभितो, मारीचं परितः, ध्वनिश्च ॥ श्रद्धा भक्तिर्ध्वनिश्च । वित्तं धनम् । विधिर् अवश्यकर्त्तव्यता । इत्युक्तप्रकारेण त्रितयं त्रयम् । दिष्ट्या वः समागम इति योज्यम् । प्रात्र आदौ । अभिप्रेताऽभिप्रायस्थिता[2026] चासौ सिद्धिः । प्रेतेति ध्वनिः । व इति पूजायां बहुत्वम् ॥ घनो मेघः । पयो जलम् । निमित्तनैमित्तिकयोः[2027]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**मारीचः** — (एकैकं निर्दिशन्।)

**दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।**
**श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं वः समागतम्॥ २९॥**

**राजा** — भगवन् प्रागभिप्रेतसिद्धिः पश्चाद् दर्शनम्। अतोऽपूर्वः खलु वोऽनुग्रहः। कुतः —

**उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं**
**घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः।**
**निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रम-**
**स्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः॥ ३०॥**

**मातलिः** — एवं विधातारः प्रसीदन्ति।

**राजा** — भगवन्, इमामाज्ञाकरीं वो गान्धर्वेण विवाहविधिनोपयम्य कस्यचित् कालस्य बन्धुभिरानीतां स्मृतिवैकल्यात् प्रत्यादिशन्नपराद्धोऽस्मि। तत्रभवतो युष्मत्सगोत्रस्य कण्वस्य। पश्चादङ्गुलीयकदर्शनादूढपूर्वां तद्दुहितरमवगतोऽहम्। तच्चित्रमिव मे प्रतिभाति।

**यथा गजो नेति समक्षरूपे**
**तस्मिन्नतिक्रामति संशयः स्यात्।**
**पदानि दृष्ट्वा तु भवेत् प्रतीति-**
**स्तथाविधो मे मनसो विकारः॥ ३१॥**

---

कारणकार्ययोः। तव प्रसादस्य तु संपदः पुरोऽग्रतो वर्तत[2028] इति शेषः। निर्निमित्तफलप्रदो भवान्[2029] इति भावः॥ एवं यथोक्तं[2030] तथा। विधातार इति पूजायां बहुत्वं, मारीतरूपाइत्यर्थः। इमां शकुन्तलाम्। कालस्येति संबन्धे षष्ठी लौकिकव्यवहार प्राबल्याद्वा बोध्या। कालस्योपगमादिति क्वचित्पाठः। सोऽपराद्धोऽपराधं यः प्राप्त इत्यमरशेषः। सगोत्रस्य ज्ञातेः[2031]। अवगतोऽवगतवानित्यर्थः। गतावगतवत् पीतभुक्ताद्या इति समयपद्धतिः। तत् – चरितमिति शेषः। चित्रमाश्चर्यम्।

तद्दृष्टान्तमुखेनोपपादयति – यथेति समक्षरूपे प्रत्यक्षविषयीभूतस्वरूपे[2032] वस्तुनि गजो नेति भ्रम इति शेषः। तस्मिन्वस्तुन्यतिक्रामति गच्छति[2033] सति गजो वा नो वेति संशयः स्यात्। तु शब्दः पूर्वास्माद् वैषम्यं द्योतयति। तु पश्चाद् इति यावत्। पदानि गजावस्थानगमनपदानि दृष्ट्वा, द्रष्टेति शेषः। प्रतीतो गज एवेति प्रतीतिमान्। "प्रतीत" इति कर्तरि निष्ठा।[2034] प्रतीतिर्ज्ञानमिति त्रिकाण्डी। ज्ञानवान् यथा भवेत्। मे मम। मनसो विकारः। तथाविध इत्यर्थः। तथा च गजो नेति भ्रम इव शकुन्तला न व्यूढेति भ्रमः। तद्गमने[2035] गजो वा नो वेति संशय इव शार्ङ्गरवा[2036] [[दिवचसा[2037] व्यूढा वा नेति संशयः। पददर्शने गज एवेति निश्चय इवाङ्गुळी(ली) यकदर्शनेन[2038] मत्कलत्रमेवेति निश्चयात्मना ज्ञानवानहं जात इति भावः। इतरः कोऽपि व्याकुर्वन्नत्र श्लोके बहुशो भ्रमन्नुपस्छ(स्थ) रहितकन्यादानं चकार। सदसदवगमने विशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक्॥ आत्मनः स्वस्मात्। उपचारः। प्रत्यादेशरूपः प्रत्यवायः। तस्य शङ्का आक्षेपः। तेनालम् अलम् इति निवारणे। अलं निवारणे शक्तौ

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मारीचः — वत्स ! अलमात्मापचारशङ्कया । संमोहोऽपि त्वय्युपपन्नः । श्रूयताम् ।

राजा — अवहितोऽस्मि ।

मारीचः — यदैवाप्सरस्तीर्थावतरणात् प्रत्यादेशविक्लवां शकुन्तलामादाय मेनका दाक्षायणीमुपगता तदैव ध्यानादवगतोऽस्मि दुर्वाससः शापादियं तपस्विनी सहधर्मचारिणी त्वया प्रत्यादिष्टा नान्यथेति। स चायमङ्गुलीयकदर्शनावसानः ।

राजा — (सोच्छ्वासम् ।) एष वचनीयान्मुक्तोऽस्मि ।

शकुन्तला — (स्वगतम् ।) दिट्ठिआ अकारणपच्चादेसी ण अज्जउत्तो । ण खु सत्तं अत्ताणं सुमरेभि । अह वा पत्तो मए स हि सावो विरहसुण्णहिअआए ण विदिदो। अदो सहीहिं संदिट्ठम्हि भत्तुणो अंगुलीअअं दंसइदव्वं त्ति । (दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी नार्यपुत्रः। न खलु शप्तमात्मानं स्मरामि । अथवा प्राप्तो मया स हि शापो विरहशून्यहृदयया न विदितः । अतः सखीभ्यां संदिष्टास्मि भर्तुरङ्गुलीयकं दर्शयितव्यमिति ।)

मारीचः — वत्से विदितार्थाऽसि । सहधर्मचारिणं प्रति न त्वया मन्युः कार्यः । पश्य ।

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव ।
छाया न मूर्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा ॥ ३२ ॥

राजा — यथा भगवानाह । अत्र खलु मे वंशप्रतिष्ठा ।

मारीचः — तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान् । पश्य ।

---

भूषणे चेति विश्वः। संमाहो भ्रमातिशयः[2039]। उपपन्नो युक्तः। वैक्लव्यं प्रत्याख्यानादिरूपम्[[स शाप इत्यर्थः दर्शनेना]][2040]वसानमन्तो यस्य। दिष्ट्याऽकारणप्रत्यादेशी[न]आर्यपुत्रः। न खलु सत्यं(शप्तं) तदा अहम् आत्मानं स्मरामि। कारणेन शापनिमित्तेन। ननु स्वतः इति भावः। तदा प्रत्यादेशावसर आत्मानं सत्यं (शप्तं?) यथार्थं न स्मरामि खलु। दैन्य खेद-कोपातिशयादात्मैव मया विस्मृता इति भावः । सत्यमित्यमूनि त्रिषु तद्वतीति (?)। आत्मनो धृतिर्बुद्धिरिति चामरः । आत्मविस्मरणे दैन्यादिकमेव न हेतुरन्यदप्यस्तीत्याह अहवेति। अथवा प्राप्तो>>[2041]मया शापो विरहशून्यहृदयया। विरहेण पूजातिक्रमान्मुनिशापः प्राप्त इति भावः । ननु अभीज्ञानदर्शनेन शापान्तो मुनिनाऽभिहित इत्याशंक्याह - अदो इति। अतः सखीभ्यां संदिष्टास्मि भत्रेऽङ्गुळी(ली) यकं दर्शनीयमिति। अतो मुन्यभिधानादित्यर्थः। मन्युः[2042] कोपः। अपेतमनसि विस्मृतहृदये। स्मृतेःरोधेन निरोधेन। रक्षे कटुके, प्रतिकूल इति यावत्। भर्त्तरि शापात् प्रतिहताऽसि। अस्मृतिरोधरुक्षे सस्मरणानुकूले भर्तरि प्रभृता स्वतन्त्रता तवैव[2043] अस्तीति शेषः। अत्र संमतिमाह - छायेति। न विभाति न प्रकाशते। तले प्रदेशे। अवकाशः प्रतिफलनम् निर्गतशापतया भर्त्ता तवानुकूल इति भावः। अत्र शकुन्तलायाम् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



रथेनानुत्खातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः ।
इहायं सत्त्वानां प्रसभदमनात् सर्वदमनः
पुनर्यास्यत्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात् ॥ ३३ ॥

राजा — भगवता कृतसंस्कारे सर्वस्मिन् वयमाशंसामहे ।

अदितिः — भअवं इट्ठाए दुहिदुमणोरहसंपत्तीए कण्णो विदाव सुदवित्थारो करीअदु। दुहिदुवच्छला मेणआ इह एव्व मं परिचरन्ती चिट्ठदि । (भगवन्, अस्या दुहितृमनोरथसंपत्तेः कण्वोऽपि तावच्छ्रु तविस्तारः क्रियतां, दुहितृवत्सला मेनकेहैव मां परिचरन्ती तिष्ठति ।)

शकुन्तला — (आत्मगतम् ।) मणोरहो खु मे भणिदो भअवदीए । (मनोरथः खलु मे भणितो भगवत्या ।)

मारीचः — तपःप्रभावात् प्रत्यक्षं सर्वमेतत्तत्रभवतः कण्वस्य ।

राजा — अतः खलु मामनभिक्रुद्धो मुनिः ।

मारीचः — तथाप्यसौ प्रियमस्माभिः प्रष्टव्यः । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य ।)

शिष्यः — भगवन् अयमस्मि ।

मारीचः — गालव, इदानीमेव विहायसा गत्वा मद्वचनात् तत्रभवते कण्वाय प्रियमावेदय। यथा पुत्रवती शकुन्तला तच्छापनिवृत्तौ स्मृतिमता दुष्यन्तेन प्रतिगृहीतेति ।

शिष्यः — यदाज्ञापयति भगवान् । (इति निष्क्रान्तः ।)

मारीचः — वत्स त्वमपि स्वापत्यदारसहितः सख्युराखण्डलस्य रथमारुह्य राजधानीं प्रतिष्ठस्व।

---

तथेति वाक्यखंडः । अनुत्खाते समदेशे स्तिमिता[2044] निश्चला गतिर्यस्य, तेन रथेन । उत्खातं विषमं देशमाहुरित्यगस्त्यः । वसुधां भूमिम् । पुरा जयति जेष्यतीत्यर्थः । सत्वानां सिंहादि- हिंस्रजन्तूनाम् । प्रसभो बलात्कारः । आख्यां(ख्या) नाम । लोकस्य भुवनस्य भरणात् पालनात् ॥ संस्कारे जातकर्मादिरूपे । संस्कार इति ध्व ८८ नि: ।[2045] भगवन्, अनया दुहितृमनोरथ संपत्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम् । दुहितृवत्सला मेनका इहैव मां परिचरन्ती तिष्ट(ष्ठ) ति ।

मनोरथो मे भणितो भगवत्या । अतः सर्वज्ञ]][2046][[–त्वाद्धेतोः ।[2047] माम् उदि(द्दि) श्य । यद्यपि सर्वज्ञ इत्यादि तथापीति प्रियमधिकृत्येति शेषः । तस्य दुर्वाससः शापनिवृत्तौ शापापगमे सति । स्वस्यापत्येन दारैश्च ॥ बिडौजा इन्द्रः । तव प्रजासु विषये । प्राज्या बहुला वृष्टिर्यस्मात् । विततयज्ञो विस्तृताध्वरः । अलं पर्याप्तं यथा तथा । स्वर्गिणो देवान् । भावय संमायन । एवम् अनेन प्रकारेण । अन्योन्यकृत्यैः परस्परोपकारविनियमैः । युगशतानां परिवर्तान् परिभ्रमान् । नयतम् । युवामिति शेषः ॥ श्रेयः सुकृतमोक्षयोरिति विक्रमार्कः ॥ प्रयतिष्ये प्रयत्नं करिष्यामि ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**राजा** — यदाज्ञापयति भगवान् ।

**मारीचः** — अपि चं

तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु
त्वमपि विततयज्ञः स्वर्गिणो भावयालम् ।
युगशतपरिवर्तानेवमन्योन्यकृत्यै-
र्नयतमुभयलोकानुग्रहश्लाघनीयैः ॥ ३४ ॥

**राजा** — भगवन् । यथाशक्ति श्रेयसे यतिष्ये ।

**मारीचः** — वत्स, किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ?

**राजा** — अतः परमपि प्रियमस्ति । यदीह भगवान् प्रियं कर्तुमिच्छति तर्हीदमस्तु भरतवाक्यम् -

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥ ३५ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

॥ इति सप्तमोऽङ्कः ॥

॥ अभिज्ञानशाकुन्तलं समाप्तम् ॥

---

उपहराम्युपहारीकरोमि । उपहारस्तथोपदेत्यमरः । भेटि[2048] इति महाराष्ट्राः । अत इदानीं कृतात् प्रियादपि परम् अन्यत् उत्तमं>>[2049] च प्रियं भवान्मन्यत इति <<काकुः, न मन्यत इत्यर्थः । यद्यपि न>> मन्यते तथापीति योज्यम् । भरतेति<<येन नान्दीकृतारम्भे तेन ग्रन्थस्य पूरणे>> आशीर्या क्रियते तद् भरत<<वाक्यमुच्यत इति रूपकादर्शोक्तेः । प्रकृतीनां प्रजानां>> श्रुतेन शब्दब्रह्म<<श्रवणेन महतां कवीनाम् इत्यर्थः । "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति" इति स्मरणात् । सरस्वती कृतिरूपेति भावः । महीयताम्>>पूज्या<<भवतु । महीयते विजयते जयतीति माठरः । महीयसी – महीयसामिति भ्रान्तौ पाठौ । तिङ्पदाभावेन प्रक्रमभंगात् । पूर्वार्धेन धर्मार्थकामानुक्त्वा[2050] उत्तरार्धेन सायुज्यनिदानं प्रार्थयते । अपि चेति । परिपरितोऽन्तर्बहिश्चेत्यर्थः ।[2051] गता प्राप्ता शक्तिर्यं । अत एव शिवः शक्त्या युक्तो यदीति भगवत्पादाः । आत्मनि स्वस्मिन्नेव भूः स्थानं यस्य । भुवनमात्रस्यात्मत्वादिति भावः । भूः प्रदेशेक्षितौ स्थान इति विक्रमार्कः । नीललोहितः परमेश्वरः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहित इति]]>>[2052] [[नीललोहितश्चांतकान्तक इत्यमरजयौ । मम पुनर्भवम् आगामि जन्म । क्षपयतु स्वंस्छापयतु । तथा चे (चै) कः परमेश्वर एव । चतुर्दशभुवननिर्माणशासनधौरंधरीचतुरचतुराननदंडधरखंडकतया जन्मलययोर्लयप्रद्स्तव्यतिरित्कोषु त्रयस्त्रिशंकोटिसंख्याकेष्वदितिनंदनेषु कश्चिदयोध्याद्वार-वत्यादिषु स्थलजलेषु प्रतियुगं जन्मलययोरधीनी भवतीति कवेर्भाव इति दिक् ॥ इति महाराजपद...[2053] ।

शाकुन्तलसंजीवनाख्यटिप्पणे सप्तमोऽङ्कः ॥

सम्पूर्णमिदं धनश्यामपण्डितीयं शाकुन्तलव्याख्यानम् ॥]]

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# सञ्जीवन-टिप्पणस्य पाठान्तरादीनां प्रदर्शनम्

## सङ्केत-ग्रहणम्

(१) A. = अड्यार लाईब्रेरी (मद्रास = चेन्नाई) (PM No. 1019)
(2) T-1 = तांजोर (= थांजुवरम्) महाराजा सरफोजी सरस्वती महल लाईब्रेरी, तांजोर MS No. 4309
(३) T-2 = तांजोर.....सरस्वतीमहल लाईब्रेरी, MS. No. 4310
(४) T-3 = तांजोर...सरस्वतीमहल लाईब्रेरी, MS. No. 4310

1. टी-1 इत्यत्रैव प्राप्यत इदं वाक्यम् ॥ ए - इत्यत्र - 'शाकुंतला(ल) व्याख्यानं घनशा(श्या) म पंडितीयं आरंभ - (रभ्यते), इति प्राप्यते ॥
2. टी-3, इतिं मातृकायां "नत्वा" इत्यत आरभ्य, तृतीयाङ्कस्य प्ररम्भपर्यन्तः पाठो नैव सम्प्राप्यते। (द्रष्ट्वा पादटिप्पणी - 574)
3. ए-वाक्यमिदं पठितुं न शक्यते।
4. टी-1 निर्वाणानय
5. टी-1० मस्माकंमास्ते
6. टी-1 मयन्निलैप०
7. टी-2, स....विजरी० इति त्रुटितः पाठः ॥
8. टी-2 ति....कं इति त्रुटितः पाठः ।
9. ए० पठितुं न शक्यते।
10. टी-2 भुग्यनयोर्
11. ए-मत्कृतिं, टी-2 मत्कृति
12. टी-1 कुर्यान्ध्येन्मधुवरि, ए - ०मधुवैरी०
13. टी-1 संसृत्य
14. टी-1 प्रतिगतः
15. टी-1 कण्ठात्मनः
16. टी-1 प्रामातणिकै
17. टी-2 ०जषो
18. ए-सिवयो०
19. टी-2 सूंदरी
20. ए-एवं टी-2 महादेवजः
21. ए-इत्यत्र पठितुं न शक्यते।
22. टी-1 नम्नः
23. ए-टी-1 घनश्याम
24. टी-2 कविनां
25. टी-1 वेति
26. टी-1गोवम्हणा
27. टी-1 संदरी०
28. टी-1 षष्टी
29. ए-गौरिशोऽपि
30. टी-1 बौद्धान्तकद्
31. टी-1 ततामृ
32. टी-1 प्रसिद्धे तत्
33. ए-ग्रन्थार्थेष्वेलसो, टी-2 ग्रन्थार्थेष्वल.
34. टी-2 स्छले
35. ए. दक्ष्यै, टी-2. दक्षैरदं
36. टी-1 स्यार्दुपादेयता
37. टी-1 स्त्रिचतुरः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



38. टी-1 धोरणी:, टी-2 सशब्दधोरणी:
39. ए-दिपिका०
40. टी-1 व्यत्पन्नता
41. टी-1 युत्पत्ति
42. ए-एवं टी-2 लेखकवां
43. टी-1 सदूर्णं
44. टी-1 दूते, टी-2 ब्रते
45. ए-नांद्यते ।
46. टी-1 सर्गे:
47. टी-1 काव्यनाटके वेति
48. ए-यौके., टी-2 योकैर्वदेतं मे
49. टी-1 चापेय.
50. टी-2 प्रायां०
51. टी-1 पाठझरीयं
52. ए-मलिम्लुतांव्याकुमोचो
53. टी-1 बलेशय
54. टी-2 विर्ते
55. ए-टी-2 कुर्मोऽद्य
56. ए गीरः
57. टी-1 चक्रमणै:
58. टी-2 किमन्यन्दचत०
59. टी-1 प्रमादाद्
60. टी-1 ०भिर
61. ए-एवं टी-2 प्राज्ञानात्र
62. टी-1 वा: भगवती, टी-2 वाग्भत्रती
63. ए-एवं टी-2 निमीति
64. टी-2 शृणुतत,
65. टी-2 भाभुङ्ध्वं
66. टी-1 जीवितशिशु:
67. टी-1 अत्र
68. टी-2 षष्ट्यंशय्योज्वले,
69. टी-1 मुख्ये
70. टी-2 केष्वप्यति
71. टी-1 प्रेयस्योर्मर्म.
72. टी-1 पुष्पवन्तात्मिके
73. ए-टी-2 ०स्छायि०
74. ए-नटि
75. ए-वैखानसौ
76. टी-2 दौतछिष्टै
77. ए-कास्यपाख्या
78. टी-1 ०पतरिव
79. टी-1 शेकुंतलेति
80. टी-1 शकुंतलया:
81. ए - द्वै
82. टी-1 ए-एवं टी-2 प्रियंवदा
83. टी-1 कौशिस्तात, ए-कौशिकस्तात
84. ए-एवं टी-2 गौत्तमी
85. टी-1 द्वास्थौ
86. ए-रेवतका०
87. ए-आर्यस्तत्०
88. टी-1 ०प्रेष्य
89. कण्वशिष्य इति स्यात् ?
90. टी-1 ज्ञेयां०
91. टी-2 कश्यपर्षि: शार्गुरवः, टी-1 शार्गुरवः
92. टी-1 नहीपते:
93. टी-1 प्रतीहारी
94. टी-1 वेत्रवर्ती
95. टी-1 ए-टी-2 वैताळि
96. टी-1 ए-एवं टी-2 वुभौ
97. टी-1 सालो
98. टी-1, ए-टी-2 श्रेष्टा
99. ए-कंचुकि
100. टी-1 शक्तावतरं
101. टी-1 तीर्थमंत्र

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



102. टी-1 शर्चीं
103. ए-षष्टेंके
104. टी-1 दौष्यति
105. टी-1 कटुः
106. टी-2 ०शष्यो
107. टी-1 गन्थे
108. टी-1 पुनरुक्ति
109. टी-1 व्यत्पत्रै.
110. टी-1 सविधानं
111. टी-1 कंवि
112. टी-1 भाग्यनिमित्र.
113. टी-1 कामुकराजन०
114. टी-1, ए-काळिदास.
115. टी-1 इत्यत्र नोपलभ्यते ।
116. टी-1, ए-मंगळम्
117. टी-2 अत एव
118. टी-1 तनुरुति
119. टी-1 ०ज्याविकां
120. ए-होमिनिति
121. टी-1 यस्या
122. टी-1 वा
123. टी-1 योम
124. ए-गण
125. ए-भुतानां
126. टी-1 भूता
127. टी-1 द्र्वव
128. टी-2 प्रधानेषुपमातरीति
129. ए ०चलनेत
130. टी-1 नादी०
131. टी-2 विदुषकम्
132. टी-1 विधान
133. टी-2 भ्वत्येति
134. टी-1, ए-टी-2 अज्ञापयतु
135. ए. अनुष्ठीयतां
136. द्रष्टव्यम् - ष्मपक्ष्मविस्मयेषु म्हः ॥ (प्राकृतप्रकाशः 3-32)
137. द्रष्टव्यम् - र्य शय्याभिमन्युषु जः । (प्राकृतप्रकाशः 3-17)
138. द्रष्टव्यम् - नो णः । (प्रा. प्र. 2-38)
139. द्रष्टव्यम् - कगचजतदपयवां प्रायो लोपः । (प्रा. प्र. 2-2)
140. टी-1, ए,टी-2 नायक
141. ए - संति ति भावः ।
142. टी-1 वेषायोगा (?) एवं ए-टी-2 वेषायोग्य (?) ॥
143. ए एवं-टी-2 इत्यत्र नोपलभ्यते ।
144. ए-इत्यत्र नोपलभ्यते । (द्रष्टव्या 246 पाद टिप्पणी
145. टी-2 भूतार्थच,
146. टी-2 करणमिति
147. टी-2 इत्यत्र "अयमे...इत्यत आरम्भ "प्रयोगः" इति पर्यन्तं वाक्यं प्रमादान् न लिखितम् ।
148. द्रष्टव्यम् - सेवादिषु वा । (प्रा. प्र. 3-56)
149. टी-1 केशकः
150. टी-1 0 चातुर्य०
151. 0 मंगतया
152. टी-2 करुणरुसैक0
153. टी-2 स्छलविशेष
154. टी-2 परिणामे दिनावसाना
155. द्रष्टव्यम् - खघथधभां ङः । (प्रा. प्र. 2-25)
156. टी-2 ईच्चुं0 ।
157. टी-1 सुकुमारकेससिखानि
158. टी-1 दयमानः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



159. टी-1 प्रमादाः
160. टी-1 मथा
161. टी-1 यत्सात्तद्विपदीवृत्तं
162. टी-1 अलिखित
163. टी-1 रंगस्छो
164. टी-1 0 वाङ्रसं
165. टी-1 अधिकक्रियतां
166. टी-1 गीतानीदं रूपद (क?)
167. टी-2 0 बोधी
168. टी-2 मनोरमा
169. टी-1 समरी शेषः ।
170. टी-1 त्रीरूपः
171. टी-1 श्रीकण्ठाः
172. टी-1 अस्तवनेति
173. द्रष्टव्यम् - दशरूपकम् (3-4)
174. टी-1 प्रस्तावना
175. टी-1 रूपकादर्शोक्तो
176. टी-1 व्यार्वीकं
177. टी-1 चक्रता
178. टी-2 दीक्षिताः
179. टी-2 इति चिदाहु0
180. टी-2 तेतर
181. टी-1 अभीशवरो
182. टी-1 अक्षमां
183. टी-1 वायन्
184. टी-1 सर्वर्ग
185. टी-2 इत्यत्र नास्ति
186. टी-1 अयुक्त0
187. टी-2 चंदेंदु0
188. टी-2 न्दुखरा0
189. टी-2 0चित्ते
190. टी-1 वस्तुकथयां
191. टी-1 जलशय0
192. टी-2 सायां
193. टी-1 तादशो
194. टी-1महाष्ट्रा
195. टी-1मिलिनः
196. टी-1 इत्याश्चर्थे
197. टी-1 मध्यस्छे
198. टी-1 इतो
199. ऋत्वादिषु तो दः । (प्रा. प्र. 2-6)
200. टी-1 प्रिअसही0
201. सर्वत्र लवराणाम् । (प्रा. प्र. 3-3)
202. टी-1 0 शर्क्तिष्विति
203. टी-1 लक्ष्यते
204. टी-1 अश्रमवृक्षा
205. टी-1 अदपि0
206. स्तस्य थः । (प्रा. प्र. 3-12)
207. टी-1 अत्र भ्योधरा0
208. टी-1 विस्तारयितुकं
209. टी-1 उपलभतो
210. आत्मानि पः । (प्रा. प्र. 3-47)
211. टी-1 पाण्डु त्रोदरेण0
212. टी-1 संबंध0
213. टी-1 लक्ष्मी
214. टी-1 0 वृक्षेको
215. टी-1 शकुन्तलो
216. टी-2 जोत्स्नेति
217. टी-1 कालै
218. टी-1 अस्या
219. टी-1 सहझरः
220. टी-2 र्की
221. टी-2 वनत्स्ना
222. टी-1 सगता
223. टी-1 यक्तवार्य
224. टी-1 सदेहानां

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



225. टी-1 प्रवृत्त
226. टी-1 उपलप्स्य
227. टी-1 वदन
228. टी-1 वत्तर्ते
229. प्राकृतप्रकाशे नोपलभ्यते ।
230. टी-1 कि.
231. टी-2 इत्यत्रैव पठ्यते ।
232. टी-1 म
233. टी-1 अनुररति
234. टी-2 अर्य
235. त्यथ्यद्यानां चछजा: । (प्रा.प्र. 3-27)
236. टी-1 0 क्रियमाणां
237. टी-2 फलमिश्रस्य
238 टी-2 सनृतं
239. टी-2 परिश्रमा
240. टी-2 सप्तपर्ण
241. टी-1 पर्युपासानम्
242. टी-1 संवृता
243. टी-2 चतुश्चा0
244. टी-2 प्रक्ष्याति
245. टी-1 मधुरालालाप0
246. "दमाला इत्यत: आरभ्य "विश्वासो मां मन्त्रय" इत्येतत्पर्यन्तानि वाक्यानि'ए' मातृकायां नोपलभ्यन्ते। (द्रष्टव्या 144 पादटिप्पणी)
247. टी-1 इत्यत्र नोपलभ्यते ।
248. टी-1 0 पर्त्युत्सुकजन: टी-2 0 पर्युत्सूक0
249. टी-1 इत्यत्र नास्ति,
250. टी-1 एवं ए, उभयत्र नासत्
251. टी-1 उत्तम्य
252. टी-1 सनाथ:
253. टी-1 दनूरागो
254. टी-1 अतिथि
255. ए कतार्थं
256. टी-2 अवैमि अवैमि
257. टी-1 श्रोष्यामेवेति
258. ए -एवं टी-2 माहत्म्यवान्
259. टी-1 पियसख्य
260. टी-1 अवगच्छां
261. टी-1 संबद्धनादिभि:
262. टी-1 पुनतात:
263. ए - कास्यपो
264. टी-1 वृधेर्वे. ट इति. । (द्रष्टव्यम् - वृधेर्ढ:) । प्रा. प्र. 7-41)
265. टी-1 मरसिम्हेना
266. टी-1, एवं ए. दृष्टा
267. टी-1 दि. खिअं
268. टी-1 महाराष्ट्रा:
269. टी-1 लब्ध्वेति
270. टी-2 प्रियंवया
271. टी-1 इत्यत्र नास्ति
272. टी-1 एवं टी-2 इत्यत्र नास्ति
273. टी-1 खानस्वै:,टी-2 वैखनस्वै:
274. ए- एवं टी-2 किमतैरिति
275. टी-2 अत्म
276. टी-2 वंल्लभाव:
277. टी-2 वल्लस्तु
278. ए. मृग्यस्तु॰
279. टी-2 तृदश.
280 टी-2 करष्यति
281. टी-1 काकू:
282. टी-2 निर्बंधनि
283. ए. ॰वदीयं
284. टी-2 पुरुषंगाभावेन
285. टी-1 मृगीदृर्शा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



286. टी-1 हिंडिमः
287. टी-1 परित्याज्य
288. ए. चक्रमार्गे
289. टी-1 इत्यत्र नास्ति
290. टी-1 पथाः
291. टी-1 धर्माचरेणपि
292. टी-2 बीजेयग्निवेन
293. टी-1 क्षत्रबिजेति,टी-2 क्षत्रबजेति
294. टी-1 इत्यत्र नोपलभ्यते ।
295. टी-2 इमामं
296. टी-1 प्रतीत्यादि, ए-प्रीतित्यादि
297. टी-2 मितियंवदति
298. टी-1 टी-2 ऽतिथिमर्यि
299. टी-1 स्वच्छंदेसि
300. टी-1 शेषाः स इति. (शषोः सः । प्रा. प्र. 2-39)
301. टी-1 त,
302. ए. एवं टी-2 प्रस्छिता
303. ए. एवं टी-2 तूर्ष्णींशीला
304. ए. एवं टी-2 प्रस्छितेति
305. ए. शारिस्स्य
306. टी-2 ०रूपकेति
307. टी-1 विनयं,
308. टी-1 स्नेन
309. टी-1 अनुयास्यनू
310. टी-1 चार्यो
311. टी-1 मालाः
312. टी-1 सेच्चतादि
313. टी-1 तत्रभवती
314. टी-1 टी-1 एवं ए. स्याधारस्थोरसो
315. टी-1 त्वादोधेय
316. धयमोरु
317. टी-2 रपिपथुसंभव०
318. टी-1 कम्प
319. ए ०धारणोदेके०
320. टी-1 मुक्तम् ।
321. टी-1 बधः । एवं टी-2 संबध
322. टी-1 परिग्राहा०
323. टी-1 इत्यत्र नास्ति
324. ए. एवं टी-2 गछेदानीम्
325. द्रष्टव्यम् - चतुर्थ्याः षष्ठी । (प्रा. प्र. 5-107)
326. ए. षष्टीति षष्टी.
327. टी-1 विरोधे
328. ए विस.जण.मीति
329. टी-1 यूयां य येवार्थः । एवं ए. पाठे णयमेवार्थः ।
330. टी-1 प्रतिदुदिश्ये
331. टी-1 अप्रविष्टेः
332. ए. यथाहीति
333. ए. दिवटी,टी-2 विवटी
334. टी-1 महाराष्ट्रः
335. टी-1 निदय,
336. टी-2 तात्रं
337. टी-1 प्रहरः
338. टी-2 असमंतात्
339. ए. पर्याकुला स्मः ।
340. द्रष्टव्यम् - टो डः । (प्रा. प्र. 2-17)
341. ए. एवं टी-1 दर्शतेन
342. टी-2 त्यूपचारपर
343. टी-2 शष्कफलदर्शने
344. टी-1 किल इति
345. टी-2 इत्यत्र नास्ति ।
346. टी-2 यथाथा
347. टी-2 एवं ए. इत्यत्रैव दृश्यते ।
348. ए नियमानत्य
349. टी-1 कतोः

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



350. ए. एवं टी-2 गछति
351. ए. एवं टी-2 भूरं,
352. ए. एवं टी-2 गछतीति
353. टी-1 संस्कृतं चे इति,
354. ए. एवं टी-२ गछतीति
355. टी-१ सम
356. टी-1 द्वेषकृदिति
357. टी-1 नक्तिमिय,
358. ए. बिभ्रतिनि
359. टी-2 जोस्ना
360. टी-1 तुकोजि
361. टी-1 ०कुपार०
362. टी-2 कौडिण्य
363. ए. कौस्तंभ
364. टी-1 इत्यत्र
365. ए. काशि.
366. टी-1 दृष
367. टी-1 व्याट
368. टी-1 पद
369. ए. मालीका
370. टी-1 इत्यत्र नास्ति
371. टी-1 दीव्य
372. टी-1 नाटंक
373. टी-1 सवर्ज्ञ
374. टी-1 घनश्याम०
375. ए. मृतशिशोर्
376. टी-1 द्विंजस्येति
377. टी-1 भक्षं
378. टी-2 आहिड्यन्ते ।
379. टी-1 एवं, ए. हिडनं
380. टी-1 शूल्यं मासं भूयिष्टं
381. ए. प्रोक्तं
382. टी-1 रात्रिदिवमपि
383. टी-2 संजान
384. टी-1 कटकं
385. ए. एवं टी-1 प्रत्यूषे
386. टी-1 श्वगणां
387. टी-1 व्यधाश्च
388. ए. तिष्कामति
389. टी-1 भदो
390. टी-2 कामबोधेन
391. टी-1 गळादिषु
392. टी-1 स्फुकं
393. टी-1 अश्रमपदं
394. टी-1 तापसकन्या,
395. टी-2 ममम
396. टी-2 इत्यत्र नास्ति ।
397. ए. सुकृति
398. ए. एवं टी-2 गमनस्य
399. द्रष्टव्यम् - कृञः किणः । (प्रा. प्र. 8-30)
400. टी-1 अह्यंसं, टी-2 अद्य संविशेषं
401. टी-1 परिवतः
402. टी-2 आगछति
403. टी-1 एवं आगच्छंति वयस्याः ।
404. टी-1 भवंतु
405. टी-2 आर्थात्
406. टी-1 निच.
407. ए. बहिभि
408. टी-1 तस्य
409. टी-1 अयासि
410. ए. मिर्वेदो
411. ए. अचरित
412. टी-1 रति
413. टी-2 कुरते
414. ए. णोलिखति
415. टी-1 अह,

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



416. टी-2 स्छानं
417. ए. कामि
418. टी-1 आचर्य
419. द्रष्टव्यम् - द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । पा. सू. 2-4-2
420. टी-1. पादाभ्युमुत्थाने
421. टी-1. मेवाभि
422. द्रष्टव्यम् - अक्ष्यादिषु छः । प्रा. प्र. 3-30
423. टी-1 विडंबः यति
424. ए. कुब्ज
425. टी-1 वेगस्ये
426. ए नीवंजी
427. ए समुझिझय
428. ए. तादृशे,टी-2 एतोदृशे
429. ए. अनिशो
430. टी-2 प्रसादष्यामि
431. ए. - गछेति
432. ए. स्छीतो,टी-2 स्छितो
433. द्रष्टव्यम् - कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे। पा. सू. 2-3-5.
434. टी-2 मृग
435. टी-1 यया
436. ए. टी-1 अरण्ये
437. द्रष्टव्यम् - लोपोऽरण्ये। (प्रा. प्र. 1-4)
438. टी-2 इत्यत्र नास्ति
439. टी-1 महाराष्ट्रः
440. टी-2 भविन्
441. ए. मोदुरुक,टी-2 मोदुरक
442. ए. खवहेसाख
443. टी एवं टी-2 भक्षणः
444 ए एवं टी-2 स्छितौ
445. टी-2 हासाक्तिः
446. टी-2 भट्टरको
447. टी-1 स्कालनेन
448. टी-1 न्यायमदत्वात्
449. टी-2 ध्वन्वंत्तरिः टी-1 ध्वंवंतरिः
450. टी-2 परक्रमः
451. टी-1 बिभत्ति
452. द्रष्टव्यम् मधुबभ्रवोर्ब्राह्मणकौशिकयोः । पा. सू. 4-1-106
453. टी-1 निदर्शानं
454. टी-1 वृद्धावि इत्यमर
455. टी-1 अस्थलम्
456. टी-1 प्रकृतिस्तुति
457. ए. स्छैर्ये
458. ए. अपत्रः
459. टी-1 दटवींतो
460. टी-१ हिडित्वा
461. टी-1,टी-2 सिकायां समिति
462. ए. एवंटी-2 स्छविर
463. ए. एवंटी-2 प्रविशुंतु.
464. ए. निपातं
465. टी-1 करबक
466. टी-2 रोमंथधरस्पदं
467. टी-1 रोत इति महाराष्ट्राः
468. ए. इत्यत्र नास्ति
469. टी-1 संवर्षनात्,टी-2 संवर्पात्
470. टी-2 यतांरका
471. टी-1 दपनाधे
472. टी-2 विरळ्क्ष
473. ए. वितानां
474. टी-2 सुखश्चा.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



475. ए. पापपुण्ये
476. टी-1 इत्यत्र नास्ति
477. टी-1 एवं ए. छादका
478. टी-2 "व०ट" इत्यत्र
479. ए. इत्यत्र नोपलभ्यते ।
480. टी-1 ग्रहस्थाशय मश्च
481. टी-1 तस्या तस्य
482. टी-2 प्राधान्यकतु.
483. टी-1 वचनांव
484. टी-2 तापकन्यकापि
485. टी-1 येंनका
486. टी-1 राजर्षेणो.
487. टी-1 कथासन्दर्भे
488. टी-2 दैवो
489. टी-1 तित्रिण्याम्
490. टी-2 खजूर
491. टी-1 निचेक्ष्म
492. टी-2 न्यस्व
493. टी-1 रूपोच्चेयत
494. टी-1 न च मू
495. टी-1 धातु
496. टी-1 तस्य,
497. टी-2 यथा
498. टी-1 अस्मन्
499. टी-1 इत्यत्र नास्ति
500. टी-1 निरात्म
501. टी-1 तः प्रसिद्धं
502. टी-1 आविद्ध
503. टी-1 मकरंतः
504. टी-1 कवेमतिः
505. टी-1 दोषः
506. टी-2 लघुं
507. टी-2 तापतु
508-A टी-1 शैलं, 508-B द्रष्टव्यम् - स्तस्य थः । प्रा. प्र. 3-12
509. टी-1 इत्यत्र "परवती पूज्या" इत्येव ।
510. टी-1 अतरेण
511. टी-1 सहृतं
512. टी-1 अपवापिता
513. टी-1 प्रकृटितः
514. टी-1 तस्माध्यस्थ्ये
515. टी-1 हरसि
516. टी-1 शालिनता
517. टी-1 स्वेदेति
518. टी-1 प्रत्ये
519. टी-2 सीक.
520. "भवतोऽपि" इत्यतः आरभ्य "तारि सौक." इत्येतत्पर्यन्तानि वाक्यानि 'ए' मातृकायां नोपलभ्यन्ते (द्रष्टव्या 479 पादटिप्पणी)
521. टी-2 परवळोप-ळअघणो
522. टी-1 सोपाथे अंबाद अंवरा
523. ए. पंचरचेषु
524. टी-2 वारषड्भागं
525. टी उपहारंत्विति
526. टी-1 एवं टी-2 नीवारा
527. 'ए' तिवृत, टी-1 निवृत्त.
528. टी-2 ध्यार्तव्य
529. टी-1 वण्येभ्यो
530. ए. इत्यत्र नास्ति ।
531. टी-2 अरण्यका.
532. टी-1 ना इदंतीतिः ए नाद्वदन्ति
533. टी-1 एवं टी-2 वाक्तव्यं
534. टी-1 नादिभि
535. ए. एवं टी-2 भुमिमुपस्छितौ
536. टी-1 राज्ञानं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



537. ए.-नास्मीति
438. टीं-1 स्वसंत्र्यंदिति, टी-2 स्वातत्रयंदि.
539. टी-1 अध्याक्राता
540. टी-1 एवं ए. रात्रे
541. टी-1 इत्यत्र नास्ति
542. टी-1 इत्यत्र नास्ति
543. टी-1 प्रकृतै
544. ए. इत्यत्र नास्ति
545. ए. भुनक्तिति
546. ए. ईष्टि
547. टी-2 चा
548. टी-1 रहमीत्यर्थः, टी-2 रहमित्यर्थः
549. टी-2 अज्ञापयति
550. टी-1 सपरीवाहं
551. ए. परिवाहा
552. टी-2 द्राक्षसा.
553. टी-1 इत्यत्र नास्ति
554. टी-1 देविनां
555. टी-1 आजसि
556. ए. इत्यत्र नोपलभ्यन्ते वाक्यानि एतानि ।
557. टी-2 प्रतिहतं,
558. टी-1 द्वौधी.
559. टी-2 नास्तीति
560. टी-1 तित्यं
561. अत एव - इत्यत आरभ्य "मयूरः" इत्येतत्पर्यन्तम् न स्पष्टम् ।
562. टी-1 व्युत्पशः
563. टी-2 गछामि
564. टी-1 तइती.
565. टी-1 लीलोधरः
566. टी-1 तपास
567. टी-1 शकुन्तल
568. टी-2 यष्ठु
569. टी-1 मत्ति
570. टी-2 अपोहत्यप
571. टी-2 लमज्जक
572. टी-1 वाला
573. टी-2 वच्छा
574. अस्मिन्<</>> प्रकोष्ठे प्रदर्शितः पाठः टी-3 इत्यत्रापि सम्प्राप्यते ॥
575. टी-2, टी-3 अवच्छा
576. टी-1 त्यनैका
577. टी-3 उच्छ्विसि
578. टी-1 दास्यामिति
579. टी-1 विषुंभ
580. टी-1 प्रमातः
581. टी-2, टी-3 अवच्छा
582. टी-1 तपति
583. टी-2, टी-3 प्रभावं
584. टी-1 मालम्
585. टी-1 सस्थित
586. टी-2, टी-3 सुस्छित.
587. टी-1 सामान्येन
588. टी-1 तातुं,
589. टी-1 नुसंरणमे.
590. टी-1 रविदेतिसाय
591. टी-2 निन्मा
592. टी-1 चतस्रस्थने
593. ए. इत्यत्र नास्ति। (द्रष्टव्या -556 इति पादटिप्पणी)
594. द्रष्टव्यम् - शेषः संस्कृताद्। (प्रा. प्र. 8-23)
595. टी-1 सुहाय इत्युक्तम्
596. द्रष्टव्यम् - चतुर्थ्याः षष्ठी। (प्रा. प्र. 5-107)
597. टी-2 वैय्यर्थ्यापत्तेः ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



598. ए. इत्यत्र नास्ति। टी-1 इत्यत्र पठ्यते, किन्तु न सार्थकमिदं पदमित्यतोऽस्वीकार्यम्। टी-2 नेनास्म, टी-3 इत्यत्र "तेनास्म" इति लिखित्वा, अस्वीकृतम्।
599. ए. विजयतो
600. टी-1 खलिदममन्य
601. ए. एवं टी-2, टी-3 स्वेच्छेति
602. टी-1 मनोज्ञेयो
603. टी-2 प्रधोनो
604. टी-1 भतं
605. टां-1, ए. अपराद्धं
606. टी-1 श्रीकामै.
607. टी-2 स्तापे
608. टी-1 एवं ए. तन्निमित्तम्
609. टी-1 ए. सुष्टु
610. ए. आनभ्यंतरा
611. टी-1 इत्यत्र नास्ति
612. ए. टी-2, टी-3 समवस्छा
613. ए. लक्ष्यामि
614. ए. किं निमित्तं
615. टी-1 सलुपरमार्थितः
616. ए. आज्ञात्वा
617. टी-2 परिहरस्य
618. ए. बाध्याया
619. टी-2 परिहारंभो
620. टी-1 ए. सुष्टु
621. टी-1 निवेदयितं
622. टी-1 ए. सुष्टु
623. टी लावण्येमयी
624. टी-1 मुंचिति
625. टी-1 इत्यत्र नास्ति
626. टी-1 वक्ष्यत्येवं
627. टी-1 सयं
628. टी-1 इत्यत्र नास्ति
629. टी-1 कातरंतां
630. टी-1 राक्षता
631. टी-1 इत्यत्र नास्ति
632. ए. टी-2, टी-3 अवस्छा
633. ए. इत्यत्र नोपलभ्यन्ते वाक्यानीमानि।
634. टी-1 आत्मगते
635. टी-2, टी-3 अन्तरंगस्छ.
636. टी-1 एषां
637. टी-2, टी-3, वस्छा
638. द्रष्टव्यम् - प्रा. प्र. 8-23
639. टी-2 निवापेति
640. टी-2 निपयितेति
641. टी-1 श्यामा
642. टी-1 उमानदस्तप
643. टी-1 इत्यत्र "दिवस" इति नास्ति
644. टी-1, टी-2 वस्तु
645. टी-२ इत्यत्र "दिप्रतिबिम्बानाम संगता" इति नास्ति
646. टी-1 मन्मथाः
647. टी-1 भित्तंदितुम्
648. टी-1 सिखि
649. टी-1 दृष्ट्या
650. टी-1 इत्यत्र 'वा' इति नास्ति
651. टी-1, टी-2 पुपायो
652. टी-1 सजर्षिरेस्यां
653. टी-2 विर्वर्ण.
654. टी-3 विवर्णमणि
655. टी-1 कार्यातिशयो
656. टी-1 तुं
657. अत्र "सुमनोगोपतितम्" इत्येतादृशेन पाठेन भवितव्यम्। यतो हि - अनन्तरेण वाक्येन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



"गोपित" इति शब्दस्य प्राकृतरूपं विचिच्यते।
658. टी-1 स्तं
659. टी-1 महाराष्ट्राः
660. टी-1 विलप्यते
661. टी-1 चिन्तया
662. टी-2 नित्यत्यर्थः ।
663. टी-2 वाधनिवेदनम्
664. टी-3 पूनर्वेपते
665. टी-1 मानिनी
666. टी-1 निवयिपितृकां
667. टी-1 मिवार॰
668. टी-2 इदानि
669. टी-2, टी-3 स्छाने
670. टी-2, टी-3 व्यवस्छा
671. टी-2 कंटिकितेन
672. टी-1 रोमांचः
673. टी-1,टी-2 कणेलेत
674. टी-1 शुकादा
675. टी-1 नखेः
676. टी-1 निक्षिसर्वर्णं
677. टी-1 तद
678. टी-1 पलाशस्यष्ट
679. संगता"-इति नास्ति। टी-2 इत्यत्र "द्प्रितिबिम्बानाम.संगता" इति नास्ति
680. टी-1 हृदयंगमि
681. टी-1 त्वचित्
682. टी-1 संभावनया
683. टी-1, टी-3 हेमचन्द्रः
684. टी-1 अविलंबिनो
685. टी-1 संबधं
686. टी-1 शयनयैः
687. टी-1 स्यर्शो न, टी-2 स्पर्शोत
688. टी-1 बहुमानपादकं
689. टी-1, टी-2 अपत्रस्य
690. टी-2 विषयदासिनो
691. टी-2 वासन
692. टी-1 दहंसि अनु
693. टी-1 शकुन्तला
694. टी-1 समर्थसमे
695. टी-2 तथा
696. टी-2 निर्वह
697. टी-2 दत्तदृष्टिः
698. टी-1 न्विषक्तिः
699. टी-2 छ्तु, टी-3 गछ्तु
700. टी-2, टी-3 गछ्तु
701. टी-2,टी-3 आगच्छत्विति
702. टी-1 मर्यादर्यो
703. टी-1 मनसौः
704. टी-2, टी-3 गछत्विति
705. टी-1 इत्यत्र "इति" नास्ति
706. टी-1 समीमे
707. टी-2, टी-3 स्छितः
708. टी-1 प्रतिष्टे
709. टी-1 प्रागभहित.
710. टी-1 गे एव
711. टी-1 अवेगो
712. टी-1 दुष्यन्त
713. टी-1 हसर्यावे
714. टी-1 सख्ये
715. टी-1 भावानिष्करण
716. टी-1 परिहारकेः
717. टी-2 आकनिष्ट
718. टी-1 कव्यंमंत्र
719. टी-2 भेदध्वरिति
720. टी-1 वैदिकः
721. ए. इत्यत्र नोपलभ्यते कोष्ठान्तर्गतोऽ

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



यंपाठः। द्रष्टव्या633 पादटिप्पणी॥
722. टी-2 बाधाजैरिति
723. टी-3 पैशलैरिति
724. टी-1 इत्यत्र नास्तीदं वाक्यम्।
725. टी-2 जाननी
726. टी-2, टी-3 गछतु
727. टी-1, संतसा प्रियात्मने
728. टी. संमतमदमो
729. टी-1, टी-2, टी-3 गांधार्वो
730. टी-1 अद्युमंच, ए. अद्य मूंच
731. ए. मानयीष्यामि
732. टी-2 अपरितं
733. टी-2, टी-3 मिछता
734. ए. सदमिति - अत्र यकारः नास्ति।
735. टी-1 दत्त
736. ए. तान्मोक्षामीति, टी-1 मोक्ष्यामिति
737. टी-2 त्रि
738. ए. उपस्छितां, टी-2, टी-3, उपस्छिता
739. ए. व्यार्जताः
740. ए. टी-2, टी-3 गछति
741. ए. षष्टी
742. ए. टी-2, टी-3 गछामः
743. ए. मनोरथेविषय
744. टी-1 म. अवे०खण,० ए. पच्चवेख०ण ०स
745. टी-1 हर्षाद्यैदर्शनं
746. टी-1 वलं
747. ए, टी-2, टी-3 अंगुळिभिः
748. टी-1, ए. अधरोष्टं
749. टी-2 भगोर्ध्व
750. टी-2 इत्यत्र व कारो न वर्तते।, टी-1 इत्यत्र धकारो नास्ति।
751. ए. इत्यत्र नास्ति।
752. टी-1 तयो
753. टी-1 इत्यत्र नकारो नास्ति।
754. टी-1 शब्दार्थतश्च
755. टी-2 छायः
756. टी-1 कातयः
757. टी-1, टी-3 न
758. टी-1 अनातपस्व
759. टी-1 नीलवर्णः तया
760. टी-1 स्यावः,
761. द्रष्टव्या प्रथमाङ्कस्य पुष्पिका। (पादटिप्पणी 360)
762. टी-1 शाकुंत
763. कोष्ठान्तर्गतोऽए. पाठः ए.इत्यत्र नोपलभ्यते।(द्रष्टव्या 751 पादटिप्पणी)
764. ए. इत्यत्र नोपलभ्यते।
765. टी-1 भर्तुगामिनी
766. टी-2 चिंतनीयंतनीयं
767. टी-3 इतः परं त्रुटिः दृश्यते। (द्रष्टव्या पादटिप्पणी - 574)
768. टी-2 विस्त्रब्धाः
769. टी-1 भाव
770. टी-1 अव्यव्यासेन
771. टी-1 वोखहमनमिति
772. टी-1 अनुसंवृत्तः
773. टी-2 अनुमंत
774. टी-1 कृतार्थे
775. टी-1 संपादयत्ति
776. टी-1 पर्यासानि
777. टी-1 कुसुमः
778. टी-1 रु
779. टी-2 कस्मित्रजा पूर्वाजार्हे

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



780. टी-1 इत्यत्र नास्ति
781. टी-1 कस्मिन् तयि
782. टी-1 हर्षि:
783. टी. दुग्धं
784. टी-1 प्रभावष्यति
785. टी-1 इती
786. टी-1 हुतवदाद्
787. टी-1 अनळादपी
788. टी-2 गछ
789. टी-1 अध्योदकं
790. टी-1 हसोत्
791. टी-1 गृह्यति
792. टी-2 निवर्तितं नेछति
793. टी-1 ततौ
794. टी-1 शांणे
795. टी-1 एवातर्हित:
796. टी-2 सामाश्वसितुं
797. टी-1 राजर्षेणा
798. टी-1 सनामधेयांकितम्
799. टी-1 योपाय
800. टी-1 खी
801. टी-1 इछती
802. टी-1 एदि
803. टी-1 वैवकार्यं
804. टी-1 तावहस्या
805. टी-1 तावद्वाहस्तो
806. टी-1 वदनं
807. टी-1 इत्यत्र एवेति नास्ति
808. टी-1 येति
809. टी-1 विभावयाति
810. टी-1 दुर्वास
811. टी-1 हयो
812. टी-1 नवमालिका
813. टी-1 दर्शो क्त:
814. टी-1 प्रवीशतीतिं
815. टी-1 प्रकाशां
816. टी-1 अन्यार्थकत्वातया
817. टी-1 पलाशो
818. टी-1 पौनरुक्त्या
819. टी-1 दोष्परिहत्वात्
820. टी-1 आविष्कृतं
821. टी-1 सममत्यर्थे
822. टी-2 परिपाटौ
823. टी-1 ष्यत्यस्त
824. टी-2 भगत्पादा:
825. टी-1 इत्यत्र नास्ति
826. टी-1 सुखस्यनंवरं
827. टी-1 वतिष्
828. टी-1 तेव
829. टी-2 श्चंदो
830. टी-2 वैय्यर्थं
831. टी-2 ताथ्यात्
832. टी-2 पत्यक्षेपेण
833. टी-1 वृत्त
834. टी-1 आन्याप्यं
835. टी-1 कृतमिति
836. टी-2 प्रमाद इति प्रमाद इति
837. टी-2 पद
838. टी-1 व्यत्पत्त्या
839. टी-1 शास्त्रद्धत्वात्
840. टी-2 तादशानि
841. टी-2 अभीज्ञान
842. टी-1 किमभ्य यते
843. टी-1 पारयासि
844. टी-1 तात्त
845. टी-2 इत्यत्र । शकुन्तलां...आपन्नसत्वा इति नोपलभ्यते।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



846. टी-1 त्वरस्वं
847. टी-2 पृछायै
848. टी-1 परिष्वज
849. टी-2 जजेत्यत्र
850. द्रष्टव्यम् - आदेर्यो जः। (प्रा. प्र. 2-21)
851. टी-1 सुशिष्यः
852. टी-2 प्रविष्टास
853. टी-2 इत्यत्र "शरीरं विना...प्रविष्टाय" इति नोपलभ्यते ।
854. टी-1 उत्कलिक
855. टी-1 समुद्रके
856. टी-1 प्रकारवाचम्
857. टी-1 ममालभ्मनं
858. टी-1 स्तिन
859. टी-2 गछावः
860. टी-2 अभिनंध्वमना
861. टी-1 यथा
862. टी-2 देवीशमधि
863. टी-2 इत्यत्र नोपलभ्यते
864. टी-1 इत्यत्रैव प्राप्यतेऽयं कोष्ठान्तर्गतः पाठः ।
865. टी-1 द्विपदीवृत्ति
866. टी-1 मात्रावृत्तमितित्य.
867. टी-2 अपीतवस्त्वि
868. टी-1 बाम्हणा
869. द्रष्टव्यम् ।3-4-67 पा. सू. इत्यत्र महाभाष्यम् ।
870. टी-1 केलं
871. टी-1 शब्दात्पर्वं
872. टी-1 कलमव्यतुनधुरं
873. टी-1 ईदृविर्ध
874. टी-1 कुवोशयानि
875. टी-2 पशणि
876. टी-1. गमनसि
877 टी-1 चरणो
878. टी-1 विहरातरा
879. टी-2 समामवस्थां
880. द्रष्टव्यम् - मयूरमयूखयोर्वा टवा । (प्रा. प्र. 1-7)
881. टी-1 अश्रुत्वेन औत्प्रे.
882. टी-2 तवाद्यन
883. टी-1 विशेज्ञषज्ञां
884. टी-1 त्यालिंग
885. टी-2 दुःखवर्तिनी
886. टी-1 लंगेति
887. टी-2 र्याछ्कुंतळायैवत्
888. टी-2 प्रतिवदोत
889. टी-1 थितः
890. टी-1 पत्रेकं
891. द्रष्टव्यम् - आदेर्यो जः। (प्रा. प्र.2-29)
892. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः ए. इत्यत्र नोपलभ्यते।
(द्रष्टव्या - पादटिप्पण्यः - 751, 762, 764)
893. टी-1 दौबल्यात्
894. टी-1 तुर्य.
895. टी. इत्यत्र "र" कारो नास्ति।
896. टी-2 सधीयस्त्वात्
897. टी-1 मृदुरम्योरिति
898. टी-1 मंद
899. ए, टी-2 गछतीति
900. टी-1 ष्वद्यमिति
901. टी-1 स्त्रीरपुसाविति
902. टी-1 मेवार्थो।
903. ए. श्रीनाथो

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



904. ए. इत्यत्र ठकारो नास्ति
905. ए. प्रतियोनिनः
906. टी-1 मंत्रा
907. ए. तस्छं
908. ए. दांतस्छम
909. ए. टी-2 व्यवस्छापित
910. टी-1 एवं ए. जनित
911. ए. सूचि.
912. टी-1 इत्यत्र स "त्त" नास्ति।
913. टी-1 यवसचि
814. टी-1 शलार्यो.
915. टी-1, टी-2 इत्यत्र नास्ति।
916. टी-1 व्यर्थेपि
917. टी-1 इत्यत्र ककारो नास्ति।
918. टी-2 सहणास.
919. टी-1, यथा
920. टी-1, ए. व०टिद्दो
921. द्रष्टव्यम् - वृधेर्ढः। (प्रा. प्र. 7-41)
922. टी-1, टी-2 वृत्तिनिमेषो
923. ए. पस्य
924. ए. अपश्यंति, टी-1, अपश्यती
925. ए. तर्कयामी
926. ए. बाध्यम्।
927. टी-2 नपेस्यपीति
928. टी-1 वरुतां, टी-2 चरुतां
829. टी-2 प्रसक्तेतिति
930. ए. प्रवृत्तीं
931. टी-2 व्यापारं च।
932. टी-1, टी-2 इत्यत्र नास्ति
933. टी-1, इत्यत्र नोपलभ्यते
934. टी-1 मयादैति
935. टी-1 दृश्य
936. टी-1 अन्यन्येत्
937. टी-2 मनोगतार्थः
938. ए. गोपायिना
939. टी-1 नदनीयेति
940. ए. मेति
941. ए. इत्यत्र अकारो नास्ति
942. टी-2 रखंडशः
943. टी-2 अपूर्वं
944. ए, टी-2 मुक्ता
945. ए. ऋन्येषिकोपि.
946. टी-1 वाम
947. टी-1 दोष्यांडित्य
948. टी-1 कुर्वति
949. टी-2 गयं
950. ए. यास्म, टी-1 मास्य
951. टी-1, टी-2 ए. इत्यत्र जास्ति
952. टी. ध्वनीम्, टी-2 ध्वंनी
953. टी-2 ध्वनि
954. ए. जनौ
955. टी-1 लोकं
956. टी-1 प्रातिकूलम्
957. टी-1 समर्था
958. टी-1 उत्सको
959. टी-2 एमुक्त
960. टी-2 गृहीणीपदं
961. टी-1 वशस्य
962. ए. धिमानसीव्यर्थ
963. ए. स्याङ्का
964. टी-1 इत्यत्र "तं" नास्ति
965. टी-1 कुलीनः या
966. टी-2 गरुभि
967. टी-1 वत्स
968. ए. वत्सनेति
969. टी-1 सां
970. टी-1 आलिगतम्

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



971. टी-2 जाराजा
972. टी-1 एवं ए. इत्यत्र नास्ति
973. टी-1 आकंमितो
974. टी-1 पापशकी।
975. टी-1 युगांत।
976. टी-1 कुबर, टी-2 कूबरधार्यो.
977. ए. प्रमाणा, टी-1 प्रमणा
978. टी-1, टी-2 येष्वत्
979. टी-1, टी-2 अधिरूष्टः
980. टी-1 भय
981. ए. पुरिति
982. टी-1 स्याप्रत्यं
983. ए. दौर्ष्येति
984. ए. रेषां
985. ए. मंत्रयिष्येते
986. ए. वक्ष्यतित्यर्थः
987. टी-1 कथमपिति
988. ए. वदतिति
989. टी-1 उत्कुंठितं
990. टी-1 एकं
991. टी-1 आ
992. टी-1 राजा
993. टी-1 इत्यत्र नास्ति
994. ए. परिगृहीतुः
995. टी-1, ए. अत्मा
996. टी-1 अपितवते
997. टी-1 प्रत्यपितन्यास
998. टी-2 यथोप्सितं
999. टी-1 निर्वत्तो
1000. टी-1 ति न भावः।
1001. ए. करिष्यामी
1002. टी-1, ए. समयगुणात्या
1003. टी-1, ए. किंचिदतिस्वादुपासेत्
1004. स. इत्यत्र न पठ्यते
1005. द्रष्टव्या - प्रथमाङ्कस्य पुष्पिका। (पादटिप्पणी - 360)
1006. टी-1 ख्यटिप्पे
1007. ए. प्रेषितु, टी-2 प्रोषितु
1008. ए. गौतमि
1009. टी-2, टी-1 शार्गरवा.
1010. टी-2 ध्रुवायाःगीते
1011. टी-1 हस.
1012. टी-1 परिशाल्य
1013. टी-1 मद्या, टी-2 ध्रवो मष्या
104. ए. टी-2 एट
1015 .टी-1 दंस
1016. टी-2 स्मी
1017. टी-1 चुव्य
1018. टी-1 कलम
1019. टी-1 मंजरी
1020. टी-1परिचुंय
1021. ए. टी-2 रस्छाने
1022. ए. टी-2 स्छाने
1023. ए. स्छाने
1024. टी-2 विवसः
1025. ए. टी-2 स्छाने
1026. टी-1 मन्तरेण
1027. टी-1 वट
1028. टी-2 अंतःपरेभ्यः
1029. टी-1 वृत्तंचन्द्रि
1030. टी-1 टी-2 दिगाज
1031. टी-1 प्रषिभा
1032. टी-1,ए. गजा इत्यादिवद
1033. ए, - स्छिति
1034. टी-1 जनु
1035. ए.,टी-2, तया
1036. टी-1, ए. शुष्कंस्छित्या
1037. टी-1 तोऽस्मि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1038. टी-1 न्धेयुं ।
1039. टी-1 केगेत्यादिना. (द्रष्टव्या च - कगचजतदपयवां प्रायो लोपः । प्रा. प्र. 2-2)
1040. द्रष्टव्यम् - ऋत्वादिषु तो दः । (प्रा. प्र. 2-6)
1041. टी-1 स्यद्
1042. टी-2 चम्बित
1043. ए. इत्यत्र नास्ति "षु" इति ।, टी-2 प्रवशो
1044. टी-1 चिंत्यक्षतया
1045. टी-1 चवना.
1046. टी-2 निवेधात्र
1047. टी-1 चुंबितयित्यु
1048. टी-1, टी-2 पीत
1049. टी-1 रेतोत्स.
1050. ए. कवनैव
1051. टी-1 वक्ष्येते
1052. टी-2 मितर
1053. टी-1 सरौ.
1054. टी-1 अहायीदि
1055. टी-1 परिवात्वो
1056. टी-1 अश्चर्ये
1057. ए. वगमो
1058. टी-1 प्रमादा
1059. द्रष्टव्यम् - अक्ष्यादिषु छः । (प्रा. प्र. 3-30)
1060. टी. चूतंमंजरी
1061. टी-1 पदिकैति
1062. टी-1 नाव्या ।
1063. टी-1 अस्माः
1064. टी-1 दाज्ञी
1065. ए. मीत्यर्थः ।
1066. टी-1 अतरेण
1067. ए. टी-2 अवगतोंस्मि
1068. ए. अवगतवनस्मी
1069. टी-1 दून्या
1070. ए. टी-2 यावा.
1071. टी-2 स्त्रीयां
1072. टी-1 नयोमोक्ष
1073. टी-1 वस्तुनि
1074. ए. टी-2 अवियुंक्तः ।
1075. टी-1 जनान्तरं
1076. टी-1, ए. पूर्वजन्मा
1077. टी-1 जनान्तरे
1078. टी-1, ए. प्रयोजन
1079. टी-1 धीम्रीतयः
1080. टी-1 विक्लबत्यस्त
1081 कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः ए. मातृकायां नोपलभ्यते ।
1082. टी-1 अनतिण्त्यम्
1083. टी-1 अतिक्रम्यं
1084. टी-2 स्छानं
1085. टी-1 संरक्षन
1086. टी-1 संतती
1087. टी-1 तत्र्ययित्वा
1088. टी-1 तत्र
1089. टी-1 शान्त सौम्यां
1090. टी-2 स्छलम्
1091. टी-1 प्रति उपसर्गः
1092. टी-1 प्रकर्षतात्य
1093. टी-1 हिवसोः
1094. टी-2 भूयिरि.
1095. टी-1 स्त्रीका
1096. टी-1-लीलासुकः
1097. टी-1 द्वारणल
1098. टी-1 पात्र...पाल. इति नास्ति
1099. टी-2 प्रतिहरीति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1100. टी-1 उतस्न,
1101. टी-1 अज्ञापयतु
1102. द्रष्टव्यम् - (प्रा.प्र. 3-56)
1103. दे.वो..देव: इति । टी-1 इत्यत्र नास्ति ।
1104. टी-1 दु एवम्
1105. टी-1 उत्तरे
1106. टी-1 सुखामित्यह
1107. टी-1 कार्त्स्येधारण
1108. टी-1 अवसाययर्ति
1109. टी-2 "दूरयतीत्यर्थ:...माठर:" इति नास्ति ।
1110. टी-2 इत: परं "दूरयतीत्यर्थ:" ॥ अंतयस्यवसाययति दूरयतीति माठर: ॥ "इति पठ्यते, तन्न समीचीनम् ।
1111. टी-1 वस्तन:
1112. टी-1 युक्त
1113. टी-2 कयति
1114. टी-1 शासनं
1115. टी-2 स्वह
1116. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठ: ए' इत्यत्र नोपलभ्यते । [द्र. पादटिप्पणी - 1081]
1117. टी-1 द्वयम्०॥
1118. टी-2 सुदु:ख
1119. टी-1 वृत्ति०
1120. ए. शिक्ष्ययसि ।
1121. टी-2 स्छिताम्
1122. ए. टी-2 प्रस्छितान्
1123. ए. दंडाधेरो
1124. टी-2 ज्ञात्यो
1125. ए, टी-2 त्वय्यच
1126. टी-1 परिसमासं
1127. टी-2 "मित्यर्थ: । ध्वनिश्च...परिणिष्ठित" इति नास्ति ।
1128. टी-2 सशिरीओ
1129. टी-1 इत्यत्र नास्ति ।
1130. टी-2 ऊदं
1131. टी-1 बहेन. टी-2 चहन
1132. ए. विुधां
1133. टी-2 अपरिछेद:
1134. टी-1 भिनंदन:
1135. ए. अनंदन
1136. टी-1 अगानी
1137. टी-2 भाग
1138. टी. भगा
1139. टी-1 एकरूप
1140. ए, टी-2 स्छितिरु
1141. टी-1 न्थास्वपथ
1142. टी-1 लित विवत्कं रहु: ।
1143. टी-1 यत्तुं
1144. ए. टी-2. स्छाने
1145. टी-1, ए. इत्यत्र द्विरुक्तिर्नास्ति ।
1146. टी-2 प्रस्छे
1147. टी-1 मध्यवस्था:
1148. ए.टी-1 दुष्यन्तु
1149. टी-1, ए. एवमुचार
1150. टी-1 दन्यदृशो
1151. टी-2 दृश्यते
1152. ए. टी-1. कानु
1153. टी-1 किंश्चित्
1154. ए. किमपिति
1155. टी-1,म.
1156. टी-2 अनिर्वर्णनियम्
1157. ए.कास्यप:
1158. ए. दिजानी

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1159. टी-1 सिद्धमतां
1160. ए. आनामयः
1161. टी-2 स्मरणात्
1162. टी-1 तत्कृस्यमि.
1163. टी-2 अहतां
1164. टी-1 ए. सक्रिया
1165. टी-1 चिरायं
1166. टी-1 वाच्यवंच.
1167. टी. पाठ
1168. टी-1 वधूवरवंर्ध्वाः
1169. टी. समानययस्तु
1170. टी. द्योतमाय
1171. टी-1 कथंविछा
1172. टी-1 पेठः, टी-2 मेवेत्ये पेटुः।
1173. ए. गर्भिणि
1174. टी. ध्वमिश्च
1175. ए. इत्यत्र नास्ति।
1176. टी-1 अवक्षित
1177. टी-1 चरिते
1178. टी-1 सीताया मुक्तो
1179. टी-2 भणिमिति
1180. टी-1 षष्ठा
1181. टी-1 अतिकम.
1182. टी-1 तुभ्यस्मौ
1183. टी-2 मर्यार्दा
1184. टी-1 शास्त्रमयदियो
1185. टी-1 गृहपी
1186. टी-1 सांप्रते
1187. टी-2 अवङ्॥
1188. टी-2 वधति
1189. टी-1 सपंदाय
1190. टी-1 तत्तस्त्वं
1191. द्रष्टव्यम् - र्तस्य टः। (प्रा. प्र. 3-22)
1192. टी-1 निर्वण्य
1193. टी-1 दृष्ट्या
1194. टी-2 निर्णनं
1195. टी-1 रूपंनतं
1196. टी-1 कतृ
1197. टी-1 संस्योन
1198. टी-2 "वाच" इति नास्ति
1199. टी-1 प्रप्रभाते
1200. टी-1 अत
1201. टी-1 दिमं
1202. टी-1 कुन्दयोद्
1203. टी-1 ष्टवाभिप्राय
1204. टी-1 योत्य
1205. टी-1 अहं धर्मापैक्षिता
1206. टी-1 ईदृ शां
1207. टी-1 गर्भाचिह्नं
1208. टी-2 दुष्टश्वासा
1209. टी-1 अस्मि.
1210. टी-2 दुरारोहीणी
1211. टी-2 अशैव
1212. टी-1 निवारणम्
1213. टी-1 याग्यो
1214. टी-1 एवेत्यक्त
1215. टी-1 स्पर्शे
1216. टी-1, हेमः
1217. टी-2 मेनुते
1218. टी-1 त्यस्म
1219. टी-1 वाच्यस्त्व
1220. टी-1 एवति
1221. टी-2 विश्वासोचरमि.
1222. टी-2 इदानींवस्छां.
1223. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः ए. इत्यत्र नोपलभ्यते।
(द्रष्टव्या - 1175 पादटिप्पणी)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1224. टी-1 म
1225. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1226. टी-1 अनिर्वच्यम्
1227. टी-1 हृदय
1228. टी-1 इत्यत्र "थ्य" नास्ति। एवं ए. इत्यत्र "सथ्यद्यां चछजा" इति पठ्यते।
1229. द्रष्टव्यम् - स्पथ्यद्यां चछजाः। (प्रा. प्र. 3/27)
1230. ए. व्यपदेशे
1231. टी-1, टी-2 अविल
1232. टी-1 जानं
1233. टी-1 लयितु
1234. टी-1 इत्यत्र नास्ति।
1235. टी-1 सदेहम्
1236. टी-1 त्रिकांठी
1237. टी-1 तीर्थः।
1238. टी-1 वदमा
1239. टी-1 इत्यत्र "भ्र" इति नास्ति।
1240. टी-1 प्रस्ताक्
1241. टी-1 त्यत्यर्थः।
1242. टी-1 स्त्रैण
1243. टी-1 इत्यत्र "च्य" इति नास्ति।
1244. टी. विधिनां
1245. ए. टी-2 तथा
1246. टी-1 विसलसित
1247. टी-1 इत्यत्र "व" नास्ति।
1248. टी-1 नळिना, टी-2 नाळिनी
1249. टी-1 स
1250. टी-1 दीर्घापागो
1251. ए. स्छितः
1252. टी-1 पित्वि
1253. ए. पस्छदितिः, टी-2 छदित
1254. टी-1 संगंधेषु
1255. टी-1, टी-2 कंपत
1256. टी-1 संगधेषु
1257. टी-1 संबंधेन
1258. ए. इतत्यगस्त्यः। टी-1 इत्यत्र गकारः नास्ति।
1259. टी-1 निर्वर्ततीनां
1260. ए. नभिज्ञायं
1261. टी-1 सत्
1262. टी-1 इत्यत्र नास्ति।
1263. टी-1 धचत्यः
1264. टी-1 पूर्व
1265. टी-1 प्रविनेय.
1266. ए. तवालुकृतिं, टी-1 तदानु.
1267. टी-1 परभ्रमक
1268. ए. मनसा
1269. टी-1 धर्म
1270. ए. नैवासी
1271. टी-1 अनुंकृतिं अनुकरां, ए. अनुकृतिं
1272. टी-1 इत्यत्र "त" नास्ति
1273. टी-1, ष्वु, ए. सुष्टु
1274. ए. मुखमुधोः
1275. टी-1 मुपगत
1276. टी-1, टी-2, र्चाहिगणे
1277. ए. इत्यत्र नास्ति.
1278. टी-1 दिष्वयमश्लील
1279. टी-1 तिषिद्धा.
1280. टी-1 इत्यत्र न प्राप्यते वाक्यमिदम्।
1281. टी-1 दहनंवत्
1282. टी-1 परीक्ष्मे
1283. टी-2 अंतः कुटिल
1284. टी-1 सौहृदयं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1285. टी-1 रव्यम्
1286. टी-1 द्विपदीमधगच्छ
1287. टी-2 तुछमित्यतुछ
1288. टी-1 भवन्ती
1289. टी-1 सवत्पीत्याह-भा
1290. टी-1 पूर्वणो
1291. टी-1 हिंसथे
1292. टी-2 अन्यायात्वात्
1293. टी-2 प्साया
1294. टी-1 शाब्धं
1295. टी-1 अनाअविम्
1296. टी-1 परवचनं
1297. टी-1 यथा
1298. टी-1 असत्ये
1299. टी-1 भवहा०
1300. टी-1 कारो
1301. टी-1 विनिपातौ
1302. टी-2 सर्वपथीना
1303. टी-1 विप्रलध्वा
1304. टी-1 कितवा
1305. टी-1 ययमपि म
1306. टी-1 ङ्ग यमनुछति
1307. टी-1 पुरुषे
1308. टी-1 भतरि
1309. टी-2 रसो
1310. टी-1 वृक्षकारुण्यमपि
1311. टी-1 करुणतीर
1312. टी-1 कोहिमि.
1313. टी-1 काकोक्षि
1314. टी-2 अथं
1315. टी-2 विप्रलभेस
1316. टी-1 संश्लेषै
1317. टी-1 प्रधाने
1318. टी-1 द्वया
1319. टी-1 दारपतेरेति
1320. टी-1 मित्युक्ते
1321. टी-1 आदो
1322. टी-2 माचंरति
1323. कोष्ठान्तर्गतोऽ
यं पाठः ए. इत्यत्र नोपलभ्यते।
(द्रष्टव्या 1277 पादटिप्पणी)
1324. टी. सजनैः
1325. टी-1 देवज्ञै, टी-2 दैवजै.
1326. ए. ध्वनाश्च
1327. टी. विपर्यये
1328. टी-1 तादृशं, टी-2 तादृशपुंत्रा
1329. टी-1 किदुर
1330. टी. ठत्व
1331. ए. शरिरा.
1332. ए. दैवानी
1333. टी-1 उर्ध्वाकरण
1334. टी-2 संस्छानं
1335. टी-2 एकं एकं
1336. टी-1 मादामे
1337. ए. आक्षीप्य
1338. ए. अप्सरेस्ती
1339. टी-1 मुद्दिश्यः
1340. टी-1 संस्थान, टी-2 संस्छानं
1341. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1342. टी-1 निनिरस्तं
1343. टी-1 पथोहैना,
1344. टी-2. स्छलं
1345. टी-2 पत्नीहं
1346. ए. स्मरामी
1347. ए. पुर्वस्मा, टी-2 पूर्वास्माद्
1348. टी-1 वेषम्य
1349. टी-1 पिश्चाम
1350. टी-1 निरस्तायाभूप्य.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1351. टी-1 ह्रदय
1352. टी-1 इत्यलमिति
1353. टी-1 शकुंतल.
1354. ए. शकुंलांगी.
1355. टी. प्रण्य
1356. ए. वंशक, टी-1 मुख
1357. ए. नागरिका:
1358. ए. स्युभ्रातर:
1359. टी. र्संक्ष्यात्
1360. टी. वातेति
1361. टी-1 इत्यत्र षकारो नास्ति
1362. ए. टी-2 मानितो
1363. टी-1 नाद्यात्मा धि
1364. टी-1 इत्यत्र "ब्रू" इति नास्ति।
1365. टी-1 पितृव्याया
1366. ए. लोलम्ब: ।
1367. टी-1 इत्यत्र "व"कारो नास्ति
1368. टी-1 सुद,
1369. टी-2 चिता
1370. टी-1 पैशाची, टी-2 पैशांची
1371. टी-1 राजसीयं
1372. टी-2 समादितम्
1373. ए, टी-1 हीनसंबोधनत्वरे
1374. टी-1 उत्कर्णं
1375. टी-1 गभयौ
1376. टी-1 इत्यत्र "ष" इति नास्ति
1377. टी-1 नेदश
1378. ए. कर्मकारि
1379. ए. त्रिकांडि
1380. टी-1 मित्यर्थ
1381. टी-1 इत्यत्र "ति" इति नास्ति ।.
1382. टी-1 शक्रवतार.
1383. टी-1 योपचोक्ति
1384. ए. ज्याति:
1385. टी-2 ना
1386. टी-2 अन्तराम
1387. टी-2 कुठुंब.
1388. टी-1 हिंमामय
1389. टी-1 परंप्रासम्
1390. टी-1 हिसो
1391. टी-1 रवो
1392. ए., टी-2 मछो
1393. टी-1, टी-2 पाकेयेति
1395. टी-1 मुञ्च
1396. टी-2 मछ
1397. टी-1 . यकं
1398. ए. द्वितिय.
1399. ए. विस्त्रंस्याद, टी-1 विस स्याद
1400. ए. टी-2. मछा.
1401. ए. मंधो
1402. ए. गछ
1403. ए. सुचकेमं
1404. टी-2 . ळीयर्कं.
1405. टी-1, ए. गमन
1406. टी-1 भर्तु
1407. टी-2 पतीक्ष्य
1408. टी-1 भुर्तृ
1409. टी-1 त्रिवेद्य
1410. ए. टी-2 गछतु
1411. ए. पसर्पणिया
1412. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1413. टी-1, टी-2 पिनध्दं
1414. ए. ष्पादिनि
1415. टी-1 लक्ष्यते
1616. टी-1 भावे
1417. ए. स्वामि
1418. ए. स्वामि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1419. टी-1 शामनं
1420. टी-1 युपपन्नः
1421. ए. इत्यत्र पङ्क्तिरियं पठितुं न शक्यते ।
1422. टी-1 भुणक्ति
1423. अस्मिन्<< >> प्रकोष्ठे प्रदर्शितः पाठः टी-3 इत्यत्रापि सम्प्राप्यते ।
1424. टी-1 युष्मत्करकं मे, टी-2 कारकं
1425. टी-1 इत्यत्र नास्ति ।
1426. टी-1 प्रसिद्धो
1427. ए. टी-2, प्रतिष्ठापितः, टी-1 षतिष्ट्वापितः
1428. टी-1, टी-2 बहमत
1429. टी-1 भत्री
1430. टी-1 महूर्तं
1431. टी-1, शयनोक्षित
1432. टी-1 नयेन
1433. टी-1 टी-3, ए. नामावृत्तेन
1434. टी-1 इत्यत्र वृत्तस्येति नास्ति ।
1435. टी-1, टी-3, ए. मुल्यं
1436. टी-1 महर
1437. टी-1 संक्ष्मः
1438. इत्यत्र नास्तीदं वाक्यम् ।
1439. टी-1 माक्षिणी
1440. टी-1 हरत्नयन
1441. टी-1 वत्पादः ।
1442. ए. प्रसिद्ध
1443. टी-1 ए. प्रसिद्धा, टी-2 प्रसिद्ध
1444. टी-2, टी-3 बाणोछिष्ट
1445. टी-1,टी-2,टी-3, पारंपारी
1446. टी-1 कृतस्या
1447. ए. टी-2, टी-3 जगछब्देन
1448. टी-2 सामान्य
1449. टी-2,टी-3, छिष्टम्
1450. टी-1 न्नतं
1451. टी, ए. च
1452. टी-1 उन्नतु
1453. टी-1 उत्कष्टं
1454. ए. भक्तिंरन्या
1455. टी-1 दृशी निगम्यते
1456. ए. जागर्त्तिति
1457. टी-2टी-1, टी-3 तस्माछुं
1458. ए. टी-2, टी-3 मधुस्छन
1459. टी-1 इत्यत्र विमानमिति नास्ति
1460. टी-2, टी-3 कवनमिव कवेः
1461. टी-1 कवेअमादः
1462. टी-1, ए. साम्प्रतम्मस्य
1463. टी-1 इत्यत्र नास्ति ।
1464. टी-1 ष्टूपषा
1465. टी-1 संणिज्य
1466. द्रष्टव्यम् - ध्यह्ययोर्झः । (प्रा. प्र. 3-28)
1467. टी-1 पुत्रः वा, टी-2, पुत्रि तया
1468. टी-1 विभावः
1469. टी-1 दुद्यानं
1470. टी-2,टी-3 प्रतिछन्ना
1471. टी-2,टी-3, टी-1 राजकुलजस्येति
1472. टी-2, टी-3 देउळमिव राउळमिति
1473. टी-1 र्षितपि
1474. टी-1 मतो
1475. टी-1 मुख्यार्थं
1476. टी-1 भव विबुधा
1477. टी-1 हळानि
1478. टी-1 इत्यत्र "व" नास्ति
1479. टी-1 इत्यत्र "ति" नास्ति
1480. द्रष्यव्यम् - शेषः संस्कृतात् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



(प्रा. प्र. 8-23)

1481. ए. टी-1 अकुंकमचन्दनमिति,
1482. ए. टी-1 असोमणमयोहणमिति
1483. ए. इत्यत्र नोपलभ्यते।
1484. टी-1 किमेतदेककिनी, टी-2, किमेतोदकाकिनी।
1485. टी-1 चूतकळिका
1486. टी-1, इत्यत्र नास्ति
1487. टी-1, चित्रमो
1488. टी-2 प्यर्ध्यं
1489. टी-1, तौ
1490. टी-2 अम्हहे
1491. टी-1 अम्हेह
1492. टी-1, टी-3, अप्रतिबद्धः
1493. टी-1,या उन्नति
1494. टी-3 सयुक्तौ
1495. टी-1, टी-3, करो
1496. टी-1 कामय
1497. टी-1 स्वार्षे कः
1498. टी-1 लक्ष
1499. टी-1,टी-2 ए.लक्ष
1500. टी-1, अभ्यधिक
1501. टी-1 तावाःदिति खण्डरूपो
1502. टी-1, अत्मा
1503. टी-1 प्रसीदत्वार्थः
1504. टी-3 बहिनी
1505. टी-1 शिशिरतौ, टी-2 शिशिर्तो
1506. टी-1 संहरतिति
1507. टी-2 शर्मेशक
1508. टी-2 भर्तृः
1509. टी-2 एतच्चन्नाम
1510. टी-1, राष्ट्रिरः।
1511. टी-2 प्रवेशक
1512. टी-2 प्रतिपत्तव्य
1513. टी-2 यात्
1514. टी-2 अर्य
1515. टी-1, टी-3 भर्त्री
1516. टी-1 प्रतिषिद्ध
1517. टी-1 अन्हेंहि
1518. टी-1 इति णाजणे
1519. टी-1 णो हो इति
1520. टी-1 व्याकार्षात
1521. टी-1 कथ्यतं
1522. टी-1 गमयतिति
1523. टी-1 अन्तपुरः
1524. टी-1 लक्ष्यतो
1525. टी-1 प्रवृत्ते
1526. टी-1 उन्मुको
1527. टी-1 कलकप्रियाक्तेः
1528. टी-1 वयीति
1529. टी-1 गणो
1530. टी-1 शुक्लदय
1531. टी-1 "आ....." इति त्रुटितः पाठः।
1532. टी-1 निरामः
1533. टी-1 अनुशयदःखेय, टी-2 दुःखोय
1534. टी-1 विशेषणं
1535. टी-1 चेदिच्छां
1536. टी-2 हमः।
1537. टी-1 व्याधि
1538. टी-1 मुदिश्य
1539. टी-1 पर्यवसतो
1540. टी-1 पूर्त्यवसरोक्त
1541. टी-1 संविधानंमू मिति
1542. टी-1 न्यायविचास्थानां
1543. टी-1 कंचुकिनां
1544. टी-1 वनोदेशे

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1545. टी-1 शापनो मोहो
1546. टी-1 तिष्ट
1547. टी-1 तावदमुना दंमुना
1548. टी-2 तास्मिन्पा
1549. टी-1 रमणीयतय
1550. टी-3, स्वागतेनेव, टी-2 स्वागतेनेवव
1551. टी-1 पट्ट्स्तलपूरिते
1552. टी-2 त्रित्रिकांडशेष:
1553. टी-1, टी-3 सन्निहिता
1554. टी-1 ततो
1555. टी-3 वृत्तान्तं
1556. टी-2, टी-3, प्रस्तावेष्ट्वि
1557. टी-1 वास्त्वमिति
1558. टी-1 एव
1559. टी-1 बद्धिना
1560. टी-1 यथा परिहासे ऽपि जल्पितं सर्थ इति यावत्।
1561. टी-1 भूनपरमेतीति
1562. टी-1 धरिणि:
1563. टी-1 ह्लयैक
1564. टी-1 पूर्यचले
1565. टी-1 भवति
1566. टी-1 अधर्य अप्रक
1567. टी-1 ज्जानात्
1568. टी-1 पंचमाकं पूर्वा
1569. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1570. टी-1 शकुंतलाया:
1571. टी-1 वासल्यादिति
1572. टी-2 प्रकृते
1573. टी-1 आत्मनेपव्यय, टी-2, अत्मनेपदव्यवच्छा
1574. टी-1 भूमियशयोरिति
1575. टी-1 तस्यामेव...नकायो:
1576. टी-1 न प्रबोधे विविधैमूहंते.
1577. टी-1 विरहश्रमे
1578. टी-1 संमोहो विस्मयादस्य संमोहो विस्मयनीय:
1579. टी-1 प्रण...तया
1580. टी-1 भ्रममूर्च्छायो.
1581. टी-2, टी-3, तत्रभन्त्या
1582. टी-1, दु:खिता
1583. टी-1 पारत
1584. टी-1 पाय
1585. टी-1 विविधमर्थे मृद्दकयति
1586. टी-1 न वितर्क
1587. टी-2 तिटिदिव
1588. टी-1, टी-2 नळचरितै
1589. टी-1 शांवर्थ
1590. टी-1, टी-3 भ्राति:
1591. टी-1 तार:शे
1592. टी-1 शकुन्तलाभरूप
1593. टी-1 अतीत
1594. टी-1 नान्वितर्थ
1595. टी-1 जनानांपि
1596. टी-1 पुनरपि
1597. टी-1 प्रप्रिमिति
1598. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः ए. इत्यत्र नोपलभ्यते। (द्रष्टव्या पादटिप्पणी 1483).
1599. टी-1 तुत्रयं
1600. ए. सधनं
1601. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1602. टी-1 अभाविनी
1603. टी-1 पुनर्नव, टी-2 पुनर्नेव
1604. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1605. टी-2, टी-3, ए. स्छानं
1606. ए. टी-2, टी-3 स्छलं

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1607. ए. अंगुळिय
1608. टी-1 मेव
1609. ए. स्छानं
1610. टी-1 मच्युत
1611. टी-1 श्रये:
1612. टी-2, टी-3 सुचिरितं
1613. टी-2, टी-3 पुण्यं
1614. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1615. टी-1 हस्तंहंसगं पापिता।
1616. टी-1 संबन्धे
1617. टी. आरिदा
1618. टी-1 चेति
1619. टी-1 स्त्रीत्व बोध्य।
1620. टी-1 त्यावतावंच
1621. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1622. टी-1 अवाधे:
1623. टी-1 सींवादित:
1624. टी-1 काक:
1625. टी-2, टी-3, मछस्य
1626. टी-1 अधे
1627. टी-1, ए. पथा:
1628. टी-1 सतु
1629. टी-2 चकरिआ
1630. टी-1 हि ठो
1631. टी-1 दर्शनीया
1632. ए. भवानु
1633. ए. टी-2, टी-3, अवस्छानसंस्छाने
1634. टी-1, ए. अन्तभवि:
1635. टी-1 स्य:
1636. टी-1 चुबक
1637. टी-1 वर्त्तिकेया
1638. टी-1 निमणि
1639. टी-1 निरुपमं
1640. टी-1 व्योक्तिता
1641. टी-1 लिखिंनु
1642. टी-1 किणनि
1643. टी-1 ए. यत्
1644. टी-1 एर्वे
1645. टी-1 रेखाया
1646. टी-1 स्नेहमवलेख्ययो:
1647. टी-1 प्येव
1648. टी-1 मित्रस्त
1649. टी-1 शकुन्तलां
1650. टी-1 अत्रानन्
1651. टी-1 मोहो चाटुक्तो
1652. ए. इत्यत्र "ले" इति नास्ति।
1653. टी-1, टी-2, ए. चाटुक्ति ॥
1654. टी-1 इत्यत्र "ष"कारो नास्ति।
1655. ए. यामी
1656. टी-1 ए. शिथिल आति नास्ति।
1657. टी-1 दांत
1658. टी-1 इत्यत्र दकारो नास्ति
1659. टी-1 सेचनन
1661. टी-1 ज्ञतरे सस्या
1662. टी-2, टी-3, चेष्टायो
1663. टी-1 इत्यत्र स्मादिति नास्ति
1664. टी-1, ए. खिन्नत्वा
1665. टी-1 चिह्नांतस्माहवर्तिकति
1666. टी-2, टी-3, मत्करस्छित
1667. टी-1 ठिबिका
1668. टी-1 हास
1669. टी-1 एव.
1670. टी-1 वक्ष्यमाण
1671. टी-1 नेत्रलमिति
1672. ए. टी-2 इत्यत्र नास्ति
1673. टी-1 आर्यु
1674. ए. टी-2, टी-3, गछामि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1675. द्रष्टव्यम् - यावदाषु वस्य ।(प्रा. प्र.4-5)
1676. ए. यत्
1677. टी-1 रम्यनेत्रकड्यमानां गृगी
1678. टी-2, टी-3 शृंगचलन
1679. टी-1 चलर्नर्भय
1680. टी-2 मूलभागो
1681. टी-2 वल्क
1682. टी-2, टी-3, वल्क
1683. टी-2 सप्राप
1684. ए. र्धनारिश्वर
1685. टी-2, टी-3, ए. व्यज्यन्ते
1686. टी-1 कट्यमार्नी
1687. टी-1 सान्येन
1688. ए.प्रीतिय
1689. निर्माण
1690. टी-1 चरणसिक
1691. ए. भ्रमध्ये
1692. टी-1 बन्धनं
1693. टी-2 इत्यत्र नास्ति
1694. टी-2, टी-3, कर्णापितं
1695. टी-2, टी-3, तन्मडन.
1696. टी. टी-2, शिरुषं
1697. ए. टी-2 रलानत्वं
1698. टी-1 इत्यत्र "चकितकितेव"
1699. टी-1 इदीचरमर्थमर्थ
1700. टी-1 कुसुमासर्व
1701. टी-1 तिलधयति
1702. ए. मधुकरः
1703. टी-1, टी-2 मधुण
1704. ए. अचिति
1705. टी-1 चारित
1706. टी-1 अभिज्ञातं
1707. टी-1 वामां
1708. टी-2, टी-3 यया
1709. टी-1 इत्यत्र पकारो नास्ति
1710. टी-1 इत्यत्र के इति नास्ति
1711. टी-1 चाह
1712. टी-1 आक्लिष्टू
1713. टी-1 कसनीयं
1714. टी-1 बन्धमिति
1715. टी-1 विभेक्ति, टी-2 भेति ।
1716. ए. केवे:, टी-1 कवे
1717. द्रष्टव्यम् -दोलादण्डदशनेषु डः । (प्रा. प्र. 2-35)
1718. ए. दस्छाने
1719. ए. गतार्थे
1720. टी-1 ससां
1721. ए. मिति
1722. टी-1 तन्ममेन
1723. टी-1 तभूतेन
1724. ए. पिति
1725. टी-1 चित्रमिदमिदमिति
1726. ए. निवृतो
1727. टी-1 विभायागः
1728. टी-1 सततां
1729. टी. कंठितः
1730. टी-1 करडकं
1731. ए. टी-2, टी-3, प्रच्छिता टी-1 इत्यत्र "प्र"नास्ति
1732. टी-1 पेरीर्या
1733. टी-1 हस्ताहदंतरा
1734. टी-1 अहंमेवै
1735. टी-1 भक्ता
1736. टी-1 मुत्तरीयं
1737. ए. टी-2, टी-3 उपस्छिता
1738. टी-1 कलकान्
1739. टी-1 वैजयंति

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1740. टी-1 तत्र
1741. ए. शीघ्रांणि
1742. ए. मपेक्षेते
1743. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः 'टी-1' इत्यत्र नास्ति।
1744. ए. टी-3, टी-2 स्छिर
1745. टी-2,टी-3, संजात
1746. टी-2, टी-3, स्छिरं
1747. ए. मञ्जरीत
1748. ए. टी-2, टी-3,स्छिर
1749. ए. इत्यत्र वकारो नास्ति।
1750. टी-1 जानध्दिः
1751. टी-1 पूर्वोक्ति
1752. ए. अंगिकारे
1753. टी-1 हास्तानां, टी-2, टी-3, हस्तां मा
1755. टी-1 मपस्वी
1756. टी-1 अपत्येरहि०
1757. ए. दारिद्रस्य
1758. ए. दाइर्नी
1759. टी-1 इत्यत्र "सा" इति नास्ति
1760. ए. निवृत्तं, टी-1 निवृंता
1761. टी-1 वर्तक, ए. वर्तक
1762. टी-1 गतधवविषये
1763. टी-1 कयमि
1764. द्रष्टव्यम् - ष्टस्य ठः। (प्रा. प्र. 3-10)
1765. द्रष्टव्य-आत्मनि पः। (प्रा. प्र. 3-47)
1766. टी-1 संरापिते
1767. टी-1 कृतः गर्भे
1768. टी-1, टी-2, टी-3, धरे च
1769. टी-1 तिमूढेः
1770. टी-2 अन्त
1771. टी-1 वत्तांतैन
1772. टी-1 भत
1773. टी-1 त्विं
1774. टी-1 इत्यत्र च्छकारो नास्ति
1775. टी-1 पिंडोदरः।
1776. टी-1 अनसशां
1777. टी-1, टी-2, टी-3, न्मायाम्
1778. टी-1, टी-2, टी-3, प्रतिष्टं
1779. टी-1 शुत्राः
1780. टी-1 अत्र बाहुब्जा
1781. टी-1 कालपुष्य
1782. टी-1 तोवद्वाष्यस्त्रुटित
1783. टी-1 द्योतयितां
1784. टी-2, षुण्मास
1785. टी-2 शेषाद्धिबणीति
1786. ए. मोहं, टी-2 मोहं गच्छीं
1787. टी-1 ममाश्वास
1788. टी-1 महेंद्रः
1789. टी-1, टी-2 अनुष्टारयंति
1790. टी-1 अचीरणभूतो
1791. टी-2 निवृतं
1792. टी-1 उद्धांत
1793. टी-2, मानेन
1794. टी-1, टी-2 वयस्य।
1795. टी-1 निधारण
1796. टी-1 गमेन
1797. ए. पदक्षेव्य
1798. टी-1 विभेति
1799. टी-1 शरसदग
1800. टी-1 पक्षर्थेः।
1801. टी-1 राभवश्च
1802. टी-1 शार्गाशृंगा
1803. टी-1 रागरूका, टी-2 जागरूपका

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1804. टी-1 हस्ता
1805. टी-1 लुठुतम्
1806. टी-1 अहम् पश्यामि
1807. टी-2, टी-3, गृहितो
1808. टी-1 पाशना
1809. टी-1 कर्मः ।
1810. ए. हंसु
1811. टी-1 स्पृष्टनेत्रे
1812. टी-1 एतावत्यर्थं तं
1813. ए. हुरिणा, टी-1 हणिणा
1814. ए. सख्याः
1815. टी-1 भेद्यार
1816. टी-1 मादृशा
1817. टी-1 जय्येतः
1818. टी-1 इत्यत्र "निकृत" इति नास्ति ।
1819. टी-1 ध्वनिः कृत
1820. टी-1 केवलखे
1821. टी-1 अधिजं
1822. टी-1, टी-2 इत्यत्र "पि" इति नास्ति
1823. टी-1, टी-2, टी-3 मौर्वीकम्
1824. ए. रक्षा
1825. द्रष्टव्या प्रथमाङ्कस्य पुष्पिका (360 पादटिप्पणी)
1826. ए. पूर्यत
1827. टी-2 सन्ध्यं
1828. टी-1 षष्ट्यंमि
1829. ए. पोटुंकितं
1830. टी-1 पात्रप्रवेशाद्
1831. टी-1 शोधर्यन्नाह
1832. टी-1 दयथा
1833. टी-1 नि
1834. टी-1 इत्यत्र वकारो नास्ति ।
1835. टी-1 लघू
1836. टी-1 वृष्टिकन्मेषवा
1837. टी-1 ईद्रांशतंभवत्
1838. टी-1 अष्टाभिलेकिया
1839, ए. मंत्राभिनि
1840. टी-1 कर्मवतं
1841. टी-1 इत्यत्र ज्ञकारो नास्ति
1842. टी-1 रोधश्च
1843. टी-1 गुणयती
1844. टी-1गणानां
1845. ए. प्रसंसया
1846. टी-1, टी-2, टी-3, याच्चा
1847. टी-2, तस्मितेन
1848. टी-1 इन्द्रे
1849. ए. इत्यत्र पठितुं न शक्यते
1850. टी-1 निबद्धः
1851. टी-1 भागमिति
1852. ए. टी-2 पर्वग्रन्था
1853. टी-1 पर्यायैपि
1854. टी-1 मरक्तौ
1855. टी-1 दानं चवैरि
1856. टी-1 न योज्याः
1857. टी-1, टी-2, टी-3 यत्
1858. टी-1 अन्तरे
1859. टी-1 इत्यत्र "शे" इति नास्ति
1860. टी-1 अंशु
1861. ए. पदपाद्यार्थ
1862. टी-1 लिखति
1863. टी-1, टी-2 ज्योतीषि
1864. ए. टी-2, टी-3, स्छापयति
1865. टी-1 विक्राम

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1866. टी-1 भ्रिस्थानोऽधीकार
1867. ए. टी-2, टी-3 विषेष्यरमिति
1868. टी-1 सानुर्लित्धैः
1869. टी-1 परिभिश्चैश्च
1870. टी-1 किन्नाः
1871. टी-2 घनां
1872. ए. इत्यत्र नास्ति
1873. टी-1 ए. ऊर्ध्वर्धामिभ्यो
1874. टी-1 अन्मज्जातां
1875. टी-1 ऊध्वाभिवताम्
1876. टी-1 मंचंति
1877. टी-1 उपलक्षितः
1878. टी-1तनुभावैन
1879. टी-2 भूवनं
1880. टी-1 रमणीयाः
1881. टी-1 शेलद्या उग्रा
1882. अगवादः
1883. टी-1 सानुमा
1884. टी-1, टी-3 सिंद्धोंत
1885. टी-1 नि
1886. टी-2 भूर्शाभावेने.
1887. टी-1 धूळिरेकत्राव
1888. टी-2, टी-3 लताङ्ग इति
1889. टी-1 निविढ
1890. टी-1 विश्वन्नहन्
1891. टी-2, टी-3 स्छणुः
1892. टी-1 कृष्टं
1893. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः ए. ईत्यत्र नोपलभ्यते।
1894. टी-1 स्नानकृत्यम्
1895. ए. स्छलं, टी-1 स्थांल
1896. टी-1 तस्यतामि
1897. टी-1 स्थलान्तर
1898. ए. उत्सर्पिणी
1899. टी-1 तरे
1900. टी-1 श्चयः
1901. ए. परिवर्तो, टी-1 परतो
1902. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1903. ए. गते
1904. ए. अस्छानम्
1905. ए. हावसत
1806. ए, अमर्देन
1907. ए. जृंभस्य
1908. द्रष्टव्यम् - ई सिंहजिह्वयोश्च। (प्रा. प्र 1-16)
1909. टी-1 तंदामि
1910. टी-2 पंचिवि
1911. टी-1 मुंचर
1912. ए. निमिलि
1913. टी-1 व्याकर्षत्
1914. ए. टी-2, टी-3 स्छाने
1915. टी-1 सत्वमत्री
1916. ए. जंतुभि
1917. टी-1 रोष्विधिक्करो
1918. ए. टी-2, टी-3, स्छाने
1919. टी-1 सर्वो
1920. टी-1, ए. इत्यत्र नास्ति
1921. टी-1 केसरिणां

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1922. टी-1 स्फुल्लिंगस्य
1923. टी-1 दशाया
1924. ए. टी-2, टी-3 स्छितः
1925. टी-1 दसा
1926. ए. टी-2, टी-3, वस्छ्यो
1927. टी-1 सींघने
1928. टी-1 एधोपे
1929. टी-1 दन्तभीतः
1930. ए. इत्यत्र नास्ति।
1931. ए. प्रवोभ्य
1932. टी-2 इत्यत्र नास्ति
1933. टी-1 ग्रंथिताः
1934. टी-1 अंगुलीयो
1935. टी-1 विवधेषु
1936. टी-1 चक्रवर्ता, ए. चक्रवर्त्ति
1937. ए. छिद्रितंगळि, टी-1 छिद्रतां
1938. ए. अलक्षाणि लक्षेतराणि
1939. टी-1 नूतनाहर्मखेन
1940. ए. आथापि
1941. टी-2 सर्व
1942. टी-1, टी-2 सकयारुष
1943. टी-1 मार्कण्डयस्य
1944. द्रष्टव्यम् - मयूरमयूखयोर्वा य्वा।(प्रा. प्र. 1-7)
1945. टी-1, ए. इति च रूप
1946. ए. क्रिडिष्यामि
1947. टी-1 असम
1948. ए., टी-2, क्तवर्णेः, टी-1 क्तवर्णः
1949. ए. अश्रयो
1950. टी-1 रेषा
1951. टी-1 दुमोहकर्यि
1952. टी-1 ग्राहिणोत्यर्थः
1953. ए. क्रिययौ
1954. टी-1 ईष्यते
1955. ए., टी-2, टी-3 स्छान
1956. टी-1 इत्यत्र द्कारो नास्ति
1957. टी-1 इत्यत्र नास्ति
1958. टी. यस्वेदादौ
1959. टी-2 पाठन्
1960. टी-1 बभ्रमा, टी-2 बभ्रम।
1961. टी-1 प्रकटः
1962. टी-1 कृतिनो
1963. टी-1 इत्यत्र "वि" इति नास्ति
1964. टी-1 दृष्ट्या
1965. टी-1, टी-2 ब्रभ्रमा
1966. टी-1 निर्वणनं
1967. टी-1 अचरअ
1968. द्रष्टव्यम् - तूर्यधैर्यसौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु रः। (प्रा. प्र. 3-18)
1969. टी-1 संबंधं
1970. टी-1 पुरोवंश
1971. टी-1 धापत्तैः
1972. टी-2 इत्यत्र नास्ति
1973. टी-1 कर्तृबाध्यम्
1974. टी-1 इत्यत्र "वि" इति नास्ति
1975. टी-1 मनेति
1976. टी-1 नम

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



1977. टी–1 येग्य
1978. टी–1 शकुन्तलावण्यमिति
1979. ए. अश्य
1980. टी–1 भ्रद्र
1981. टी–1 कमस्त्रिया
1982. टी–1. काकरौ
1983. टी–1 शब्दन
1984. टी–1 निमित्तो
1985. टी–1 लक्ष्ये
1986. ए. ता इति
1987. टी–1 इयं
1988. ए. श्रुणोतु
1989. ए. वर्जयीत्वा
1990. ए. पालयित्य
1991. ए. परिक्षे
1992. टी–2 प्रत्यक्षीकृत्य
1993. टी–1, ए. इत्यत्र नास्ति
1994. ए. ऐकेति
1995. ए – टी–2 आशंसा आसीत्
1996. ए., टी–2, टी–3, प्रकृतिस्छां
1997. ए. स्थानस्छिता
1998. टी–1 टी. अधा
1999. टी. विगतकीर्तिम्
2000. ए. इत्यत्र पठितुं न शक्यते
2001. टी. अपरागांते
2002. ए. दीनेति
2003. टी अत्रार्थ:तर
2004. ए. दुःखभागि
2005. टी–1 स्वपेतने
2006. टी–1 कोटिधरिति
2007. ए. अभरणं
2008. टी–1 यकदिमिर्वि
2009. ए:इत्यत्र "मा"इति नास्ति
2010. टी–1 अनुभव:
2011. टी–1 पिशनेन
2012. ए. मूढाचक्षु॰
2013. टी–1 केचिन्दाहस्तत्र
2014. ए. कच
2015. टी–1 द्रितुगे
2016. टी–1 इत्यौजरहाश्च
2017. टी–1द्वन्द्वं
2018. टी–1 द्वन्द्व
2019. टी–1 उत्पतयो
2020. टी–2, टी–3,स्छानम्
2021. टी–1 आत्मभदक्षो
2022. टी–1 दारकं सहिता
2023. टी–1 पौलम्या शंच्या
2024. टी–2 उभयकुलानंदनो
2025. ए. विशति
2026. ए. टी–2, टी–3 स्छिता
2027. टी–1 नैमित्तकयो:
2028. टी–1 वर्तन
2029. ए. भवानीति
2030. टी–1 एवमथोक्तं
2031. टी–1 जाते:
2032. टी–1 प्रत्यक्षी... स्वरूप
2033. ए., टी–2, टी–3 गछति
2034. टी–1 तिष्ट्वा

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



2035. टी-1 तद्धमने

2036. इतः परं टी-1 मातृकायां - "मीश्वर एव चतुर्दशभुवननिर्माण सन धौरंधरीचतुर चतुरानन दण्डधरखण्डकतया जन्मलययरयोर्लयप्रदस्तद्व्यतिरिक्ते त्रयस्त्रिंशत् कोटिसंख्याकेष्वदिति नन्देनेषु कश्चिद् अयोध्या द्वारवत्यादिषु स्थलजलेषु प्रतियुगं जन्मलययोरधीनी भवतीति कवेर्भाव इति दिक्॥ "इति प्राप्यते। ततश्च पुष्पिका वर्तते॥

2037. कोष्ठान्तर्गतोऽयं पाठः टी-1 इत्यत्र नास्ति ।

2038. ए. यकदर्शन

2039. ए. भ्रमतिशयः

2040. ए. इत्यत्र पठितुं न शक्यते।

2041. अस्मिन् << >> प्रकोष्ठे प्रदर्शित पाठः टी-3 इत्यत्रापि सम्प्राप्यते। (द्रष्टव्या पादटिप्पणी - 1423)

2042. टी-2 मन्यूः

2043. ए. तवव

2044. टी-2 स्तिता

2045. टी-3 इत्यत्रापि दृश्यमानः पाठः

2046. केवलं ए. एवं टी-2 इत्यत्रैव वाक्यानीमानी प्राप्यन्ते। "सर्वज्ञ" इति शब्दाद् ऊर्ध्वं टी-1 एवं ए. इत्यत्र किमपि न प्राप्यते। तेनानुमीयते यत् इतः परं ए. एवं टी-1 उभयत्रापि पाठः खण्डितः॥

2047 केवलं टी-2 एवं टी-3 इत्यत्रोपलभ्यते पाठोऽयम्॥

2048. टी-2 भेति

2049. अस्मिन् << >> प्रकोष्ठ दृश्मानः पाठः टी-3 इत्यत्राप सम्प्राप्यते।

2050 टी-2 कामानुक

2051. टी-2 ह्मिश्चत्यर्थः

2052. इत्यतः टी-3 इत्यस्य पाठः त्रुटितः। (द्रष्टव्या 2047 पादटिप्पणि)

2053. यथा पूर्वत्रऽ2046 इत्यत्र प्रदर्शितम् यद् "अत सर्वज्ञ" इत्यतः टी-1 इत्यस्य पाठः त्रुटितः। सोऽयं पाठः टी-1। इत्यत्रेत्थमनुसन्धीयते - [[इति महाराजपद.
शाकुन्तलसञ्जीवनाख्या(ख्य) टिप्पणे सप्तमोऽङ्कः॥ x x x x
बहुधान्य नाम संवत्सरे उत्तरायणे माघमासे शुक्लपक्षे तृतीयातिथौ शुक्रवासरे इदं पुस्तकं नारायण द्राविडेन लिखितम्॥ x x x x यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न विद्यते॥ ओम्॥ शुभमस्तु॥]]एतादृशी पुष्पिका टी-1 इप्यत्रोपलभ्यते॥

2054. केवलं टी-2 इत्यत्रैवोपलभ्यते॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# प्रकरण - 5

## *"अभिज्ञानशाकुन्तल" की देवनागरी-वाचना एवं अन्य दाक्षिणात्य टीकाकारों के साथ घनश्याम के पाठ की तुलना ॥*

**भूमिका :** संस्कृत नाट्यसाहित्य में अभिज्ञानशाकुन्तल सर्वाधिक लोकप्रिय कृति होने के कारण शताब्दिओं से उसकी अनेकानेक प्रतिलिपियाँ होती रही हैं। भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में इस नाटक को अनेकबार अभिनीत किया गया है और अनेक सहृदय भावकजनों ने उस पर विभिन्न टीका-टिप्पण साहित्य भी लिखा है। इस तरह से शाकुन्तल का पाठ अनेक शताब्दिओं पर्यन्त संक्रान्त होता रहा है। आज उन विभिन्न प्रतिलिपियों में संक्रमित हुए पाठ का संतुलनात्मक अभ्यास करने से प्रतीत होता है कि एक ही "अभिज्ञानशाकुन्तल" कृति का पाठ विभिन्न वाचनाओं में विभक्त हो सकता है। अद्यावधि अनेक विद्वानों ने असंख्य हस्तलिखित प्रतियाँ की सहायता से "शाकुन्तल" के पाठ का समीक्षण किया है और निम्नोक्त वाचनाओं का पाठ प्रकाशित किया है। जैसे कि -

**१. बंगाली वाचना :**

Kālidāsa's Śakuntala; critically edited, in the original Sanskrit and Prakrit of the Bangali recension, by the late Richard Pischel, Second edition, Cambridge, Massachusetts, Harvard University Press, 1922.

**२. काश्मीरी-वाचना :**

The Abhij ñānaśākuntala of Kālidāsa, Edited by S.K.Belvelkar, Sahitya Akademi, New Delhi, 1965.

**३. मैथिली-वाचना ( ? ) :**

कालिदासकृतम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नाटकम्(मैथिलपाठानुगम्): शंकर-नरहरिकृत-व्याख्याद्वय-समलंकृतम्, संपा० श्री रमानाथ उपाध्याय, प्रका० मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, १९५७

**४. पश्चिमभारतीय अर्थात् देवनागरी-वाचना :**

Śākuntala by Kālidāsa, the devanagari recension of text, edited by Monier Williams, The Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi, 3rd edition, 1961.

दूसरी ओर दक्षिणभारत में से भी शाकुन्तल की अनेक हस्तलिखित प्रतियां मिलती हैं और अनेक दाक्षिणात्य व्याख्याकारों ने उन पर व्याख्या-टीका-टिप्पणादि लिखा है। परन्तु इस सब सामग्री का समीक्षण करके, किसी विद्वान् ने शाकुन्तल की कोई स्वतन्त्र दाक्षिणात्य वाचना

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



है या नहीं ? उस पर गम्भीर विचार नहीं किया है। प्रस्तुत, घनश्याम की सञ्जीवनाख्य टिप्पण इस प्रकार के कार्य में "सहायक सामग्री" (Testimonium) के रूप में उपकारक हो सकेगी ऐसा, यहाँ अंगुलीनिर्देश करना आवश्यक है ॥

★

"अभिज्ञानाशाकुन्तल" के उपर कविश्री घनश्याम पण्डित द्वारा लिखी गई "सञ्जीवन" नामक टिप्पण का समीक्षित सम्पादन प्रस्तुत करनेके बाद, इसका एक तुलनात्मक अभ्यास प्रस्तुत किया जाता है। जिस में -

१. शाकुन्तल की देवनागरी-वाचना के साथ घनश्याम के पाठ की तुलना की गई है। इस के बाद -

२. अन्य दाक्षिणात्य टीकाकारों के साथ घनश्याम का पाठ कहाँ पर साम्य-वैषम्य रखता है ? उसकी आलोचना की गई है।

उपर्युक्त क्रम से, घनश्याम के पाठ का सब से पहले, देवनागरीवाचना का जो पाठ है उसके साथ तुलनात्मक अभ्यास करना आवश्यक है।[१] क्योंकि शाकुन्तल के पाठ सम्पादकों एवं आलेचकों का यह मन्तव्य रहा है कि शाकुन्तल की देवनागरीवाचना का जो पाठ है, वह दाक्षिणात्य पाठ के साथ अतीव साम्य रखता है। जैसे कि - डा. राघवन, प्रोफे. ब. क. ठाकोर एवं प्रोफे. डा. रेवाप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि -

(क.) It is the devanagari text which is commented upon by the well-known scholiast Rāghava Bhaṭṭa. The South Indian text, which is close to the previous, is familiar to us in editions with the gloss of Abhirama, Katayavema and others. (See : Preface to Abhij ñāna Śākuntala of Kalidasa, ed, by. S. K. Belvalkar, Sahitya Akademi, Delhi, 1965; (p.iii) written by V.Raghavan.)

(ख.) It is wellknown that the Devagari text of the Sakuntala differs considerably from the Bengali, that the Kasmiri text resembles the letter while presenting peculirities of its own, and that the Southern texts and commentaries although closely resembling the Devanagari, have also certain very useful variants, which modern editors have taken advantage of more

---

पूर्वोत्तरभारतमें में प्रचलित शाकुन्तल का बंगाली, काश्मीरी एवं मैथिली पाठ सर्वथा भिन्न एवं बृहत्तर है ऐसां सुविदिंत है। अतः घनश्याम के पाठ की तुलना उनके साथ करनी प्रासंगिक नहीं समझी है; और इसी कारण से शाकुन्तल के अन्य टीकाकारों, -शंकर, नरहरि एवं चन्द्रशेखर - के साथ भी घनश्याम की तुलना नहीं की गई है ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



or less freely, but in an unsystematic way. (See: The text of Śakuntalā, Section-1, Page-1, by B. K. Thakore, Pub. D. B. Taraporewala Sons & Co. Bombay, 1922.

(ग) डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीने "कालिदास ग्रन्थावली" का जो द्वितीयसंस्करण प्रकाशित किया है, उसकी प्रस्तावना (पृ. xvi) में लिखा है कि –

I have adopted the first one Nagara or Westerm recension, which corresponds with the fourth =दाक्षिणात्य recension upto 90% [द्रष्टव्य : **कालिदास ग्रन्थावली**, द्वितीयं परिवर्धितं संस्करणम्, सम्पा० रेवाप्रसाद द्विवेदी, **प्रका.** बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी, वाराणसी, १९८६ ] लेकिन, वास्तव में अभी भी देवनागरी वाचना एवं दाक्षिणात्य पाठ का सर्वांङ्गीण तुलनात्मक अभ्यास करना अवशिष्ट है। क्योंकि प्रोफे. ब. क. ठाकोर एवं प्रोफे. रेवाप्रसाद द्विवेदी ने जो उपर्युक्त साम्य का अभिप्राय प्रदर्शित किया है वह निम्नोक्त सामग्री पर आधारित है :-

श्री ब. क. ठाकोर ने दाक्षिणात्य पाठ के लिए –

(1) Sri Vani vilasa Press, Abhijñāna Śānkuntalam, with the commentary of Abhirāma, Srirangam. No date but recent, published as No. 13 of the Sri Vanivilasa Sanskrit Series.

2) H.H.Rama Varma of Cochin and K. Ramapisharaka Abhijñāna Śākuntala, with a new and exhaustive commentary, Trichur, 1913

3) T. F. oulkes : Kālidāsa; A complete Collection of the various readings of the Madras Mss. (Vol. II, & III give the Śakuntalā readings). Madras, 1904.

यह त्रिविध सामग्री का परीक्षण किया है। इस सामग्री में अभिराम की टीका को छोडकर बाकी(क) काटयवेमभूपकृत "वसन्तराजीया" (= कुमारगिरि राजीया) टीका, (ख.) घनश्यामकृत सञ्जीवनाख्य टिप्पण, एवं(ग.) अज्ञातकर्तृक "चर्चा" टीका का अंशमात्र भी उपयोग नहीं है, या उस टीकाओं का कोई निर्देश भी नहीं है।

प्रोफे. डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीजीने दाक्षिणात्य पाठ के लिए जो सामग्री का विनियोग किया है, वह इस प्रकार है :-

दाक्षिणात्य Sourthern रा. श्री. शाच.

(प्रस्तावना, पृ. xvi) अर्थात् –

१. रा. =शाकुन्तलेऽर्थद्योतनिकाकृद् राघवभट्टः, द्र. नि.(द्रष्टव्य – शाकुन्तलस्य निर्णयसागरतः प्रकाशितं द्वादशं संस्करणम्, १९५८, मुंबई)

२. श्री. =श्रीनिवासाचार्यकृता शाकुन्तलटीका १९५०, मद्रास, एवं,

३. शाच. =अभिज्ञानशाकुन्तलचर्चा, अनन्तशयनग्रन्थमाला, १९५, त्रिवेन्द्रम्, १९६१.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



डा. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी कि उपर्युक्त सामग्री में अभिरामकृत "दिङ्मात्रदर्शिनी" टीका, काटयवेमभूपकृत "वसन्तराजीया" (= कुमारगिरिराजीया) टीका एवं घनश्यामकृत सञ्जीवनाख्य टिप्पण के विनियोग का कोई निर्देश भी नहीं है ।

अत: प्रकृत प्रकरण में घनश्याम की टिप्पण के साथ साथ काटयवेम, अभिराम, चर्चा और श्रीनिवासाचार्य की टीकाओं को अपनी दृष्टि के सामने रखते हुए देवनागरी वाचना के पाठ की, दाक्षिणात्य पाठानुसारी घनश्याम के पाठ के साथ तुलना की जायेगी ।

★

देवनागरीवाचना का समीक्षित सम्पादन प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स ने किया है ।[२] लेकिन उन्होंने पाठनिर्धारण के लिए जो सामग्री अपनी समक्ष रखी थी[३], उसमें दुर्भाग्य से राघवभट्ट की "अर्थद्योतनिका" टीका नहीं थी । जब कि राघवभट्ट की टीका ही देवनागरी वाचना का प्राचीनतम उपलब्ध प्रमाण कही जा सकती है । क्योंकि देवनागरीवाचना का पाठ जिसमें संचरित हुआ है ऐसी प्राप्त हस्तलिखित प्रतियाँ, तो राघवभट्ट की अपेक्षा से अर्वाचीन कही जा सकती है । अत: "देवनागरीवाचना के साथ घनश्याम के पाठ" की जो तुलना यहाँ प्रस्तुत

---

**2. Śakuntalā** by Kālidāsa; The Devanagari recension of the text, Edited by Monier Williams, Third edition, Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi, 1961.

3 प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स ने अपनी (पूर्वोक्त)शाकुन्तल की आवृत्ति की प्रस्तावना (preface, P. ix) में लिखा है कि - The MSS. Which I principally used, were - (1) A MS. From the Colebrooke Collection, and therefore from the Eastern side of India, numbered 1718...(2) A MS. from the Mackenzie collection, and therefore from Southern side of India, numbered 2696. (3) A MS. from the Taylor collection, and therefore from Western India, numbered 1858, dated Ś aka 1734. All these belong to the India Office Library, and represent the three Indian Presidencies respectively. (4) A copy of a very good MS. at Bombay, presented to me b Mr. Shaw of the Bombay Civil Service. (5) An old Bengali MS. belonging to the India Office Library, numbered 1060. (6) A very old Bengali MS. from the Wilson collection in the Bodleian...I never failed to consult the three Commentaries (of Kāṭayavema, Śaṅkara and Candraśekhara) before deciding on the reading of my text, and made their interpretations the basis of the literal translation of the metrical part of the play given in the notes. (pp. IX X).

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



की जाती है, उसमें देवनागरीवाचना के पाठ के लिए (क.) मोनीयर विलीयम्स द्वारा स्वीकृत पाठ एवं (ख) राघवभट्ट की टीका में जो पाठ प्राप्त हो रहा है इन दोनों को लिया गया है। और "दाक्षिणात्य पाठ" के प्रतिनिधिरूप में घनश्याम के पाठ को लेकर तुलना प्रस्तुत की है :-

सब से पहले हम देवनागरी वाचना के श्लोकों की सूचि प्रस्तुत करते हैं। जिसमें पहले मोनीयर विलीयम्स द्वारा स्वीकृत श्लोकों के प्रथम – प्रथम चरण प्रतीक के रूप में दयि हैं, और उसके सामने राघवभट्ट और घनश्यामादि द्वारा वह श्लोक स्वीकृत है या नहीं ? वह बताया है। यहां राघवभट्टादि टीकाकारोंकी व्याख्या में जिस क्रम से वह श्लोक प्राप्त होता है वह क्रमांक निर्दिष्ट है। इस सूचि का तुलनात्मक अभ्यास करने से यह अवगत होगा कि देवनागरीवाचना एवं दाक्षिणात्य परम्परा के शाकुन्तल के श्लोकसंख्यादि में क्या साम्य वैषम्य है :-

[**ध्यानार्ह :** इस सूचि में श्लोकों के जो क्रमांक निर्दिष्ट किये हैं, और आगे चलकर विभिन्न टीकाकारों के जो गद्यवक्यों की तुलना प्रस्तुत की जायेगी, उनमें जो पृष्ठांक निर्दिष्ट किये जायेंगे वह निम्नोक्त आवृत्तियों के हैं :-

१. **मोनीयर विलीयम्स, अथवा देवनागरी ( दे. ना. )** =Sakuntala by Kalidasa The Devanagari recension of the text, edited by Monier Williams, The Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi, (3rd edition), 1961.

२. **राघवभट्ट** =अभिज्ञानशाकुन्तलम् – राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकया समेतम्। **सम्पा.** नारायण बालकृष्ण गोडबोले, निर्णयसागर यन्त्रालय, (सप्तमं संस्करणम्), मुंबई, शाके – १८३८.

३. **घनश्याम** =प्रस्तुत महानिबन्ध के चतुर्थ प्रकरणान्तर्गत श्लोक क्रमांक, और पृष्ठांक का निर्देश है।

४. **काटयवेम** =अभिज्ञानशाकुन्तलम्, **सम्पा.** श्री चेलमचेर्ल रंगाचार्य, आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैद्राबाद, १९८२.

५. **अभिराम** =अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अभिरामविरचितया दिङ्मात्रदर्शनाख्यया व्याख्यया सभूषितम्, श्रीवाणीविलास मुद्रायन्त्रालयः, श्रीरङ्गम्। (कालनिर्देशो नास्ति।)

६. **चर्चा** =अभिज्ञानशाकुन्तलचर्चा (१९६१-तमे क्रेस्ताब्दे अनन्तशयन-संस्कृतग्रन्थावल्यां १९५ तमाङ्केन प्रकाशितस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणम्) **प्रका.** केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम् त्रिवेन्द्रम्, १९७७

७ **श्रीनिवासाचार्य** =अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकम्, टीकाद्वयोपेतम् (राघवभट्टस्य श्रीनिवासाचार्यस्य च) मद्रास, १९५०

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



## श्लोक - सूचि

| क्रमांक | श्लोक का आद्यचरण | मोनीयर | राघवभट्ट | घनश्याम | काटयवेम | अभिराम | चर्चा | श्रीनिवास |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ |
| | **प्रथम अङ्क** | | | | | | | |
| १. | या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| २. | आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| ३. | सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्ग सुरभि | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ |
| ४. | ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमार | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| ५. | तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| ६. | कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्य. | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ |
| ७. | ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने. | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ |
| ८. | मुक्तेषु रश्मिषु निरायतपूर्वकाया | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
| ९. | यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्. | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ |
| १०. | न खलु न खलु बाणं सन्निपात्यो. | १० | - | १० | - | - | - | १० |
| ११. | तत्साधु कृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम् | ११ | १० | ११ | ११ | १० | १० | ११ |
| १२. | जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव। | १२ | ११ | १२ | १२ | ११ | ११ | १२ |
| १३. | रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः | १३ | १२ | १३ | १३ | १२ | १२ | १३ |
| १४. | नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः | १४ | १३ | १४ | १४ | १३ | १३ | १४ |
| १५. | कुल्याम्भोभिः;पवनचपलैः शाखिनो धौतमूलाः | १५ | - | १५ | - | - | - | - |
| १६. | शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः। | १६ | १४ | १६ | १५ | १४ | १४ | १५ |
| १७. | शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि. | १७ | १५ | १७ | १६ | १५ | १५ | १६ |
| १८. | इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपः क्षमं | १८ | १६ | १८ | १७ | १६ | १६ | १७ |
| १९. | इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे | १९ | - | १९ | - | - | - | - |
| २०. | सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं. | २० | १७ | २० | १८ | १७ | १७ | १८ |
| २१. | अधरः किसलयरागः शैवलेनापि रम्यं. | २१ | १८ | २१ | १९ | १८ | १८ | १९ |
| २२. | असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यम. | २२ | १९ | २२ | २० | १९ | १९ | २० |
| २३. | यतो यतः षट्चरणोऽभिवर्तते. | २३ | - | - | - | - | - | - |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २४. चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथु. | २४ | २० | २३ | २१ | २० | २० | २१ |
| २५. कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि | २५ | २१ | २४ | २२ | २१ | २१ | २२ |
| २६. मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभव. | २६ | २२ | २५ | २३ | २२ | २२ | २३ |
| २७. वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्. | २७ | २३ | २६ | २४ | २३ | २३ | २४ |
| २८. भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो. | २८ | २४ | २७ | २५ | २४ | २४ | २५ |
| २९. अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन. | २९ | २५ | २८ | २६ | २५ | २५ | २६ |
| ३०. स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू. | ३० | २६ | २९ | २७ | २६ | २६ | २७ |
| ३१. वाचं न मिश्रयति यद्यपि मे वचोभिः | ३१ | २७ | ३० | २८ | २७ | २७ | २८ |
| ३२. तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्त. | ३२ | २८ | ३१ | २९ | २८ | २८ | २९ |
| ३३. तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः. | ३३ | २९ | ३२ | ३० | २९ | २९ | ३० |
| ३४. गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं. | ३४ | ३० | ३३ | ३१ | ३० | ३० | ३१ |

## द्वितीय अङ्क

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३५. कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शना. | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| ३६. स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| ३७. न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो धनुरिदम्. | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ |
| ३८. अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्व | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| ३९. मेदच्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| ४०. गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहु. | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ |
| ४१. शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि. | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ |
| ४२. सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिता | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
| ४३. चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा. | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ |
| ४४. अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै. | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० |
| ४५. अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं. | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ |
| ४६. दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे. | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ |
| ४७. यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम् | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ |
| ४८. अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ |
| ४९. नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५०. अनुकारि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि. | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ |
| ५१. कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वद्द्वैधीभवन्ति मे मनः | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ |
| ५२. क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशवैः | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ |

## तृतीय अङ्क

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५३. का कथा वाणसन्धाने ज्याशब्देनैव दूरतः | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| ५४. जाने तपसो वीर्यं सा बाल परवतीति. | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| ५५. तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोर् | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ |
| ५६. अधापि नूनं हरकोपवह्निस्त्वपि ज्वलत्यौर्व. | ४ | - | - | - | - | - | - |
| ५७. अनिशमपि मकरकेतुर्मनसोरुजमावहन्नभिमतो - | | ५ | - | - | - | - | - |
| ५८. वृथैव सङ्कल्पशतैरजस्रमनङ्ग नीतो सि. | ६ | - | - | - | - | - | - |
| ५९. सम्मीलन्ति न तावद्बन्धनकोपास्तया. | ७ | - | - | - | - | - | - |
| ६०. शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनी. | ८ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| ६१. अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जघनगौरवात् | ९ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| ६२. स्तनन्यस्तोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं | १० | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ |
| ६३. क्षामक्षामकपोलमाननपुरः काठिन्यमुक्तस्तं | ११ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ |
| ६४. पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला | १२ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
| ६५. स्मर एव तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे. | १३ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ |
| ६६. इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमणीकृतं | १४ | १० | १० | १० | १० | १० | १० |
| ६७. अयं स ते तिष्ठति सङ्गमोत्सुको. | १५ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ |
| ६८. उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्या पदानि रचयन्त्याः | १६ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ |
| ६९. तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि. | १७ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ |
| ७०. तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां. | १८ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ |
| ७१. संदष्टकुसुमशयनान्या० | १९ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ |
| ७२. इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसन्निहिते. | २० | १६ | १६ | त्रुटितः | १६ | १६ | १६ |
| ७३. परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे | २१ | १७ | १७ | त्रुटितः | १७ | १७ | १७ |
| ७४. किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्. | २२ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ७५. उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पित. | २३ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ |
| ७६. गान्धर्वेण विवाहेन वह्व्यो राजर्षिकन्यकाः | २४ | २० | २० | २० | २० | २० | २० |
| ७७. अपरिक्षतकोमलस्य तावत्कुसुमस्येव. | २५ | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ |
| ७८. मुहुरङ्गुलिसंवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षर | २६ | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ |
| ७९. तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या. | २७ | २३ | २३ | २३ | २३ | २३ | २३ |
| ८०. सायन्तने सवनकर्मणि सम्प्रवृत्ते वेदीं. | २८ | २४ | २४ | २४ | २४ | २४ | २४ |

## चतुर्थ अङ्क

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ८१. विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं. | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| ८२. यात्येकतोऽस्तशिखरं प्रतिशेपधीनाम्. | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| ८३. अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुदवती | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ |
| ८४. दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतर्व भुवः । | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| ८५. क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा मांगल्यमा. | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| ८६. यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्ट. | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ |
| ८७. ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव । | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ |
| ८८. अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः. | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
| ८९. पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं. | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ |
| ९०. अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं. | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० |
| ९१. रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि. | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ |
| ९२. उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्त. | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ |
| ९३. संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे. | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ |
| ९४. यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ |
| ९५. उत्पक्ष्मणोर्नयनयोपरुद्धवर्त्ति बाष्पं. | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ |
| ९६. एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं. | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ |
| ९७. अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चै | :१७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ |
| ९८. शूश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं. | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ |
| ९९. अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणि. | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ |
| १००. भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी. | २० | २० | २० | २० | २० | २० | २० |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०१. शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से. | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ |
| १०२. अर्थो हि कन्या परकीय एव. | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ |

## पञ्चम अङ्क

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०३. अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ |
| १०४. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य. | २ | २ | २ | २ | २ | २ | २ |
| १०५. आचार इत्यवहितेन मया गृहीता | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ |
| १०६. भानुः सकृदयुक्ततुरंग एव रात्रिन्दिवं | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| १०७. प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा. | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| १०८. औत्सुक्यमात्रमवसादयति प्रतिष्ठा. | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ |
| १०९. स्वसुखनिरभिलापः खिद्यसे लोकहेतोः | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ |
| ११०. नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तदण्डः | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
| १११. किं तावद्व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो | | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ |
| ११२. महाभागः काम नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० |
| ११३. अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव. | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ |
| ११४. भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बु. | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ |
| ११५. का स्विदवगुंठनवती नातिपरिस्फुट. | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ |
| ११६. कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ |
| ११७. त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि नः. | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ |
| ११८. नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न त्वयापि पृष्टो. | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ |
| ११९. सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा. | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ |
| १२०. किं कृतकार्यद्वेषादधर्मं प्रति विमुखतो. | गद्यवाक्य | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ |
| १२१. इदमुपनतमेव रूपमक्लिष्टकान्ति प्रथम. | १८ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ |
| १२२. कृताभिमर्शामनुमन्यमानः सुतां त्वया. | १९ | २० | २० | २० | २० | २० | २० |
| १२३. व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं | २० | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ |
| १२४. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वमामानुषीषु | २१ | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ |
| १२५. मय्येव विस्मरणदारुणचित्तवृत्तौ. | २२ | २३ | २३ | २३ | २३ | २३ | २३ |
| १२६. अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विप्लेषसत्संगतं | २३ | २४ | २४ | २४ | २४ | २४ | २४ |
| १२७. आ जन्मनः शाठ्यमशिक्षितो यस्तस्या. | २४ | २५ | २५ | २५ | २५ | २५ | २५ |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १२८. तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा | २५ | २६ | २६ | २६ | २६ | २६ | २६ |
| १२९. यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि. | २६ | २७ | २७ | २७ | २७ | २७ | २७ |
| १३०. कुमुदान्येव शशांकः सविता बोधयति. | २७ | २८ | २८ | २८ | २८ | २८ | २८ |
| १३१. मूढः स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये | २८ | २९ | २९ | २९ | २९ | २९ | २९ |
| १३२. सा निन्दन्ति स्वानि भाग्यानि बाला | २९ | ३० | ३० | ३० | ३० | ३० | ३० |
| १३३. कामं प्रत्यादिष्टं स्मरामि न परिग्रहं | ३० | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ |

## षष्ठ अङ्क

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १३४. सहजं किल यद्विनिन्दितं न खलु. | १ | १ | १ | १ | १ | १ | मौन |
| १३५. आताम्रहरितपाण्डुर वसन्तमासस्य जीव. | २ | २ | २ | २ | २ | २ | मौन |
| १३६. त्वमसि मया चूतांकुर दत्त कामस्य. | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ |
| १३७. चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका वध्नाति. | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| १३८. रम्यं द्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिर्न प्रत्यहं | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ |
| १३९. प्रत्यादिष्टविशेषमंडनविधिर्वामप्रकोष्ठ० | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ |
| १४०. प्रथमं सारंगाक्ष्या प्रियया प्रतिबोध्यमान. | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ |
| १४१. मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
| १४२. इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ | ९ |
| १४३. स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु | १० | १० | १० | १० | १० | १० | १० |
| १४४. तव सुचरितमंगुलीय नूनं प्रतपु. | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ |
| १४५. एकैकमत्र दिवसे दिवसे मदीयं | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ |
| १४६. कथं नु तं बन्धुरकोमलाङ्गुलिं | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ |
| १४७. यद्यत्साधु न चित्रे स्याप्क्रियते तत्द. | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ |
| १४८. स्वित्रांगुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ |
| १४९. साक्षात्प्रियामुगतामपहाय पूर्व चित्रार्पितां | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ |
| १५०. कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ |
| १५१. कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ |
| १५२. एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ |
| १५३. अक्लिष्टबालतरुपल्लवलोभनीयं | २० | २० | २० | २० | २० | त्रुटितः | २० |
| १५४. दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ | त्रुटितः | २१ |
| १५५. प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याः स्वप्ने | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ | त्रुटितः | २२ |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १५६. येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन | २३ | २३ | २३ | २३ | २३ | त्रुटिताः २३ |
| १५७. संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी | २४ | २४ | २४ | २४ | २४ | त्रुटिताः २४ |
| १५८. अस्मात्परं बत यथाश्रुति संपृतानि | २५ | २५ | २५ | २५ | २५ | त्रुटिताः २५ |
| १५९. अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं | २६ | २६ | २६ | २६ | २६ | त्रुटितः २६ |
| १६०. एप त्वामभिनवकंठशोणितार्थी | २७ | २७ | २७ | २७ | २७ | त्रुटितः २७ |
| १६१. यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं | २८ | २८ | २८ | २८ | २८ | त्रुटितः २८ |
| १६२. कृताः शरव्यं हरिणा तवासुराः | २९ | २९ | २९ | २९ | २९ | त्रुटितः २९ |
| १६३. सख्युस्ते स किल शतक्रतोरजप्य. | ३० | ३० | ३० | ३० | ३० | त्रुटितः ३० |
| १६४. ज्वलति चलितेन्धनो भिर्विप्रकृतः | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ | त्रुटितः ३१ |
| १६५. त्वन्तमिः केवला तावत्परिपा. | ३२ | ३२ | ३२ | ३२ | ३२ | त्रुटितः ३२ |

## सप्तम – अङ्क

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १६६. प्रथमोपकृतं मरुत्वतः प्रतिपत्त्या लघु. | १ | १ | १ | १ | १ | त्रुटितः १ |
| १६७, अन्तर्गतप्रार्थनमन्तिकस्थं जयन्त. | २ | २ | २ | २ | २ | त्रुटितः २ |
| १६८. सुरसखस्य हरेरुभयैः कृतं त्रिदिवम्. | ३ | ३ | ३ | ३ | ३ | त्रुटितः ३ |
| १६९. सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्यः | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | त्रुटितः ४ |
| १७०. विच्छित्तिशेपैः सुरसुन्दरीणां वर्णरमी. | ५ | ५ | ५ | ५ | ५ | त्रुटितः ५ |
| १७१.त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठां | ६ | ६ | ६ | ६ | ६ | त्रुटितः ६ |
| १७२. अयमरविवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भिः. | ७ | ७ | ७ | ७ | ७ | त्रुटितः ७ |
| १७३. शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | त्रुटितः ८ |
| १७४. स्वायम्भुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः | ९ | ९ | मौन | ९ | ९ | त्रुटितः ९ |
| १७५. उपोढशब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं | १० | १० | १० | १० | १० | त्रुटितः १० |
| १७६ वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्ट. | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | त्रुटितः ११ |
| १७७ प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्प. | १२ | १२ | १२ | १२ | १२ | त्रुटितः १२ |
| १७८. मनोरथाय नाशंसेकिं वाहो स्पन्दसे. | १३ | १३ | १३ | १३ | १३ | त्रुटितः १३ |
| १७९. अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकाशरम् | १४ | १४ | १४ | १४ | १४ | त्रुटितः मौन |
| १८०. महतस्तेजसो बीजं वालोऽयं प्रतिभाति. | १५ | १५ | १५ | १५ | १५ | त्रुटितः १५ |
| १८१. प्रलोभ्यवस्तुप्रणयप्रसारितो विभाति. | १६ | १६ | १६ | १६ | १६ | त्रुटितः १६ |
| १८२. आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै. | १७ | १७ | १७ | १७ | १७ | त्रुटितः १७ |
| १८३. एवमाश्रमविरुद्धवृत्तिना संयमः | १८ | १८ | १८ | १८ | १८ | त्रुटितः १८ |
| १८४. अनेन कस्यापि कुलांकुरेण स्पृष्टस्य. | १९ | १९ | १९ | १९ | १९ | त्रुटितः १९ |
| १८५. भवनेपु रसाधिकेपु पूर्वं क्षितिरक्षार्थ. | २० | २० | २० | २० | २० | त्रुटितः २० |

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १८६. वसने परधूसरे वसाना नियमक्षाम. | २१ | २१ | २१ | २१ | २१ | त्रुटितः २१ |
| १८७. स्मृतिभिन्नमोहत्तमसो दिष्ट्या प्रमुखे. | २२ | २२ | २२ | २२ | २२ | त्रुटितः २२ |
| १८८. बाष्पेण प्रतिषिद्धेऽपि जयशब्दे जितं. | २३ | २३ | २३ | २३ | २३ | त्रुटितः २३ |
| १८९. सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते. | २४ | २४ | २४ | २४ | २४ | त्रुटितः २४ |
| १९०. मोहान्मया सुतनु पूर्वमुपेक्षितस्ते. | २५ | २५ | २५ | २५ | २५ | त्रुटितः २५ |
| १९१. पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमययायी. | २६ | २६ | २६ | २६ | २६ | त्रुटितः २६ |
| १९२. प्राहुर्द्वादशधास्थितस्य मुनयो यत्तेजसः | २७ | २७ | २७ | २७ | २७ | त्रुटितः २७ |
| १९३. आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः | २८ | २८ | २८ | २८ | मौन | त्रुटितः २८ |
| १९४. दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्य. | २९ | २९ | २९ | २९ | २९ | त्रुटितः २९ |
| १९५. उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं | ३० | ३० | ३० | ३० | ३० | त्रुटितः ३० |
| १९६. यथा गजो नेति समक्षरूपे तस्मिन्. | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ | ३१ | त्रुटितः ३१ |
| १९७. शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरूक्षे. | ३२ | ३२ | ३२ | ३२ | ३२ | त्रुटितः ३२ |
| १९८. रथेनानुत्खातस्तिमितगतिना तीर्णं. | ३३ | ३३ | ३३ | ३३ | ३३ | त्रुटितः ३३ |
| १९९. तव भवतु बिडौजाः प्राज्यवृष्टिः प्रजासु. | ३४ | मौन | ३४ | ३४ | ३४ | त्रुटितः ३४ |
| २००. प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः. | ३५ | ३४ | ३५ | ३५ | ३५ | त्रुटितः ३५ |

प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स ने सम्पादित किये हुए "शाकुन्तल"में कुल मिला के १९९ श्लोक प्राप्त होते हैं। लेकिन उनमें से १९१ श्लोकों पर राघवभट्टने टीका लिखी हे; परन्तु घनश्यामने १९४ श्लोकों पर "सञ्जीवन" टिप्पण लिखी है, और राघवभट्टादि द्वारा स्वीकृत हैं ऐसे दुसरे दो श्लोक भी उनकी आदर्शभूत "शाकुन्तल"की आवृत्ति में रहे होगें। इस तरह से घनश्याम के "शाकुन्तल" में कुल मिला के १९६ श्लोक रहे होंगे ॥ अब, "शाकुन्तल" के प्रत्येक अङ्क को क्रमशः लेकर चर्चा करना उचित होगा ॥

**प्रथम अङ्क में** – मोनीयर विलीयम्स की आवृत्ति में कुल ३४ श्लोक हैं। उनमें से चार श्लोक ऐसे है जिस पर राघवभट्ट सर्वथा मौन है। यह श्लोक इस प्रकार हैं :-

(क) न खलु न खलु बाणः०(१०)

(ख) कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः(१०) (१४)

(ग) इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना० । (१९) तथा

(घ.) यतो यतो षट्चरणोऽभिवर्तते । (२३.)

यद्यपि इन चारों श्लोकों पर राघवभट्ट ने कोई व्याख्या नहीं लिखी है। परन्तु घनश्याम ने तो इन चारों पर टीका लिखी ही है। यहाँ यह भी बताना होगा कि मोनीयर विलीयम्स

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



द्वारा स्वीकृत एवं राघवभट्टने जिस पर टीका लिखी है ऐसे दो श्लोकों :

–१. कः पौरवे वसुमतीं । एवं २. इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः०। पर घनश्याम मौन रहे हैं । अर्थात् उन्होनें इन दोनों पर टिप्पण लिखी नहीं है ॥

**दूसरे अङ्क में** – कुल मिला के १८ श्लोक हैं । ये १८ श्लोक प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स की आवृत्ति में है, उन्हीं १८ श्लोकों पर राघवभट्ट ने एवं घनश्याम ने टीका–टीप्पण लिखा है । अर्थात् यहाँ १८ श्लोकों के बारे में समानता ही है ।

**तीसरे अङ्क में** – राघवभट्ट ने जिस पर टीका नहीं लिखी है ऐसे कुल चार श्लोक प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स की आवृत्ति में सम्पादित हुए हैं । जैसे कि–

(क.) अद्यापि नूनं हरकोप० । (४.)

(ख.) अनिशमपि मकरकेतुः० । (५.)

(ग.) वृथैव संकल्पशतैः० । (६.)

(घ.) सम्मीलन्ति न तावद्०। (७.)

घनश्याम ने भी इन चारों श्लोकों पर कोई टिप्पण नहीं लिखा है । इस तरह से राघव एवं घनश्याम के शाकुन्तल तृतीय अङ्क में २४ श्लोक होंगे । जब कि प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स ने २८ श्लोकों को सम्पादित किया हैं ।

**चतुर्थ अङ्क में** – कुल मिला के २२ श्लोक हैं । ये जो २२ श्लोक प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स की आवृत्ति में हैं, उन्हीं पर राघवभट्ट एवं घनश्याम ने अपनी अपनी टीका–टिप्पण लिखी है, उसमें कोई अन्तर नहीं है ॥

**पञ्चम अङ्क में** – राघवभट्ट एवं घनश्याम की दृष्टि में (यानें उन दोनों व्याख्याकारों के सामंने जो शाकुन्तल का पाठ रहा होगा, उनमें) कुल मिला के ३१ श्लोक रहे होंगे । लेकिन प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स द्वारा सम्पादित "शाकुन्तल" में एक श्लोक न्यून है, अर्थात् उन में कुल ३० श्लोक दिखाई देते हैं । राघवभट्ट एवं घनश्याम में जो चौदहवाँ श्लोक है, जैसे कि –

किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञता ।
मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ॥

–वह प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स द्वारा सम्पादित आवृत्ति में गद्यवाक्य के रूप में मिलता है, और उसमें "कृतावज्ञता" शब्द को प्रक्षिप्त माना गया है ॥

**षष्ठ अङ्क में** – कुल मिला के ३२ श्लोकों दिखाई पडते हैं । इन ३२ श्लोकों के बारे में प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स, राघवभट्ट एवं घनश्याम के बीच कोई विरोध नहीं है ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



सप्तम अङ्क में – कुल ३५ श्लोक प्राप्त होते हैं। उनमें से जो ३४ वाँ श्लोक हैं – तव भवतु बिडौजाः – उस पर राघवभट्ट मौन है। जब कि घनश्याम ने इस श्लोक पर टिप्पण लिखी है ॥

इस तरह श्लोकसंख्या के सन्दर्भ में तुलना करने से हमें यह प्रतीत होता है कि देवनागरीवाचना के पाठ में और दाक्षिणात्य पाठ के प्रतिनिधिरूप में घनश्याम के पाठ में कोई विशेष वैषम्य नहीं है।

★ ★ ★

''शाकुन्तल'' के श्लोकों की तुलना करने के बाद जो संवादात्मक गद्य वाक्य है उनकी भी तुलना करनी चाहिए। क्योंकि दक्षिणभारत के टीकाकारों के समक्ष ''शाकुन्तल'' का जो पाठ प्रचलित होगा, वह शायद देवनागरीवाचना से भिन्न ऐसी एक दूसरी पाठपरम्परा का भी प्रतिनिधित्व कर रहा हो। जिसे हम ''शाकुन्तल''की ''दाक्षिणात्य-वाचना'' कह सकते है या नहीं ? यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। इसलिए अब हमें ''शाकुन्तल'' के कतिपय संवादात्मक गद्यवाक्यों की तुलना करनी आवश्यक हैं। यहाँ पर ऐसे गद्यवाक्यों का समूह प्रस्तुत किया जाता है कि जिस में प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स द्वारा सम्पादित ''शाकुन्तल'' के वाक्यों, और राघवभट्ट की टीका से प्राप्त शाकुन्तल के वाक्यों की अपेक्षा से घनश्यामादि दाक्षिणात्य टीकाकारों द्वारा स्वीकृत ''शाकुन्तल'' के वाक्यों में कुत्रचित् महत्त्वपूर्ण विभिन्न पाठान्तर दिखाई पडते हैं। जैसे कि –

## ॥ प्रथमोऽङ्कः ॥

१. देवनागरी ०आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितम्. पृ. २

१. राघवभट्ट......नेपथ्यविधानम्....पृ.२

२. घनश्याम.....नैपथ्यम्...पृ. ३९

३. काटयवेम...नैपथ्यविधानम्....पृ.२

४. अभिराम.....नैपथ्येति। पृ.५

५. चर्चा – (नैपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये यदि नेपथ्यविधानमवसितम्....पृ.१०

६. श्रीनिवास.......नेपथ्यविधानम् पृ.१९

२. दे. ना. – आर्य, इयमस्मि। आज्ञापयत्वार्यः। को नियोगोऽनुष्ठीयताम् इति। [अज्ज इअम्हि। आणवेदु अज्जो। को णिओओ अणुचिट्ठिअदुत्ति] पृ.३

१. रा. – आर्यपुत्र इयमस्मि। (एतदनन्तरं नवीने क्वचित्पुस्तके ''आणवेदु अज्जों को णिओओ अणुचिट्ठिअदु त्ति'' इति पाठः पुराणपुस्तकेष्वभावात्प्रयोजनाभावाच्चोपेक्ष्यः। पृ.८

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. - आर्यपुत्र ! इयमस्मि । आज्ञापयत्वार्यः को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति । पृ. ३९
३. का. -[अयय् इअंगीति]आर्य इयमस्मि । पृ. २
४. अभि. -आर्य इयमस्मि । पृ. ६
५. चर्चा -आर्य इयमस्मि [अय्य इयं ह्मीति]पृ. १३
६. श्री. -आर्य इयमस्मि । पृ. २०

**३. दे.न. नटी - सुविहितप्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते [.....परिहाइस्यदि] पृ.५**

१. रा. - ...परिहास्यते । पृ. ९
२. घन. - ...परिहीयते । परिभविष्यति इति वा पाठः । पृ. ३९
३. का. - सुविहितप्रयोगतया नाट्यस्य न किमपि परिहीयते [..परिहीआद] पृ.३
४. अभि. - ...किंचिदपि न परिहापयिष्यते । पृ.४
५. चर्चा - ...परिहावइस्सति इति पाठः । पृ. १५
६. श्री. - ..परिहापयिष्यति । पृ. २८

**४. दे.ना. नटी - ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः१ पृ.७ [इसीसिचुम्विआइं भमरेहिं.]**

१. रा. -ईषदीषच्चु० । पृ. १२
२. घन -ईषच्चुम्बितानि भ्रमरैः० । पृ. ४०
३. का. -ईषच्चुम्बितानि० [इसि चुम्बिआइ०]पृ. ४
४. अभि. -ईषच्चुम्बितानि. ०पृ. १०
५. चर्चा -ईषच्चुम्बितानि० । पृ. १६
६. श्री. -ईषच्चुम्बितानि. । पृ. ३६

**५. दे.ना. तदिदानीं कतमत्प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयामः । पृ. ७**

१. रा. - ...प्रकरणम्.....पृ.१३
२. घन. - ...प्रकरणम्.....पृ.४१
३. का. - ...प्रकरणम्...पृ. ५
४. अभि. ...कतमं प्रयोगम्...पृ.११
५. चर्चा....कतमत्प्रयोगकरणेन...पृ.१७
६. श्री०.....प्रकरणम्...पृ.४१

**६. दे. ना. - न खलु न खलु बाणः सन्निपात्यो० । पृ. १३**

१. रा. - मौनम् । श्लोकस्यास्य व्याख्यानं नास्ति ।
२. घन. - न खल्विति । ...श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त इति केचित् । पृ. ४३
३. का. - मौनम् । श्लोकस्यास्य व्याख्यानं नास्ति ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. अभि. - मौनम् । श्लोकस्यास्य व्याख्यानं नास्ति ।

५. चर्चा - मौनम् । श्लोकस्यास्य व्याख्यानं नास्ति ।

६. श्री. - न खलु. न खलु बाण:,...
मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः ॥......
अत्र "तूलराशाविति" क्वचित्पाठः ॥

७. दे.ना. कुल्यास्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो. । पृ. १९

१. रा. - मौनम् । अस्य व्याख्यानं नास्ति ।

२. घन. - कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो. । पृ. ४५

३. का. - मौनम् । अस्य व्याख्यानं नास्ति ।

४. अभि. - मौनम् । अस्य व्याख्यानं नास्ति ।

५. चर्चा - मौनम् । अस्य व्याख्यानं नास्ति ।

६. श्री. - मौनम् । अस्य व्याख्यानं नास्ति ।

८. दे.ना. सखि, अनसूये ! अतिपिनद्धेन वल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रिताऽस्मि । पृ. २३

१. रा. - सखि अनसूये, अतिपिनद्धेन वल्केन प्रियंवदया नियन्त्रिताऽस्मि । पृ. २८

२. घन. - अनसूये । अद [य]पिनद्धे (द्वे) न स्तं (स्त) नवल्कलेन प्रियंवदया दृढं नियन्त्रितास्मि शिथिलय तां च (ताव) एनम् । पृ० ४६

३. का. - अनसूये अदयपिनद्धेन स्तनवल्क. पृ. १४

४. अभि.-अनसूये, आयतपिनद्धेन स्तनवल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रिताऽस्मि । पृ. ३४

५. चर्चा - आयतपिनद्धेन दृढपिनद्धेन अमुना वल्कलेन स्तनांशुकभूतेन । पृ. ४४

६. श्री. - अणसूए इत्यादि । अदयमित्यनेन...दृढं बद्धास्मीति भावः । पृ. ७२

९. दे ना. इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे....कुसुममिव पिनध्दं पाण्डुपत्रोदरेण ॥ पृ. २४

१. रा. - मौनम् । नास्य व्याख्यानं वर्तते । पृ. २८

२. घन. - इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्धदेशे. । पृ. ४७

३. का. - मौनम् । नास्य व्याख्यानं वर्तते ।

४. अभि. - मौनम् । नास्य व्याख्यानं वर्तते ।

५. चर्चा - मौनम् । नास्य व्याख्यानं वर्तते ।

६. श्री. - मौनम् । नास्य व्याख्यानं वर्तते ।

१०. दे ना. हला रमणीये खलु कालेऽस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः [ वइअरो ]संवृत्तः। पृ. २८

१. रा. - ...व्यतिकर : [वइअरो] संवृत्तः । पृ. ३१

२. घन. - ...हळा(ला) रमणीये खलु कालै(ले) अस्या (स्य) लतापादपमिथुस्य

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



स्वयंवरः संवृत्तः । पृ. ४८

३. का. - ...व्यतिकरः संवृत्तः । [वइअरो] पृ. १६

४. अभि. - ...व्यतिकरः [वइअरो] पृ. ३८

५. चर्चा. - ....व्यतिकरः । पृ. ४७

६. श्री..... मौनम् । पृ. ८०-८१

**११. देना. यतो यतः षट्चरणोऽभि । पृ. ३२ ०तदनन्तरम् - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि. । पृ. ३३**

१. रा. - केवलम् - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि । पृ. ३३

२. घन. - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि. ।

तदनन्तरम् - यतो यतः षट्चरणो विवर्तते. पृ. ४९

३. का. - केवलम् - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि. । पृ. १८

४. अभि. - केवलम् - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि. । पृ. ४२

५. चर्चा. - केवलम् - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि. । पृ. ५६

६. श्री. - केवलम् - चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि. । पृ. ८५

**१२. दे.ना. हला परित्रायध्वम् परित्रायध्वम् मामनेन दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेणाभिभूयमानाम् । पृ ३४**

१. रा. -परित्रायेथां मां दुर्विनीतेन दुष्टमधुकरेण परिभूयमानाम् । पृ. ३६

२. घन. -परित्रायध्वम् अमुनो(ना) दुवि(र्वि)नीतेन अभिभूयमानाम् । पृ. ४९

३. का. -सख्यौ परित्रायेथां परित्रायेथामिमामनेन दुर्विनीतेन परिभूयमानाम् ॥ पृ. १८

४. अभि. -हलां परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेण अभिभूयमानाम् ॥ पृ. ४४

५. चर्चा -हला, परित्रायेताम् अमुना दुर्विनीतेन अभिभूयमानां माम् । पृ. ५६

६. श्री. -मौनम् । पृ. ८८

**१३. दे.ना. - कथमितोऽपि मामनुसरति । पृ. ३४**

१. रा. -कथम् इतोऽपि मामनुसरति । पृ. ३६

२. घन. -नैष दुष्टो विरमति । तस्मादन्यतो गमिष्यामि । [इ]तोऽपि मामनुसरति ।पृ.५०

३. का. -नैष दुष्टो विरमति । तस्मादन्यतो गच्छामि । कथमितोऽपि मामनुसरति । पृ.१८

४. अभि. -नैष दुष्टो विरमति । तस्मादन्यतो गच्छामि । कथमितोऽपि मामनुसरति । पृ.४५

५. चर्चा -मौनम् ।

६. श्री. -मौनम् ।

**१४. दे.ना...इयं नौ प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता । पृ .३५**

१. रा. -...नौ...अभिभूयमाना...। पृ. ३७

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. -इयं नः प्रियसखी मधुकरेणाकुलीक्रियमाणा कातरीभूता । पृ. ५१
३. का. -...नौ...आकुलीक्रियमाणा...। पृ. १९
४. अभि. - ...नः...आकुलीक्रियमाणा... । पृ. ४६
५. चर्चा. - ...। आकुलीक्रियमाणा...। पृ. ५७
६. श्री. - ...आकुली क्रियमाणा...पृ. ९१

१५. दे. ना. तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः । पृ. ३७
१. रा०.... मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः । पृ. ३८
२. घन०- ...सप्तपर्णवेदिकायाम् आर्य उपविश्य, परिश्रमापनोदनं करोतु । परि. समविणोदणमिति पाठे... ।
३. का०- तेन ह्यस्यां तावत्प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायामार्य उपविश्य परिश्रमविनोदं करोतु । १९
४. अभि० तेन ह्यस्यां तावत्प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायामार्य उपविश्य परिश्रमविनोदनं करोतु । ४७
५. चर्चा- तेन ह्यस्यां तावत्प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायामार्य उपविश्य परिश्रमविनोदनं... । पृ. ५७
६. श्री० मौनम् ।

१६. दे.ना. सखि, न युक्तं तेऽकृतसत्कारमतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम् । पृ. ५१
१. रा. - सखि, न...तिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम् । पृ. ४६
२. घन. - सखि, न युक्तमकृतसत्कारमतिथिविशेषं समुझ्झि(ज्झि)त्य स्वच्छन्दतो गमनमाश्रमवासिनो जनस्य । पृ. ५५
३. का. - सखि, न युक्त...विशेषम् उज्झित्वा आश्रमवासिनो बनस्य स्वच्छन्दतो गमनम् । पृ. २६
४. अभि. - सखि, न युक्त...विशेषम् उज्झित्वा आश्रमवासिनो जनस्य स्वच्छन्दतो गमनम् । पृ. ५९
५. चर्चा. - मौनम् । पृ. ७०
६. श्री. - ...अतिथिविशेषम्...आश्रमवासिनो जनस्य ॥ पृ. १०७

१७. दे.ना. यद्यात्मनः प्रभविष्यामि । का त्वं विसृष्टव्यस्य रोद्धव्यस्य वा । पृ. ५४
१. रा. - यद्यात्मनः प्रभविष्यामि । का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा । पृ.४९-५०
२. घन. - यद्यात्मने प्रभविष्यामि । का त्वं निरोधे वा विसर्जने वा । पृ. ५७
३. का. - यद्यात्मनः...का त्वं विस्रष्टव्यस्य वा रोद्धव्यस्य वा । पृ. २८

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. अभि. - यद्यात्मनः...का त्वं विस्रष्टव्यस्य वा रोद्धव्यस्य वा । पृ. ६२
५. चर्चा - यद्यात्मनः...। विसर्जनस्य वा रोधनस्य वा का त्वम् । पृ. ७२
६. श्री. -यद्यात्मनः...विसर्जितव्यस्य...रोद्धव्यस्य वा । पृ. ११३

**१८. दे.ना. - मा मैवम् । दर्शनेनैव भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि । पृ. ५७**

१. रा. -...पुरस्कृत..पृ. ५३
२. घन. -...सत्कृतोऽस्मि । पृ. ५८
३. का. -सत्कृतः....पृ. ३१
४. अभि. -...पुरस्कृतः...पृ. ६५
५. चर्चा. -...मौनम् । पृ. ७५
६. श्री. -मौनम् । पृ. ११९

**१९. दे. ना. - गच्छति पुरः शरीरं, धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः । पृ. ५८**

१. रा. -...पश्चादसंस्तुतम् । पृ. ५३
२. घन. -...पश्चादसंस्कृतम्... । पृ. ५८
३. का. -....पश्चादसंस्कृतम्...। पृ. ३२
४. अभि. -..पश्चादसंस्कृतम्...। पृ. ६६
५. चर्चा - असंस्कृतमिति... । असंस्तुतम् इति वा पाठः । पृ. ७६
६. श्री. -...असंस्कृतम्... । पृ. १२१

## ॥ द्वितीयोऽङ्कः ॥

**२०. दे.ना. - भो दिष्टं । एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि । पृ. ५९**

१. रा. -भो दृष्टम् । एतस्य...स्मि । पृ. ५५
२. घन. -हा हतोऽस्मि । एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन । पृ. ६०
३. का. -हा हतोऽस्मि, एतस्य...वयस्यभावेन । पृ. ३४
४. अभि. -भो दृढम् । एतस्य...वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि । पृ. ६९
५. चर्चा -दृढमेव अस्य...वयस्याभावेन निर्विण्णः [अस्मि]। पृ. ७९
६. श्री. -आः हतोऽस्मि । ..वयस्यभावेन ।
[आः इति, निर्विण्णोऽस्मीत्यपि पाठः ॥] पृ. १२३-१२४

**२१. दे.ना. - अयं मृगः । अयं वराहः । अयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजिष्वाहिण्ड्यतेऽटव्या अटवीम् । पृ. ६०**

१. रा. -अयं मृगः...मध्याह्नेऽपि....ऽटवीतोऽटवी । पृ. ५५

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. –अयं मृगः...इति मध्यंदिने...वनराजिष्वाहिण्डयं-(ण्ड्य)ते । पृ. ६०

३. का. –अयं मृगोः...वनराजिष्वाहिण्ड्यते । पृ. ३४

४. अभि. –अयं मृगः...मध्यंदिनेऽपि वनराजीष्वाहिण्ड्यते । पृ. ७०

५. चर्चा –अयं मृगः...मध्यंदिनेऽपि आहिण्डयते । पृ. ७९

६. श्री. –...मध्यंदिने...आहिण्ड्यते ॥ १२५

**२२. दे. ना. – पत्रसङ्करकषायाणि कटूणि गिरिनदीजलानि पीयन्ते । अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारोऽश्यते । पृ. ६०**

१. रा. –...कटूनि... । [कदुह्णाइं इति पाठे कदुष्णानि ।]...भूयिष्ठ आहारः... ।पृ.५५

२. घन. –पत्र...कदुष्णानि... । ...भूयिष्ठम् आहारः अश्यते । [आहारमिति भ्रान्तः पाठः] पृ. ६०

३. का. –..कदुष्णानि.. । ...भूयिष्ठमाहारोऽश्यते । पृ. ३४

४. अभि. –..कदुष्णानि.. । ...भूयिष्ठम् आहारम् अश्यते । पृ. ७०

५. चर्चा –...कदुष्णानि... । ...भूयिष्ठामाहारमश्यते । पृ. ८०

६. श्री. –..कदुष्णानि... । ...आहारम्... । पृ. १२५

**२३. दे.ना. तुरगनुधावनकण्डितसन्धे रात्रावपि निकामं शयितव्यं नास्ति । ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि ।**

१. रा.– तुरगानुधावनकण्डितसन्धे...प्रतिबोधितोऽस्मि । पृ. ५६

२. घन.– तुरंगानुधावनकंटकितसन्धेर्मे रात्रिं दिवमपि शयितव्यं नास्ति । यतो महत्येव प्रत्यूषे दासीपुत्रैः श्वगणिकलुब्धैं वनगाह नकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि । पृ. ६१

३. का.– तुरंगानुधावनसंक्षुभितसन्धेर्मे रात्रिमपि निकामं शयितव्यं नास्ति । ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैश्वगणलुब्धैर्वन्यग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि । पृ. ३४

४. अभि. तुरगानुधावनकण्टकितसक्थस्य रात्रावपि निकामं... । ...दास्याःपुत्रैः श्वगणिलुब्धकैर्वनग्रहण...ऽस्मि पृ. ७१

५. चर्चा तुरगानुधावनेन खण्डिते...सक्थिनी यस्य । ...निकामं.. शयितव्यं... रात्रावपि... श्वगणलुब्धकैरिति.. प्रतिबोधिकोऽस्मि ॥ ८०–८१

६. श्री. –तुर ऐति । रात्रिमपीति । ....वनग्रहण...कोलाहलेन । पृ. १२५ [इदमेव शब्दद्वयं विविच्यते]

**२४. दे. ना. – ततो गण्डस्योपरि पिटका संवृत्ता । पृ. ६१ [ तदो गण्डस्य उवरि पिण्डिआ संवृत्ता ]**

१. रा. –ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्त । पृ. ५६

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. -यतो गण्डस्योपरि स्फुटिका संवृत्ता । पृ. ६१

३. का. -ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः ॥ पृ. ३४

४. अभि -ततो गण्डस्योपरि पिटका संवृत्ता । पृ. ७१

५. श्री. -ततो गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता । पृ. ८१

६. श्री. -ततो गण्डस्योपरि पिटिका संवृत्ता । पृ. १२६

**२५. दे.ना. ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला नाम ममाधन्यतया दर्शिता । पृ. ६१**

१. रा. - ह्यः...शकुन्तला ममाधन्यतया... । पृ. ५६

२. घन. - ह्यः किलास्मास्वपहीनेषु तत्र भवते मृगानुसारिणे आश्रमपदं प्रविष्टाय तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता । पृ. ६१

३. का. - ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारिणः आश्रमपदं प्रविष्ट-स्य... नाम...दर्शिता । पृ. ३४

४. अभि. - ह्यः ...तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमदं....नाम ममोदरस्याधन्यतया दर्शिता । पृ. ७१

५. चर्चा. - ह्यः....उदरस्याधन्यतया - । पृ. ८१

६. श्री. - ह्यः....अधन्यतयेति । पृ. १२६

**२६. दे.ना. - साम्प्रतं नगरगमनाय मनः कथमपि न करोति । पृ. ६१-६२**

१. रा. साम्प्रतं नगरगमनाय मनः कथमपि न करोति । पृ. ५६

२. घन. - साम्प्रतं नगरगमने कथामपि न करोति । पृ. ६१

३. का. - साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि... । पृ. ३४

४. अभि. - साम्प्रतं नगरगमनस्य कथामपि... । पृ. ७२

५. चर्चा - संपदं इति ॥ पूर्वम्..कदाचिन्नगरगमनं प्रति कथनमात्रं करोति, इदानीं तु... । पृ. ८१

६. श्री. ...मौनम् । पृ. १२७

**२७. दे.ना. अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत् । पृ.६२**

१. रा. - अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत् । पृ.५६

२. घन. - अद्य विशेषं तमेव वृत्तान्तं चिन्तयतो मम प्रभातम् अक्ष्णोः आसीत् । पृ. ६१

३. का. - अद्य सविशेषं तदेव चिन्तयतो मे प्रभातमासीदक्ष्णोः ।

४. अभि. - अद्यापि अस्य तामेव चिन्तयतः प्रभातमक्ष्णोः । पृ. ७२

५. चर्चा - तामेव, न तु मृगयां नगरगमनादिकं वा । अक्ष्णोः प्रभातमिति । पृ. ८१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



६. श्री. - ...मौनम् - अक्ष्णोः प्रभातमासीत् । पृ. १२७

२८. दे.ना. "इति प्रवेशकः" इति नास्ति । पृ. ६३

१. रा. - "इति प्रवेशकः" इति नास्ति । पृ. ५७
२. घन. - प्रवेशकः इति । पृ. ६१
३. का. - प्रवेशकः । पृ. ३५
४. अभि. - प्रवेशकः । पृ. ७२
५. चर्चा - मौनम् ।
६. श्री. - प्रवेशकः ॥ पृ. १२३

२९. दे.न. - भो वयस्य । न मे हस्तौ प्रसरतः । तद्वाचामात्रेण जाप्यसे । पृ. ६५

१. रा. -...न मे हस्तपादं प्रसरति । वाङ्मात्रेण जापयिष्यामि । पृ. ५९
२. घन. - ...न मे हस्तपादाः प्रसरन्ति । वाङ्मात्रेण विजयी भव । पृ. ६२
३. का. - ..हस्तौ मे न प्रसरतः । वाङ्मात्रेण विजयी भव ॥ पृ. ३६
४. अभि. - न मे हस्तौ प्रसरतः । वाङ्मात्रेण जयी क्रियसे ।
५. चर्चा - वाङ्मत्रेण केवलया वाचा । जआ असि जस्से जयेत्युच्यसे । पृ. ८५
६. श्री. - मौनम् । पृ. १३३

३०. दे. ना. - किं मोदकखादिकायाम् । ...गृहीतः क्षणः । पृ. ६९

१. रा. - किं मोदकखण्डिकायाम् । तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः । पृ. ६२
२. घन. - किं मोदकखण्डेषु । तेन ह्ययं गृहीतः क्षणः । पृ. ६४
३. का. - किं मोदकखण्डनेषु । गृहीतः क्षणः । पृ. ३८
४. अभि. - किं मोदकखण्डिकायाम् । गृहीतः क्षणः । पृ. ८१
५. चर्चा - किं मोदकखण्डिकायाम् । गृहीतः क्षणः । पृ. ८७
६. श्री. - ...मौनम् । क्षणः । पृ. १३८

३१. दे.ना. दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलं गुण एव संवृत्ता । पृ. ७०

१. रा. - मौनम् । पृ. ६३
२. घन. - अदृष्टदोषापि...(अदृष्टे न दृष्ट०) पृ. ६५
३. का. - अदृष्टदोषे स्वामिनि... । पृ. ३९
४. अभि. - दृष्टदोषापि.. । पृ. ८२
५. चर्चा. - अदृष्टदोषा स्वामिनीति । पृ. ८८
६. श्री. - अदृष्टेत्यादि । अदृष्टा अलक्षिता दोषाः कार्श्यादयो यस्मिन् स तथोक्तः । पृ. १३८

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



३२. दे. ना. जयतु स्वामी । गृहीतश्वापदमरण्यम्...। पृ. ७१

१. रा. - मौनम् । पृ. ६३
२. घन. - ....गृहीतमृगप्रचारमरण्यम् । पृ. ६५
३. का. - ...निगृहीतश्वापदप्रचारम् । पृ. ३९
४. अभि. - ...गृहीतश्वापदप्रचारम्...। पृ. ८३
५. चर्चा - गृहीतश्वापदप्रचारमरण्यम् । पृ. ८९
६. श्री. - ...निगृहीतश्वापदम्...। पृ. १४०

३३. दे. ना. मन्दोत्साहः कृतोऽस्मि मृगयापवादिना माठव्येन । पृ. ७१

१. रा. - मन्दोत्साहः...माढव्येन । पृ. ६४
२. घन. - ...मांडव्येन । पृ. ६५
३. का. - ...माढव्येन । पृ. ४०
४. अभि. - भग्नोत्साहः ...माढव्येन । पृ. ८३
५. चर्चा - भग्नोत्साहः...। मौनम् । पृ. ८९
६. श्री. - ...मौनम्...माढव्येन । पृ. १४०

३४. दे. ना. - त्वं तावदटव्या अटवीमाहिण्डन्नरनासिकालोलुपस्य जीर्णर्क्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि । पृ. ७२

१. रा. - ...अटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिका....पतिष्यति । पृ. ६५
२. घन. - ..अटवीतोऽटवीम् हिण्डित्वा इदानीं नासिकामांसलोलुपस्य कस्यापि जीर्णर्क्षस्य मुखे पतितो भवसि । पृ. ६५
३. का. - त्वं तावत् अटवीतोऽटवीं भ्रमन् नरमांसलोलुपस्य कस्यापि जीर्णऋक्षस्य मुखे निपतिष्यसि । पृ. ४०
४. अभी. - त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नासिकालोलुपस्य कस्यापि जीर्ण ऋक्षस्य मुखे पतितोऽसि । पृ. ८४
५. चर्चा - मौनम् । पृ. ८९
६. श्री. - मौनम् । पृ. १४२

३५. दे.ना. गच्छ भो दास्याः पुत्र । ध्वंसितस्त उत्साहवृत्तान्तः । पृ. ७५

१. रा. - ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः । पृ. ६८
२. घन. - ध्वंसितस्ते उत्साहवृत्तान्तः । पृ. ६६
३. का. - ध्वंसितस्ते उत्साहवृत्तान्तः । गच्छ दास्याः पुत्र । पृ. ४२
४. अभि. - ध्वस्यतां तवोत्साहवृत्तान्तः । पृ. ८७

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



५. चर्चा - मौनम् । पृ. ९३

६. श्री. - मौनम् । पृ. १४७

**३६. दे.ना. साम्प्रतमस्मिन्पादपच्छायाविरचितवितानसनाथे शिलातलं उपविशतु भवान् । पृ. ७६**

१. रा. - साम्प्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयायामासने निषीदतु भवान् । पृ. ६८-६९

२. घन. - साम्प्रतमेतस्मिन्पादपछायया विरळ(ल)दळ(ल)लतावितानसनाथे आसने निषीदतु भवान् । पृ. ६७

३. का. - सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां अविरललतावितानसनाथे आसने निषीदतु भवान् । पृ. ४२

४. अभि - सांप्रमेतस्यां पादपच्छायायां अविरललतावितानसनाथे आसने निषीदतु भवान् । पृ. ८८

५. चर्चा - मौनम् । पृ. ९३

६. श्री. - मौनम् । पृ. १४७

**३७. दे. ना. - भो वयस्य । यदि सा तपस्विकन्यकाऽनभ्यर्थनीया । तदा किं तया दृष्टया । पृ. ७७**

१. रा. - हे वयस्य, ते तापसकन्यकाऽभ्यर्थनीया दृश्यते । पृ. ६९.

२. घन. - भो वयस्य, ते तापसकन्यकाऽपि किमभ्यर्थनीया दृश्यते । पृ. ६८

३. का. - भो वयस्य अद्य ते तापसकन्यका किमभ्यर्थनीया दृश्यते । पृ. ४३

४. अभि. - भो वयस्य अद्य ते तापसकन्यका किमभ्यर्थनीया दृश्यते । पृ.८९

५. चर्चा - तापसकन्यकेति । [अहो खल्वविमृश्यकारितायाः परा काष्ठेति भावः ॥] पृ. ९४

६. श्री. - मौनम् । पृ. १४९

**३८. दे. ना. यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिडिकायामभिलाषो भवेत् । तथाऽन्तःपुरस्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना । पृ. ७८**

१. रा. - यथा...तिन्तिण्यामभिलाषो...तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना । पृ. ७०

२. घन. - भो वयस्य, यथा...पक्व खर्जूरै...तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनः ... । पृ. ६८

३. का. - यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्त्रिणीकलेऽभिलाषो भवे- त्तथा स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना । पृ. ४४

४. अभि. - यथा...तिन्त्रिण्यामभि...." । पृ. ९०

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



५. चर्चा - यथा...तिन्त्रिण्या...स्त्रीरत्नपरिभाविनः ... पृ. ९४

६. श्री. - ...तिंत्रिण्याम्...(मौनम्) । पृ. १५०

३९.दे. ना. तेन हि गृहीतपाथेयो भव । कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति प्रेक्षे । पृ. ८३

१. रा. - तेन हि गृहीतपाथेयो भव । कृत "मिति पश्यामि । पृ. ७६

२. घन. - यद्येवं गृहीतपाथेयो भव ॥ कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिव पश्यामि । पृ. ७०

३. का. - यद्येवं गृहीतपाथेयो भव । कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि । पृ. ४७

४. अभि. - यद्येवं, गृहीतपाथेयो भवसि । ...कृतं त्वयाऽनुपसर्ग तपोवनमिति पश्यामि । पृ. ९७

५. चर्चा - तर्हि गृहीतपाथेयो भवसि । ...अनुपसर्गं निरूपद्रवम् । पृ. १००

६. श्री. - गृहीतपाथेयो भव । तपोवनमुपवनम् इत्यनेन... । पृ. १६०

४०. दे. ना. कोऽपरोऽपदेशः । ननु भवान् राजा । ...नीवारषष्ठभागमस्माकमुपहरन्त्विति । पृ. ८३-८४

१. रा. - कोऽपरोऽपदेशस्तव राज्ञः । नीवारछ्ठरभागम् अस्माकमुपहरन्त्वति । पृ. ७६

२. घन. - कोऽवसरः को वाऽपदेशः । त्वं राजा, ननु नीवारषड्भागं मे तापसा उपहरन्त्विति । पृ. ७०

३. का. - कोऽपरोऽदेशः । भवान् ननु राजा । नीवारषङ्गभागं तापसा अस्माकम् उपहरन्त्विति । पृ. ४७

४. अभि. - कोऽपरोऽपदेशः । ननु त्वं राजा । नीवारषष्ठ भागं मे उपहरत्त्विति । पृ. ९८

५. चर्चा - ...अपदेशेन व्याजेन ।...षष्ठं भागं षड्भागम् । उपहरन्तु । तपस्विन इति शेषः । पृ. १०१

६. श्रीष - अपदेशेन व्याजेन... मौनम् । पृ. १६१

४१. दे.ना. देव्याज्ञापयति । आगामिनि चतुर्थदिवसे पुत्रपिण्डपालनो नामोपवासो भविष्यति । पृ. ९०

१. रा. - ..."प्रवृत्तपारणो म उपवासो भविष्यति । पृ. ८१

२. घन. - देव्य आज्ञापयन्ति । आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारणो नः उपवासो भविष्यति । पृ. ७४

३. का. - देव्याज्ञापयति । आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारण उपवासो मे भविष्यति । पृ.५१

४. अभि. - देव्याज्ञापयति । आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारण उपवासो मे भविष्यति । पृ. १०४

५. चर्चा - ...निर्वृत्तपारणो... । पृ. १०५

६. श्री. - मौनम् । पृ. १६९

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



## ॥ तृतीयोऽङ्कः ॥

४२. दे. ना. – येन प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्माणि संवृत्तानि ॥ पृ. ९५

१. रा. – प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति राजनि निरुपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति । पृ. ८४

२. घन. – ...निरुपप्लवानि... । पृ. ७६

३. का. – तत्रभवति निरुपप्लवानि नः कर्मणि संवृत्तानि । पृ. ५४

४. अभि. – तत्रभवति राजनि निरुपप्ल वानि नः कर्माणि संवृत्तानि । पृ. १०८

५. चर्चा – निरुपप्लवानि निरुपद्रवानि । प्रवृत्तानि । पृ. १०७

६. श्री. – निरुपप्लवानि निर्विघ्नानि. । पृ. १७१

४४. दे. ना. – स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति । पृ. १०९

१. रा. – स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति । पृ. ९३

२. घन. – सुविभक्तं खलु दुःखं, सखि अवेदनं भवति । पृ. ७९

३. का. – संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति । पृ. ६०

४. अभि. – संविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति । पृ. ११९

५. चर्चा – संविभक्तं खलु दुःखं सह्यवेदनं भवति ।

६. श्री. – संविभक्तं...सह्यवेदनं.. । पृ. १९१

४५. दे. ना. अन्यथाऽवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम् । पृ. १११

१. रा. – अन्यथाऽवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम् । पृ. ९५

२. घन. – अन्यथा सिञ्चत इदानीं मे उदकम् । पृ. ८०

३. का. – अथवा प्रसिञ्चत मे उदकम् ॥ पृ. ६१

४. अभि. – अन्यथा अवसिञ्चतमिदानीं मे उदकम् । पृ. १२१

५. चर्चा – अन्यथा अवसिञ्चतमिदानीं मे उदकम् । पृ. पृ. ११७

६. श्री. – उदकं सिंचतं निवापजलं प्रयच्छतम् । पृ. १९४

४६. दे. ना. – हला मदनलेखोऽस्य क्रियताम् । इमं देवताशेषापदेशेन समुनोगोपितं कृत्वास्य हस्तं प्रापयिष्यामि । पृ. ११५

१. रा. – मदनलेखस्तस्मै क्रियताम् । इमं मदनलेखं देवप्रसादस्यापदेशेन...सुमनोगोपितं... । पृ. ९७

२. घन. – ..अस्मै...सुमनोवेष्टितं गोपितं कृत्वा देवताप्रसादापदेशेन तस्य राज्ञः । पृ.८२

३. का. – सखि, मदनलेखोऽस्य क्रियताम् । तं सुमनोगोपितं कृत्वा देवप्रसादव्यपदेशेन

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



तस्य राज्ञो हस्तं प्रापयिष्यामि । पृ. ६३

४. अभि. - हला, मदनलेखोऽस्य क्रियताम् । तं सुमनोगोपितं देवशेषापदेशेन तस्य राजर्षेर्हस्तं प्रापयिष्यामि । पृ. १२५

५. चर्चा - हला, मदनलेखोऽस्याः क्रियताम् । तं सुमनोगोपितं देवशेषाव्यपदेशेन तस्य राज्ञो हस्तं प्रापयिष्यामि । पृ. १२०

६. श्री. - मौनम् । पृ. १९८

**४७. दे. ना. हला, चिन्तिता मया गीतिका । पृ. ११८**

१. रा. - चिन्तितं मया गीतवस्तु । पृ. १००

२. घन. - हला, मया चिन्तितं आलिखितव्यं वस्तु । पृ. ८३

३. कस. - हला चिन्तिता मया गीतिका । पृ. ६४

४. अभि. - हला चिन्तितं मया प्रस्तुतम् । पृ. १२८

५. चर्चा - ...चिन्तितं...वस्तु । पृ. १२२

(वस्तुतु पद्यरूपेण रचितं अर्थशरीरमित्यर्थः शब्दशरीरं तु दण्डपूपिकया सिद्धम् ।)

६. श्री. - गीतिकाम् । पृ. २०३

**४८. दे. ना. - तव न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रिमपि । निर्घृण तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथाया अङ्गानि ॥ पृ. ११९**

१. रा. - तव न जाने...रात्रावपि । निर्घृण...वृत्तमनोरथान्यङ्गानि । पृ. १०१

२. घ. - तव न जाने...युक्तमनोरथान्यंगानि । पृ. ८३

३. का. - तव न जाने...निर्घृणस्तपति...युक्तमनोरथान्यङ्गानि ॥ पृ.६४

४. अभि. - तव न जाने...त्वय्यभिमुखमनोरथं हृदयम् । पृ. १२९

५. चर्चा - तव न जाने हृदयं मम पुनर्मदनो दिवापि रात्रिमपि । निर्घृण ! तपति बलवत् तवाभिमुखमनोरथं हृदयम् ॥ तुई वुत्तेति पाठान्तरम् । त्वयि वृत्तेतिच्छाया ॥ पृ. १२३

६. श्री. - मदनस्त्वयि युक्तमनोरथान्यंगानि तपति... । पृ. २०४

**४९. दे. ना. यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति, तथा निर्वाहय । पृ. १२३**

१. रा. - यथा नोऽस्माकं प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय । पृ. १०५

२. घ. - यथा नः सखी...तथा निवह । पृ. ८५

३. का. - (पाठः खण्डितः) । पृ. ६६

४. अभि. - यथा नौ प्रियसखी...तथा निर्वह । पृ. १३३

५. चर्चा - वअस्स इत्यादि । ...मौनम् । पृ. १२८

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



६. श्री. - बन्धुजनशोचनीया न भवतीत्यनेन...यथा दुःखिता न भवति तथा कर्तव्यम्, शपथपुरःसरं वक्तव्यमिति भावः ॥ पृ. २१२

**५०. दे. ना. पौरव रक्ष विनयम् । मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि । पृ. १२७**

१. रा. - पौरव रक्षाविनयम् । मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभावामि । क्वचित्पुस्तके "मअणवाहिआओ वि कण्णआओ अत्तणो न प्पवहन्ति इति पाठः । पृ.८७

२. घन. - पौरव, रक्ष विनयम् । मदनसंतप्तापि आत्मने न प्रभवामि । पञ्चशरो बाधते । किं करोमि । पृ. ८७

३. का. - पौरव रक्ष विनयम् । मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि । पृ. ६७

४. अभि. - पौरव रक्ष विनयम् । मदनसंतप्ताऽपि न खल्वात्मनः प्रभवामि । पृ. १३७

५. चर्चा - मदनप्रतप्तापि खलु नात्मनः प्रभवामि । पृ. १३१

६. श्री. - पौरवेत्यादि । विनयं...रक्षेत्यनेन ।...मदनहस्तगतापीत्यादिना आत्मनः न प्रभवामीत्यनेन...। पृ. २१७

**५१. दे. ना. चक्रकवधूके ! आमन्त्रयस्व सहचरम् । पृ. १२८**

१. रा. - चक्रवाकवधूः आमन्त्रयस्व सहचरम् । पृ. १०९

२. घन. - चक्रवाकवधूः आमन्त्रयते सहचरम् । पृ. ८८

३. का. - चक्रवाकधूके, आमन्त्रयस्व सहचरम् । पृ. ६९

४. अभि. - चक्रवाकवधु... । पृ. १३९

५. चर्चा - चक्रवाकवधूः आमन्त्रयस्व सहचरम् । पृ. १३३

६. श्री. - चक्रवाकवधूके - । पृ. २२०

**५२. दे. ना. कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु । पृ. १३१**

१. रा. - कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु । पृ. ११२

२. घन. - कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तद् । पृ. ८९

३. का. - मौनम् । पृ. ७०

४. अभि. - मौनम् । पृ. १४१

५. चर्चा - तुशब्देन... । ...चुम्बितं तदिति पाठान्तरम् । पृ.१३४-१३५

६. श्री. - ..तुशब्दः पुनश्शब्दार्थवाचकः । ...केचित् न चुम्बितं तदिति पठन्ति । तदयुक्तम् । पृ. २२४

## ॥ चतुर्थोऽङ्कः ॥

**५३. दे. ना. - अथ चतुर्थाङ्कादौ विष्कम्भः । पृ. १३४**

१. रा. - [इति]विष्कम्भः । पृ. १२१ विष्कम्भलक्षणं पूर्वोक्तम् । अयमपि

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



शुद्धविष्कम्भः केवलं प्रकृतेन कृतत्वात् । (?) पृ. १२१

२. घन. - अथ प्रवेशकम् प्रक्रमते । ...मिश्रविष्कम्भ इति केचित् । पृ. ९१

३. का. - अथ कविः...प्रवेशकं...प्रस्तौति । पृ. ७२

४. अभि. - प्रवेशकः । पृ. १५२

५. चर्चा - अय...प्रवेशकमारभते । पृ. १३७

६. श्री. - कविरिदानीं...विष्कंभं...प्रस्तौति । पृ. २२८

**५४. दे. ना. - किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः । पृ. १३९**

१. रा. - किंचित्पुनः सानुक्रोशः सकृपः कृतः । पृ. ११९

२. घन. - तथापि किमपि अनुक्रोशः कृतः । पृ. ९३

३. का. - किंचित्पुनः सानुक्रोशः कृतः । पृ. ७५

४. अभि. - अनुक्रोशः दया । पृ. १४९

५. चर्चा - सानुक्रोशः सदयः । पृ. १३९

६. श्री. - सानुक्रोशः दयासहितः इत्यनेन... । पृ. २३५

**५५. दे. ना. - भगवन् प्रथममिति प्रेक्ष्याविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधो मर्षयितव्य इति । पृ. १३९**

१. रा. - भगवन् प्रथम इति... पृ. १२०

२. घन. - भगवन् प्रथमभक्तिमवेक्ष्य अविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य एकोऽपराधो मर्षयितव्य इति । पृ. ९४

३. का. - भगवन् प्रथमभक्तिमवेक्ष्य अविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवता एकोऽपराधो मर्षयितव्यः । पृ. ७६

४. अभि. - भगवन्, त्वया पूर्वभक्तिं प्रेक्ष्याविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो मर्षितव्यः इति । पृ. १५०

५. चर्चा - भअवं इत्यादि । त्वद्विषये प्रवृत्तां प्राक्तनीं भक्तिं दृष्टवा...सोढव्य इत्यर्थः । पृ. १३९

६. श्री. - मौनम् । पृ.२३५

**५६. दे. ना. तस्मिन्स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति । पृ. १४०**

१. रा. - तस्मिन्स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति । पृ. १२०

२. घन. - तस्मिन् साधनीयोपाया सखी जीविष्यति । पृ.९४

३. का. - तेन स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति । पृ.७६

४. अभि. - तस्मिन् स्वाधीन उपायो भवि. । पृ. १५१

५. चर्चा - किमपि स्वाधीन उपायो भवि ति । पृ. १३९

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



६. श्री. - मौनम् । पृ. २३६

५७. दे. ना. - एवं नाम विषयपराङ्मुखस्याप्यस्य जनस्य नैतन्न विदितम् । तेन राज्ञा शकुन्तलायाम् अनार्यमाचरितमिति । पृ. १४४

१. रा. - यद्यपि एवमपि नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्याप्येतन्निवेहितमपि, न विदितमेवेति योज्यम्। तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायाम् अनार्यमाचरितम्। पृ. १२३

२. घन. - एवञ्च नाम विषयपराङ्मुखस्य तपस्विजनस्य एतद्वृत्तं न विदितम्, यत्तथा विधेन राज्ञा शकुन्तलायै अन्याय्यम् आचरितम् । पृ. ९६

३. का. - एवं नाम विषयपराङ्मुखस्यापि जनस्य नैतन्न विदितम् । तेन राज्ञा शकुन्तलायाम् अन्याय्यमाचरितम् । पृ. ७८

४. अभि. - एवं च नाम विषयपराङ्मुखस्य जनस्य एतन्न विदितम् । तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायाम् अनार्यमाचरितम् । पृ. १५५

५. चर्चा - एवञ्च नाम..अनार्यमाचरितम् । पृ. १४१

६. श्री. - एवम्...अन्याय्यम् - पृ. २४२

५८. दे. ना. दिष्ट्या. धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावके एवाहुतिः पतिता । पृ. १४७

१. रा. - दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावके एवाहुतिः पतिता । पृ. १२५

२. घन. - दिष्ट्या धूमरुद्धदृष्टेरपि..." । पृ. ९७

३. का. - दिष्ट्या धूमावरुद्धदृष्टेरपि..." । पृ. ८०

४. अभि. - दिष्ट्या धूमावरुद्धदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिर्निपतिता । पृ. १५९

५. चर्चा - दिष्ट्या धूमोपरुद्धदृष्टेरिव यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता । पृ. १४३

६. श्री. - मौनम् ।

५९. दे. ना. अद्यैव ऋषिप्रतिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामीति । पृ. १४७

१. रा. - अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां..." । पृ. १२४

२. घन. - अद्यैव राजर्षिपरिगृहीतां त्वां... । पृ. ९८

३. का. - अद्यैव राजर्षिपरिगृहीतां त्वां...पृ. ८०

४. अभि. - अद्यैव ऋषिपरिगृहीतां त्वां भर्तुः सकाशं विसृजामि" । पृ. १५९

५. चर्चा - मौनम् । पृ. १४४

६. श्री. - मौनम् । पृ. २४६

६०. दे. ना. यावदमप्यस्या मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भनानि विरचयामि । पृ. १५१

१. रा. - यावदहमपि तस्यै मृगरोचनां... । (मृगरोचनां गोरोचनाम् ।) पृ. १२७

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. - यावदहमपि अस्यै गोरोचनां... । पृ. ९८

३. का. - यावदहम् अस्या गोरोचनां... । पृ. ८२

४. अभि. - यावदहम् अस्या गोरोचनां... । पृ. १६१

५. चर्चा - यावदहमपि अस्या मृगरोचनां... । पृ. १४६ (मृगरोचनां गोरोचनां...) ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. २४८

६१. दे.ना. **एषा सूर्योदय एव शिखामार्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । पृ. १५२**

१. रा. - एषा सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । शिखामज्जिता पृ. १२८

२. घन. - एषा सूर्योदय शिखामज्जिता नीवाराक्षतहस्ताभिः... तिष्ठति । पृ. ९९

३. का. - ...शिखामार्जिता - अभ्यक्तस्नातैव साक्षतहस्ताभिः स्वस्तिवाचनिकाभिस्तापसीभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति । पृ. ८२

४. अभि. - ...शिखामग्ना प्रतीष्टनीवाराभिः स्वस्ति...तिष्ठति । पृ. १६२

५. चर्चा - ...शिखामग्ना प्रतीष्टनीवारस्वस्तिवाचनादिभिः... । पृ. १४६

६. श्री. - शिखामार्जितेत्यनेन अभ्यक्तस्नातेति । पृ. २४९

६२. दे. ना. - **जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व । पृ. १५३**

१. रा. - भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दं लभस्व महादेवीशब्दं... । पृ. १२८

२. घन. - जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं देवीशब्दम् अधिगच्छ । पृ. ९९

३. का. - जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दम् लभस्व । पृ. १६२

४. अभि. - पुत्रिके जाते भर्तुर्बहुमानसूचकं महादेवीशब्दम् लभस्व । पृ. १६२

५. चर्चा - मौनम । अन्यत्र - राजलक्ष्मीः महादेवीपदप्राप्तिलक्षणा । पृ. १४७

६. श्री. - मौनम् । पृ. २५०

६३. दे. ना. - **किं मानसी सिद्धिः। पृ. १५५**

१. रा. - " " पृ. १५५

२. घन. - किं मानसी सृष्टिः । पृ. १००

३. का. - " " सृष्टिः । पृ. ८४

४. अभि. - " " " पृ. १६४

५. चर्चा. - न खलु मानसी सृष्टिरित्यनुषज्यते । १४७

६. श्री. - मौनम् । पृ. २५१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



६४. दे. ना. – क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतम् । पृ. १५५
  १. रा. – क्षौमं दुकूलमाविष्कृतं दत्तम् । केनचित् तरुणेत्यनुषज्यते । पृ. १३०
  २. घन. – तरुणमभिनवम् । तरुणेति च पाठः । पृ. १०१
  ३. का. – मौनम् । पृ. ८४
  ४. अभि. – मौनम् । पृ. १६४
  ५. चर्चा – ...इति न्यायात् तरुणा दत्तं वनदेवताभिर्दत्तानीति तरुदेवतयोरभेदोपचारात् । पृ. १४७
  ६. श्री. – केनचित्तरुणा वृक्षेण मांगल्यं मंगलार्थम् । पृ. २५१

६५. दे. ना. उद्गलितदर्भकवला मृगाः परित्यक्तनर्तना मयूराः । पृ. १६४
  १. रा. – उद्गलितदर्भकवला मृग्यः...मयूराः... । पृ. १३७
  २. घन. – उद्गळि(लि) तदर्भकवळा(ला) मृगाः, परित्यक्तनर्तना मयूराः । पृ.१०४
  ३. का. – उद्गलितेति स्पष्टम् । (मौनम्) । पृ. ८८
  ४. अभि. – मौनम् । पृ. १७१
  ५. चर्चा – उद्गलितदर्भकबला मृग्यः परित्यक्त. । पृ. १५१
  ६. श्री. – ...मृगाणां दर्भकवलभ्रंशकथने... । पृ. २६३

६६. दे.ना उत्पक्ष्मणोर्...बाष्पं कुरु स्थिरतया विरतानुबन्धम् । पृ. १६८
  १. रा. – बाष्पं स्थिरतया स्थैर्येण । विहतो दूरीकृतोऽनुबन्धः पुनः पुनरुत्पत्तिर्यस्य तं कुरु । पृ. १४१
  २. घन. – विरतो विगतोऽनुबन्धः संबन्धो यस्य । पृ. १०७
  ३. का. – मौनम् । पृ. ९०
  ४. अभि. – बाष्पं विहतानुबन्धं कुरु, विहतोऽनुबन्धो० । पृ. १७५
  ५. चर्चा – स्थिरतया धैर्यावलम्बनेन विहतानुबन्धं निरुद्धा विचिछन्नप्रसरणं कुर्विति बोध्यम् । पृ. १५५
  ६. श्री. – तत्तथोक्तं रहितानुबन्धं, रहितः त्यक्तः अनुबन्धः संबन्धो येन तथोक्तम् । पृ. २६९

६७. दे. ना. – जाते, एष त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गुरुरुपस्थितः । पृ. १५८
  १. रा. – ...परिष्वजन्निव... । पृ. १३३
  २. घन. – ...पिबन्निव... । पृ. १०२
  ३. का. – ...परिष्वजमान इव... । पृ. ८५
  ४. अभि. – परिष्वजमान इव... । पृ. १६७

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



५. चर्चा - ...परिष्वन्निव. । पृ. १४९
६. श्री. - मौनम् । पृ. २५६

**६८. दे. ना. भगवन् । वरः खल्वेषः, नाशीः । पृ. १५८**

१. रा. - भगवन् वरः खल्वेषः नाशिषः । पृ. १३३
२. घन. - भगवन् वराः खल्वस्यै एते, न आशिष्यः । पृ. १०२
३. का. - भगवन् वरौ खल्वेतौ, न त्वाशिषौ । पृ. ८६ [...इत्येतद्द्वयं गृह्यते]
४. अभि. - वरः खल्वेषः, नाशीः । पृ. १६८
५. चर्चा - ...समुदाचारप्रयुक्ताप्येषा आशीः त्वन्मुखप्रवृत्तत्वाद्वर एव संवृत्त इत्यर्थः । पृ. १४९
६. श्री. - भगवन् वरौ खल्वेतौ, नाशिषौ । एताविति द्विवचनेन...एतद्द्वयं गृह्यते ॥ पृ. २५७

**६९. दे. ना. - ...मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति तदा मे कमपि प्रियनिवेदयितारं विसर्जयिष्यथ । पृ. १६७**

१. रा. - मह्यं कमपि प्रियनिवेदयितृकं... । पृ. १३९
२. घन. - तदा मे किमपि प्रियनिवेदयितृकं पत्रे (त्रमे)कं विसर्जय । पृ. १०५
३. का. - कमपि प्रियनिवेदयितृकं विसर्जय । पृ. ८९
४. अभि. - कमपि प्रियनिवेदयितारं विसृज । पृ. १७३
५. चर्चा - कमपि प्रियनिवेदयितारं विसर्जयिष्यथ । पृ. १५३
६. श्री. - प्रियनिवेदयितृकं शोभनज्ञापनपत्रलेखादिकम् । पृ. २६६

**७०. दे. ना. - को नु खल्वेष निवसने मे सज्जति । पृ. १६७**

१. रा. - को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते । १३९
२. घन. - किन्नु खल्वेतत् पुनः पुनर्वसनपदे मृगः सज्जति । (...पदं प्रान्तावनांघ्रिष्विति रभसः) । पृ. १०६
३. का. - किं नु खलु एष पुनः पुनरपि निवसनपटे मे सज्जति । पृ. ८९
४. अभि. - किं नु खलु विटपिविटपान्त इव निवसने मे सज्जते । पृ. १७४
५. चर्चा - किं नु खलु विटपिविटपान्त इव निवसने मे सज्जति । पृ. १५३
६. श्री. - मौनम् । पृ. २६६

**७१. दे. ना. - हला, प्रेक्षस्व । नलिनीपत्रान्तरितं प्रियसहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति । दुष्करमहं करोमि इति । पृ. १७०**

१. रा. - पश्य । नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुराचक्रवाक्यारौति, दुष्करमहं करोमीति । पृ. १४१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. – हला पश्य, दक्षिणतो...रितमंपि सहचरमपश्यन्ती आतुरा चक्रवाकी आरसति। दुष्करं खल्वहं तर्कयामि। पृ. १०७

३. का. – सख्यौ पश्यतं दक्षिणतो......रितमपि सहचरमपश्यन्ती चक्रवाक्यारसति। ....दुष्करं खल्वहं तर्कयामि। पृ .९१

४. अभि. – हला पश्य, नलिनी...मपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारसति। दुष्करं खल्वहं करोमि। पृ. १७६

५. चर्चा – पश्य, नलिनी...तापि सहचरमपश्यन्ती आतुरा चक्रवाक्यारसति। दुष्करं खल्वहं करोमीति तर्कयामि। पृ.१५५

६. श्री. – ...रितं...आरसति। दुष्करं...करोमि। पृ. २६९

**७२. दे. ना. एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्। पृ. १७१**

१. रा. – एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्। पृ. १४२

२. घन. – एषापि प्रियेण विना गमयति रजनीं दीर्घतराम्। पृ. १०७

३. का. – एषापि प्रियेण विना रजनीं गमयति दीर्घतराम्। पृ. ९१

४. अभि. – गमयति रजनीं विषादी दीर्घतराम्। पृ. १७७

५. चर्चा – मौनम्। पृ. १५६

६. श्री. – ...रजनीं गमयति दीर्घतरं(राम्)। पृ. २७०

**७३. दे. ना. – भूयिष्ठं भव दक्षिणा परजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी। पृ. १७३**

१. रा. – ..भाग्येष्वनुत्सेकिनी..। पृ. १४४

२. घन. – मौनम्। पृ. १०८

३. का. – भोगेषु सुखेषु अनुत्सेकिनी। पृ. ९२

४. अभि. – भाग्येषु अनुत्सेकिनी.। पृ. १८०

५. चर्चा – भाग्येषु दैवसम्पादितेषु...। पृ. १५९

६. श्री. – भोगेषु सुखेषु अनुत्सेकिनी.। पृ. २७६

**७४.दे. ना. – मा बिभीहि। अतिस्नेहः पापशङ्की। पृ. १७६**

१. रा. – मा भैषीः। स्नेहः पापशङ्की। पृ. १४६

२. घन. – मा भैषीः। अतिस्नेहः पापशङ्की। पृ. १०९

३. का. – मा भैषीः। अतिस्नेहः पापशङ्की। पृ. ९४

४. अभि. – स्नेहः पापशङ्की। पृ. ९४

५. चर्चा – स्नेहः पापशङ्की। पृ. १६१

६. श्री. – मौनम्। पृ. २७८

**७५. दे. ना. – तपश्चरणपीडितं तातशरीरम्। तन्मातिमात्रं मम कृत उत्कण्ठस्व। पृ. १७८**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



१. रा. - तप...तन्मातिमात्रम् मम कृते उत्कण्ठितम् । पृ. १४७

२. घन. - तपश्चरणपीडितं तातस्य शरीरम् । तस्मादतिमात्रं मम कृते उत्कंठितम् भविष्यति । पृ. ११०, १११

३. का. - भूयोऽपि तप...तातस्य शरीरम् अतिमात्रं मम कृते उत्कंठितं भविष्यति । पृ. ९५

४. अभिः - तपोनुष्ठानपीडितं तातशरीरम् । तन्न यक्तं मम कृते अतिमात्रमु त्कण्ठितुम् । पृ. १८४

५. चर्चा - मौनम् पृ. १६२

६. श्री. - मौनम् पृ. २८०

## ॥ पञ्चमोऽङ्कः ॥

७६. दे. ना. - **कलविशुद्धायां गीत्यां स्वरसंयोगः श्रूयते । पृ. १८२**

१. रा. - कलविशुद्धाया गीतेः.... । पृ. १५०

२. घन. - ..कलविशुद्धाया ध्रुवायाः गीतेः स्वरयोगः श्रूयते । पृ. ११२

३. का. - ...कलविशुद्धायाः संगीत्याः स्वरसंयोग इव श्रूयते । पृ. ९७

४. अभि. - ...कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते । पृ. १८७

५. चर्चा - ....कलविशुद्धाया गीत्याः स्वरसंयोगः श्रूयते । पृ. १६३

६. श्री. - ...कलविशुद्धाया गीतेः... । पृ. २८३

७७. दे. ना. - **गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः । पृ. १८४**

१. रा. - गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः । पृ. १५१

२. घन. - भो वयस्य गृहीतस्य तया परकीयाभ्यां हस्ताभ्याम् शिखण्डके अप्सरसेव अवीतरागस्य नास्ति मे मोक्षः । पृ. ११४

३. का. - ...तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके अप्सरसेव वीतरागस्य... । पृ. ९८

४. अभि. - गृहीतस्य तया परकेरकैरथैः शिखण्डाञ्चले अप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः । पृ. १९०

५. चर्चा - भो वअस्सेत्यादि - गृहीतस्य तया परकेरकाभ्यां हस्ताभ्यां शिखण्डाञ्चले अप्सरसा वीतरागस्येव नास्तीदानीं मे मोक्षः । पृ. १६४...अवीदराअस्सेति वा क्वचित् पाठः । पृ. १६५

६. श्री. - मौनम् । पृ. २८७

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**७८. दे. ना. - अहो, किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति । पृ. १९४**

१. रा. - अहो, किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति । पृ. १६१ [''किं मे वामं दक्षिणं नयनम्'' इति पाठे वामं प्रतीपम् । पृ. १६१]
२. घन. - अम्हहे, किमपि वामेतरं मे नयनं विकरोति । पृ. ११८
३. का. - अहो..किं वामेतरं मे नयनं विकरोति । पृ. १०३
४. अभि. - अम्महे, किमिति...विकरोति । पृ. २००
५. चर्चा - अम्हहे...वामेतरं...विकरोति । पृ. १७०
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३०२

**७९. दे. ना. - हृदय, किमेवं वेपसे आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद्भव । पृ. १९६**

१. रा. - ...भावम् अवधार्य धीरं... । पृ. १६४
२. घन. - ...भावम् अनवधार्य धीरं...। पृ. १२०
३. का. - ...भावम् अनवधार्य धीरं... । पृ. १०४
४. अभि. - ...भावस्थम् अवधार्य अधीरं... । पृ. २०२
५. चर्चा - ...आर्यपुत्रस्य हृदयं तत्त्वतोऽवधार्य अधीरं तावद्भव । पृ. १७१
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३०६

**८०.दे. ना. हृदय, साम्प्रतं त आशङ्का । पृ. २००**

१. रा. - हृदय, साम्प्रतं त आशङ्का । पृ. १६७
२. घन. - हृदय साम्प्रतं ते आतङ्क आसीत् । पृ. १२१
३. का. - हृदय साम्प्रतं ते आतङ्क आसीत् । पृ. १०७
४. अभि. - हृदय, साम्प्रतमुचिता ते आशङ्का । पृ. २०७
५. चर्चा - हृदय, साम्प्रतं ते आशङ्का । पृ. १७४
६. श्री. - ......आतंकः...... । पृ. ३११

**८१. दे. ना. नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम् । २०५**

१. रा. - नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं... । पृ. १७२
२. घन. - ननु ते शक्रावताराभ्यान्तरे शचीतीर्थं वन्दमानायाः तव हस्तात् प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम् । ...सईति० थम्'' इत्यत्र'' सर० स इति० थम्'' इति पाठे सरस्वतीतीर्थमित्यर्थः । पृ. १२४
३. का. - ननु शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थं...अग्रहस्तात्...। पृ. ११०
४. अभि. - नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



पृ. २१२

५. चर्चा - नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमङ्गुलीयकम्। पृ. १७७

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३१८

**८२. दे. ना. - तत्क्षणं स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः । पृ. २०६**

१. रा. - तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः । पृ. १७३

२. घन. - तत्क्षणं मम सः कृतकपुत्रो दीर्घापाङ्गो नाम हरिणपोतक उपस्थितः । पृ. १२५

३. का. - तत्क्षणं मम पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम हरिणपोतक उपस्थितः । पृ. १११

४. अभि. - तत्क्षणं तु स मम कृतकपुत्रको दीर्घापाङ्गो नाम हरिणपोतक उपस्थितः । पृ. २१४

५. चर्चा - तत्क्षणं तु स मम कृतपुत्रो दीर्घापाङ्गो नाम हरिणपोतक उपस्थितः । पृ. १७८

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३२०

**८३. दे. ना. - अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन प्रेक्षसे । पृ. २०८**

१. रा. - अनार्य आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि । पृ. १७५

२. घन. - अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन एवं पश्यसि । अवणिअ इति पाठे "अविनयेत्यर्थः । पृ. १२५

३. का. - अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन सर्वं पश्यसि । पृ. ११२

४. अभि. - अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यति । पृ. २१६

५. चर्चा - अनार्यं आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यसि ।...अनार्यं दोषम् ।...अनार्यं पश्यसीत्यन्वयः । मय्यनार्यदर्शनं तव नोचितमिति भावः । पृ. १७९

६. श्री. - अणज्जेति अनार्येति । पृ. ३२१

**८४. दे. ना. - सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्यासमुपगता । पृ. २०९**

१. रा. - सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहमस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थितविषस्य हस्ताभ्याशम् । पृ. १७६

२. घन. - सुष्ठु तावदार्यपुत्रे,.....कृतास्मि, याहम् तव प्रत्ययेन... हृदयविषस्य हस्ताभ्याशम् उपगता । पृ. १२६

३. का. - सुष्ठु तावत् स्वच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहमस्य प्रत्ययेन मुखमधोः हृदयविषस्य हस्ताभ्याशमुपागता । पृ. ११२

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. अभि. - सुष्ठु तावदात्मच्छन्दचारिणी कृतास्मि । याहममुष्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थविषस्य हस्ताभ्याशम् उपगता । पृ. २१८

५. चर्चा - आत्मच्छन्दचारिणी स्वच्छन्दप्रवृत्तिः ।...याहमार्यस्य पुरुवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हृदयस्थविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता । पृ. १८०

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३२४

८५. दे. ना. अयि भोः किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् सम्भृतदोषैरधिक्षिपथ । पृ. २१०

१. रा. - अयि भोः...संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ । पृ. १७६

२. घन. - अयि....संभृतरोषाक्षरैः क्षिणुथ । पृ. १२६

३. का. - अयि.....संभृतरोषाक्षरैः अधिक्षिपसि । पृ. ११३

४. अभि. - अयि...संवृतदोषाक्षरेण क्षिणुथ । पृ. २१८

५. चर्चा - अयि...संवृतदोषाक्षरेणाधिक्षिपथ । पृ. १८१

६. श्री. - अयीत्यादि । अत्रभवती प्रत्ययादेव शकुन्तला वचनमात्रविश्वासादेव । क्षिणुथ नाशयथ दूषयथेत्यर्थः । पृ. ३२४

## ॥ षष्ठोऽङ्कः ॥

८६. दे. ना. किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः । पृ. २१८

१. रा. - किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा रज्जा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्त इति... । पृ. १८२

२. घन. - किं नु खलु शोभनो ब्राह्मण इति मनसि कृत्वा प्रतिग्रहे दत्तमङ्गुलीयकम् । पृ. १३१

३. का. - किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्तः । पृ. ११९

४. अभि. - किं खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा प्रतिग्रहस्ते दत्तः । पृ. २२७

५. चर्चा - किन्नु खलु शोभनो ब्राह्मण इति कृत्वा राज्ञा प्रतिग्रहस्ते दत्तः । पृ. १८६

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

८७. दे. ना. शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवरः । पृ. २१८

१. रा. - ..." । अहं शक्रावताराभ्यन्तरवासी... । पृ. १८३

२. घन. - शृणुतेदानीम् आवुत्ताः । अहं शक्रावतार तीर्थवासी धीवरः । पृ. १३१

३. का. - शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावतारतीर्थवासी धीवरः । पृ. ११९

४. अभि. - शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावतारवासी धीवरः । पृ. २२७

५. चर्चा - शृणुतेदानीम् । अहं शक्रावतारवासी धीवरः । पृ. १८६

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



८८. दे. ना. - अयमस्यागमवृत्तान्तः । पृ. २२१
१. रा. - अयमस्याङ्गुलीयस्यागमः प्राप्तिस्तद्वृत्तान्तः । पृ. १८४
२. घन. - इयमस्यागतिः । पृ. १३२
३. का. - इयमस्यागतिः । पृ. १२०
४. अभि. - इयमस्यागतिः । पृ. २२९
५. चर्चा - इयमस्यागतिः । पृ. १८७
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

८९. दे. ना. - जानुक, विस्रगन्धिर्गोधाती मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम् । पृ. २२१
१. रा. - जानुकेति ।...विस्रगन्धी...। गोधादी गोधाशनो मत्स्यबन्धो धीवर एव निःसंशयम् । पृ. १८४
२. घन. - जानुक विस्रगन्धी घोराकृतिः मत्स्यबन्ध एव निःसंशयम् । पृ. १३२
३. का. - जानुक, विस्रगन्धिलोहितमत्स्योदरस्थितं निः संशयमङ्गुलीयकम्... । पृ. १२०
४. अभि. - जानुक, विस्रगन्धी गोखादी मत्स्यबन्ध एव । पृ. २३०
५. चर्चा - जानुक इति... । विस्रगन्धी गोधाती मत्स्यबन्ध एव । पृ. १८७
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

९०. दे. ना. - जानुक स्फुरतो मे हस्तावस्य वध्यस्य सुमनः पिनद्धुम् । पृ. २२२
१. रा. - फुल्लन्ति प्रस्फुरन्ति मम हस्ता अस्य वहस्स वधार्थं सुमनसः कुसुमानि पिनद्धुं परिधापयितुम् । "वज्झस्स" वध्यस्येत्यसांप्रदायिकः पाठः । पृ. १८५
२. घन. - जानुक स्फुरतो मे हस्तावस्य वध्यसुमनसः पिनद्धुम् । पृ. १३३
३. का. - जानुक, स्फुरतो मे हस्तावस्य वध्यसुमनसः पिनद्धुम् । पृ. १२१
४. अभि. - जानुक, स्फुरतो मे हस्तावमुष्य वध्यसुमनसं पिनद्धुम् । पृ. २३१
५. चर्चा - जानुक । स्फुरति मे हस्तः अस्य वध्यसुमनः पिनद्धुम् । [वध्यं प्रति यत्सुमनः तन्निर्मिता मालेत्यर्थः । पृ. १८८
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

९१. दे. ना. - नार्हति भावोऽकारणमारणो भवितुम् । पृ. २२२
१. रा. - नार्हति भावोऽकारणमारणं भावयितुं प्रापयितुम् । पृ. १८५
२. घन. - नार्हति भावोऽकालमारणे भवितुम् । पृ. १३४
३. का. - नार्हति भावोऽकारणमारणे कारणं भवितुम् । पृ. १२१
४. अभि. - नार्हति भावोऽकारणमारणो भवितुम् । पृ. २३१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



५. चर्चा - नार्हति भावः अकारणं मरणं कर्तुम् । पृ. १८८
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

**९२. दे. ना. - एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीष्येतोमुखं दृश्यते । गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि । पृ. २२३**

१. रा. - एषोऽस्माकं स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीक्ष्येतोमुखं(खो) दृश्यते । गृध्रबलिर्भविष्यसि शुनो मुखं द्रक्ष्यसि वा । पृ. १८६
२. घन. - एषोऽस्माकं स्वामी लेखपत्रं गृहीत्वा राजशासनम् इतोमुखं पश्यति । त्वं गृध्रबलिर्भविष्यसि । पृ. १३४
३. का. - अस्माकं स्वामी गृहीत्वा राजशासनमितोमुखं पश्यति । त्वं गृध्रबलिर्भविष्यति । पृ. १२१
४. अभि. - एषोऽस्माकं स्वामी लेखपत्रे गृहीत्वा राजशासनमागच्छति । शुनो मुखं वा द्रक्ष्यति गृध्रबलिर्वा भविष्यति । पृ. २३१
५. चर्चा - एषोऽस्माकं स्वामी लेखपत्रे गृहीत्वा राजशासनमितोऽभिमुखमागच्छति । ... । शुनो मुखं वा द्रक्ष्यसि गृध्रबलिर्वा भविष्यसि । पृ. १८८
६. श्री. - मौनम् । ३४१

**९३. दे. ना. - भर्तः, अथ कीदृशो म आजीवः । पृ. २२३**

१. रा. - अथ कीदृशो म आजीवः । पृ. १८६
२. घन. - भर्तः, युष्मत्केरकं मे जीवितम् । पृ. १३५
३. का. - भर्तः, युष्मदीयं मे जीवितम् । १२२
४. अभि. - भर्तः तव केरकं मे जीवितम् । तवकेरकं त्वदीयम् । पृ २३२
५. चर्चा. -- भर्तः । तव करे मे जीवितम् । पृ. १८८
६. श्री. - मौनम् । ३४१

**९४. दे. ना. - एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः प्रसादोऽपि दापितः । पृ. २२३**

१. रा. - एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः । पृ. १८६
२. घन. - अस्मै भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः अर्थः दापितः । पृ. १३५
३. का. - अस्य भर्त्रा अङ्गुलीयकमूल्यस्य संमितोर्थः प्रदापितः । पृ. १२२
४. अभि. - एष भर्त्राङ्गुलीयकमूल्यसंमितः पारितोषिको दत्तः । पृ. २३२
५. चर्चा - एष भर्त्रा अङ्गुलीयकमूल्यसम्मितः पारितोषिकोऽपि दत्तः । पृ. १८८
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

**९५. दे. ना. ननु भण, अस्य कृते मत्सिकाभर्तुरिति । पृ. २२५**

१. रा. - ननु भण, अस्य कृते मत्सिकभर्तुः । पृ. १८७

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



२. घन. - ननु भण, अस्य कृते मत्स्यशत्रो रिति । पृ. १३५

३. का. - ननु भण, अस्य कृते मत्स्यशत्रो रिति । पृ. १२३

४. अभि. - ननु भणामुष्य् कृते मत्स्यशत्रोरिति । पृ. २३४

५. चर्चा - ननु भणमुष्य कृते मत्स्यशत्रोरिति । [महान् प्रयत्न ईति शेषः] पृ. १८९

६. श्री, - मौनम् । पृ. ३४१

९६. दे. ना. भट्टारकाः, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु । पृ. २२५

१. रा. - भट्टारक, इतोर्धं...भवतु । पृ. १८७

२. घन. - भर्त, इतोऽर्धं मूल्यं युष्मभ्यं भवतु । पृ. १३५

३. का. - भर्तः इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु । पृ. २०१

४. अभि. - इतोऽर्धं भट्टारक, युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु । पृ. २३४

५. चर्चा - इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु । पृ. १८९

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

९७. दे. ना. तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः । पृ. २२५

१. रा. - तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः । पृ. १८८

२. घन. - तस्माच्छुण्डिकावनं प्रविशामः । पृ. १३६

३. का. - तस्माच्छौण्डिकापणं प्रविशामः । पृ. १२३

४. अभि. - तस्माच्छुपिण्डकाभवनमेव गच्छामः । २३४

५. चर्चा - तत् शौण्डिकापणमेव गच्छामः । १८९

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४१

९८. दे. ना. - किं नु खलु ऋतूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिवैतद्राजकुलं दृश्यते । पृ. २२७

१. रा. - किं नु खलु ऋतूत्सवारम्भेऽपि निरुत्सवारम्भमिव राजकुलं दृश्यते । पृ. १८९

२. घन. - किं नु खलु उत्सवकालेऽपि निरुत्सवारम्भमिव एतद्राजकुलं दृश्यते । पृ. १३६

३. का. - किंनु खलु उत्सवकालेऽपि निरुत्सवारम्भमिव एतद्राजकुलं दृश्यते । पृ. १२४

४. अभि. - किं नु खलूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भामिवैतद्राजकुलं दृश्यते । पृ. २३६

५. चर्चा - किन्नु खलूत्सवेऽपि निरुत्सवारम्भमिव दृश्यते राजकुलम् । पृ. १९०

६. श्री. - उत्सवकालेऽपि हर्षोत्पादकसमयेऽपि । पृ. ३४१

९९. दे. ना. - सखि अवलम्बस्व माम्, यावदग्रपादस्थिता भूत्वा चूतकलिकां गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि । पृ. २२९

१. रा. - सखि अवलम्बस्व मां यावदग्रस्थिता भूत्वा [चूतकलिकां

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



गृहीत्वा]कामदेवार्चनं करोमि । पृ. १९१

२. घन. - सखि अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा कामदेवार्चनाय चूतांकुरापचयं करोमि । पृ. १३७

३. का. - सखि अवलम्बस्व...भूत्वा कामदेवार्चनाय चूतांकुरापचयं करोमि । पृ. १२५

४. अभि. - सखि अवलम्बस्व माम्, यावदेनमग्रपादस्थिता भूत्वा गृहीत्वा कामदेवार्चनं करोमि । पृ. २३८

५. चर्चा - सखि । अवलम्बस्व मां यावदग्रपादस्थिता भूत्वा कामदेवार्चनार्थं चूताङ्कुरं गृह्णामि । पृ. १९१

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३४४

**१००. दे. ना. आर्य, कति दिवसान्यावयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं प्रेषितयोः । इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम् । पृ. २३१, २३२**

१. रा. - आर्य कति दिवसान्यावयोर्मित्रवसुना राष्ट्रियेण भट्टिनीपादमूलं प्रेषितयोः कतिचिद्दिनानीत्यन्वयः । इत्थं च नौ प्रमदवनस्य पालनकर्म समर्पितम् । पृ. १९३-१९४

२. घन. - आर्य कति दिवसानि गतानि अस्माकं मित्रावसुना राष्ट्रियेण प्रेषितानां भर्तुः पादमूलादत्र - चरन्तीनाम् । एतच्च नाम प्रमदवनाय सकलं प्रतिकर्म अर्पितम् । पृ. १३९

३. का. - आर्य कति दिवसानि गतानि आवयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण प्रेषितयोर्भर्तुः पादमूलादत्रचरन्त्योः । इदं च नाम प्रमदवनस्य सकलं प्रतिकर्मार्पितम् । पृ. १२७

४. अभि. - आर्य, कतिचिद्दिवसा आवयोर्मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं प्रेषितयोः प्रमदवनस्य सर्वं प्रतिकर्मार्पितम् । पृ. २४१

५. चर्चा - आर्य । कतिपयदिवसा आवयोः मित्रावसुना राष्ट्रियेण भर्तुः पादमूलं प्रेषितयोः । इह च नः राज्ञा प्रमदवनस्य सकलं प्रतिकर्मार्पितम् । पृ. १९२

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३५०

**१०१. दे. ना. -लङ्घित एष भूयोऽपि शकुन्तलाव्याधिना । न जाने, कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति । पृ. २३६**

१. रा. - ...। न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति । पृ. १९८

२. घन. - ... । न जाने कथंचिद् एष्टव्यो भविष्यतीति । पृ. १४१

३. का. - न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति । पृ. १३०

४. अभि. - न जाने कथं चिकित्सितव्यो भविष्यतीति । पृ. २४५

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



५. चर्चा - कथं चिकित्सितव्य इति । पृ. १९४

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३५६

**१०२. दे. ना. - तिष्ठ तावत् । यावदनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पवाणं नाशयिष्यामि । पृ. २३८**

१. रा. - तिष्ठ तावत् । अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयामि । पृ. १९९

२. घन. - तिष्ठ तावत् । अमुना दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयामि । पृ. १४२

३. का. - तिष्ठ तावत् । अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधं मन्मथकिरातं नाशयामि । पृ. १३१

४. अभि. - तिष्ठ तावत् । अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयामि । पृ. २४७

५. चर्चा - तिष्ठ तावत् । अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयामीति । पृ. १९४

६. श्री. - -चिट्ठेत्यादि । .. दण्डकाष्ठप्रहारेण विनान्यदुपायान्तरं न जानामीत्युत्तरं दत्तमिति भावः । कंदर्पव्याधमिति मदनस्य किरातोपमानेन निर्दयत्वमुच्यते । पृ. ३५८-३५९

**१०३. दे. ना. कदाचित्सत्पुरुषा शोकपात्रात्मनो न भवन्ति । पृ. २४०**

१. रा. - कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति । पृ. २०१

२. घन. - कदापि सत्पुरुषाः शोकग्रस्तात्मनो न भवन्ति । पृ. १४४

३. का. - कदापि सत्पुरुषाः शोकपात्रात्मनो न भवन्ति । पृ. १३३

४. अभि. - कदा नु सत्पुरुषाः शोकप्रास्तव्या भवन्ति । पृ. २५०

५. चर्चा - कदाचिदपि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्या न भवन्ति । वक्तव्या दूष्याः । पृ. १९५

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३६१

**१०४. दे. ना. असन्निवृत्यै तदतीतमेव मनोरथानाम् अतटप्रपातः । पृ. २४३**

१. रा. - अतः परमेते त्वयोच्यमाना मया वाशास्यमाना मनोरथाः नामेत्यलीके । अलीका मनोरथा इत्यर्थः । ते तटप्रपाता । पृ. २०३

२. घन. - ..मनोरथानामतटप्रपाताः । पृ. १४५

३. का. - ...अतटाः तटरहिता., निरर्गलाः भवन्तीत्यर्थः । पृ. १३५

४. अभि. - मनोरथाः मनोरथफलानि । तटप्रपाताः तटस्य नदीकूलस्य प्रपात इव झटिति प्रपातो येषां ते तथा । ...नाम प्रसिद्धो । पृ. २५३

५. चर्चा - प्रियतमावलोकनादयः तटप्रपाताः गिरितटप्रपाततुल्याः । पृ. १९७

६. श्री. - मनोरथानाम् इतः परं तत्प्राप्तौ सत्यां ...स्रोतांसि परंपरेति यावत् । अतटाः ...निरर्गला भवन्ति इत्यर्थः । पृ. ३६५

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



**१०५. दे. ना. भोः, इयं नाम मुद्रा केनोद्देशेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं प्रापिता । पृ. २४४**

१. रा. – इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन केनोपक्रमेण । ...तत्रभवत्याः शकुन्तलाया हस्ताभ्याशं हस्तनैकट्यं प्रापिता । पृ. २०५

२. घन. – भोः इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं प्रापिता । पृ. १४६

३. का. – भोः इयं नाममुद्रा केनोद्घातेन उद्योगेन तत्रभवन्त्या हस्तसंसर्गं प्रापिता । पृ. १३६

४. अभि. – भोः, इयं नाममुद्रा केनोपायेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गं प्रापिता । पृ. २५४

५. चर्चा – भो इत्यादि । इयं नाममुद्रा केनोपायेन तत्रभवत्या हस्तसंसर्गें प्रापिता । पृ. १९८

६. श्री. – उद्घातेन उद्योगेनेत्यर्थः । पृ. ३६७–६८

**१०६. दे. ना. रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः । पृ. २४५**

१. रा. – रमणीयः खल्वधिर्विधिना दैवेन शापलक्षणेन च विसंवादितः पृ. २०६

२. घन. – रमणीयः खल्ववधिर्विधिना संवादितः । पृ. १४७

३. का. – रमणीयः खल्ववधिर्विधिना विसंवादितः । पृ. १३६

४. अभि. – रमणीय खलु व्यवधिर्विधिना संपादितः । पृ. २५५

५. चर्चा – रमणीयः अत्यद्भुतः । प्रियसखीविधिना..वेधसा । सम्पादित अघटनीयघटनायामेवं... । पृ. १९९

६. श्री. – मौनम् । पृ. ३६९

**१०७. दे. ना. कथं धीवरकल्पितस्य रोहितमत्स्योदराभ्यन्तर आसीत् । पृ. २४५**

१. रा. – कथं धीवरकल्पितस्य कैवर्तखण्डितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तर आसीत् । पृ. २०६

२. घन. – अथ कथं धीवरखण्डितस्य रोहितमत्स्यस्योदराभ्यतर आसीत् । पृ. १४७

३. का. – कथं धीवरकल्पितस्य लोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तरे आसीत् । पृ. १३७

४. अभि. – कथं नु धीवरकल्पिस्य लोहितमत्स्यस्योदराभ्यन्तरे आसीत् । पृ. २५५

५. चर्चा – कथं नु धीवरकल्पितस्य लोहितमत्सस्य उदराभ्यन्तरे आसीत् । पृ. १९९

६. श्री. – मौनम् । पृ. ३६९

**१०८. दे. ना. अत एव तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये सन्देह आसीत् अथवा, ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् । पृ. २४६**

१. रा. – अत एवाङ्गुलीयकादर्शनादेव तपस्विन्या अनुकम्पार्हायाः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये संदेह आसीत् । अथवेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् । शापाज्ञानादस्या

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ईदृश्युक्तिः । पृ. २०६

२. घन. - कुतस्तपस्विन्यां शकुन्तलायाम् अधर्मभीरोः अस्य परिणयसंदेहः आसीत् । अथवा कुतः ईदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् । पृ. १४७

३. का. - अदो एव्व तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये एव संदेहः । कुत ईदृशोनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् । पृ. १३७

४. अभि. - अतस्तपस्विन्याः शकुन्तलाया अधर्मभीरोरमुष्य परिणये संदेहः । अथवा नेदृशोऽनुरागोऽभिज्ञानमपेक्षते । कथमिवैतत् । पृ. २५६

५. चर्चा - तदो इति । ततस्तपस्विन्याः शकुन्तलायाः अधर्मभीरोरस्य राजर्षेः परिणये सन्देहः । ...अहवेति । ईदृशः अलौकिकः अनुरागः अभिज्ञानं न प्रेक्षते न प्रमाणयतीत्यर्थः । कथमिवैतदिति । पृ. १९९

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३६९

**१०९. दे. ना. एषा राजार्षेर्निपुणता । पृ. २४७**

१. रा. - अहो आश्चर्ये, एषा राजर्षेर्निपुणता । पृ. २०८

२. घन. - अहो एषा राजर्षेः वर्त्तिकानिपुणता । पृ. १४८

३. का. - अहो राजर्षेर्वर्तिकानिपुणता । पृ. २५८

४. अभि. - अहो राजर्षेर्वर्तिका निपुणता । पृ. २५८

५. चर्चा - अहो राजर्षेर्वर्तिकानिपुणता चित्रनिर्माणकौशली । पृ. २०१

६. श्री. - मौनम् पृ. ३७२

**११०. दे. ना. अनभिज्ञः खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः । पृ. २४८**

१. रा. - अनभिज्ञः खल्वीदृश्स्य रूपस्य मोहदृष्टिर्मुग्धदृष्टिरयं जनः । पृ. २०९

२. घन. - अनभिज्ञः खलु सखीरूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः । पृ. १४९

३. का. - अनभिज्ञः खलु सखीरूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः । पृ. १३९

४. अभि. - अनभिज्ञः खलु रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः । पृ. २५९

५. चर्चा - अनभिज्ञो हि रूपस्य मोहदृष्टिः । पञ्चवर्णप्रभापटलमूढदृष्टिरयं जनो नर्मसचिवः । पृ. २०२

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३७३

**१११. दे ना. आर्य माठव्य, अवलम्बस्व चित्रफलकम् । पृ. २४९**

१. रा. - आर्य माढव्येति विदूषकसंज्ञा । अवलम्बस्य चित्रफलकम्...। पृ. २११

२. घन. - आर्य माण्डव्य अवलम्बस्व चित्रफलकं... । पृ. १५०

३. का. - आर्य माढव्य अवलम्बस्व चित्रफलकम् । पृ. १३९

४. अभि. - आर्य माढव्य अवलम्बस्व चित्रफलकम् । पृ. २६१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



५. चर्चा – अय्य इत्यादि । आर्य माढव्य, अवलम्बस्य चित्रफलकां...। पृ. २०३

६. श्री. – मौनम् । पृ. ३७४

**११२. दे. ना. – यो यः प्रदेशः सख्या मेऽभिरूपः तं तमालिखितुकामो भवेत् । पृ. १५०**

१. रा. – यो यः प्रदेशः सख्याः संबन्धी मेऽभिरूपः सुन्दरस्तं तमालिखितुकामो भवेत् । पृ. २११, २१२

२. घन. – असंशयं यो यः प्रदेशोऽभिरुचितः तं तमालिखितुकातो भवेत् । पृ. २२४

३. का. – मौनम् । पृ. १४०

४. अभि. – असंशयं यो यः प्रदेशोऽभिरुचितः तं तमालिखितुकामो भवेत् । पृ. २६२

५. चर्चा – मौनम् । पृ. २०३

६. श्री. – मौनम् । पृ. ३७५

**११३. दे. ना. – यथाहं पश्यामि । पूरयितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः । पृ. २५१**

१. रा. – यथाहं पश्यामि, पूरितव्यनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बैः समूहैः । पृ. २१२

२. घन. – नूनमनेन पूरयितव्यं चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां सार्थेन । पृ. १५१

३. का. – अयि नूनमनेन पूरयितव्यं चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां सार्थेन । पृ. १४०

४. अभि. – यथाहं पश्यामि तथा पूरयितव्यमनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बकैः । पृ. २६३

५. चर्चा – जहेतिं । यथाहं पश्यामि पूरितमेवानेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बकैः । पृ. २०४

६. श्री. – जइ इत्यादि । सार्थः समूहः । पृ. ३७७

**११४. दे. ना. आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरस्तत्रभवत्या वदनमभिलङ्घति मधुकरः । पृ. २५२**

१. रा. – एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरः पुष्पमधुचौरः । यस्याःकस्याश्चिन्न, अपि त्वत्रभवत्याः पूज्याया वदनमभिलङ्घति । मधुकर इति साभिप्रायम् । पृ. २१४

२. घन. – आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमासवपाटच्चरः अत्रभवत्या वदनमभिलंघयति दुष्टमधुकरः । पृ. १५२

३. का. – एष दास्याः पुत्रः कुसुमरसपाटच्चरः तत्रभवत्या वदनमभिलंघयते दुष्टमधुकरः । पृ. १४१

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. अभि. - एष मधुकरो दास्याः पुत्रः कुसुमासवपाटच्चरोऽत्रभवत्या वदनमतिलङ्घयति । पृ. २६४

५. चर्चा - आ एसो इत्यादि । आ इति स्मरणे । एष मधुकरः । दास्याः पुत्रः कुत्सितः दासीपुत्रः । ...पटच्चरः चोरः । तत्रभवत्या वदनमतिलङ्घयति आवृणोति । पृ. २०५

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३७८

११५. दे. ना. - भवानेवाविनीतानां शासितास्य वारणे प्रभविष्यति । पृ. २५२

१. रा. - भवानेवाविनीतानां शासितास्य वारणे प्रभविष्यति । पृ. २१४

२. घन. - भवानेवाविनीतानुशासी अस्य वारणे प्रभविष्यति । पृ. १५२

३. का. - भवानेवाविनीतानां शासिता अस्य वारणे प्रभविष्यति । पृ. १४१

४. अभि. - भवानेवाविनीतानुशासी अस्य वारणे प्रभविष्यति । पृ. २६४

५. चर्चा - भवं एव्वेत्यादि । भवानेवाविनीतानुशासी अस्य वारणे प्रभविष्यति । पृ. २०५

६. श्री. - मौनम् । पृ. ३७८

११६. दे. ना. -एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति । एष तावदुन्मत्तः । अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशवचन इव संवृत्तः । पृ. २५४

१. रा. - एवं तीक्ष्ण दण्डस्य किं न भेष्यति । एष तावदुन्मत्तः । अहमप्येतस्य सङ्गेनेदृशा वर्णा अक्षराणि यस्य स इव संवृत्तः । पृ. २१६

२. घन. - एवं तीक्ष्णदण्डादपि एष न बिभेति । एष तावदुन्मत्तः । अहमप्येतस्य संसर्गेण ईदृशोऽस्मि संवृत्तः । पृ. १५३

३. का. - एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति । अत्र काकुरनुसन्धेया । तिक्खदण्डस्य ण बिभेइस्सदीत्र प्राकृते क्वचित् असदेरिति पञ्चमी स्थाने षष्ठी । एस इदानीमुन्मत्तः । अहमप्येतस्य संसर्गेण ईदृशोऽस्मि संवृत्तः ॥ पृ. १४२

४. अभि. - एवं तीक्ष्णदण्डस्य किं न भेष्यति । एष इदानीमुन्मत्तकः । अहमप्येतस्य संसर्गेण ईदृशवर्णः संवृत्तः । पृ. २६६

५. चर्चा - एवं तीक्ष्णदण्डस्य को न भेत्स्यति । एवं तीक्ष्णदण्डस्य "त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थमि"त्युक्तस्य को न भेत्स्यति ॥ पृ. २०६

६. श्री. - एसो इत्यादि । ईदृशोऽस्मि संवृत्तः राज्ञ इव स्वस्यापि चित्रफलके शकुन्तलाबुद्धिरेव जातेत्यर्थः ॥ पृ. ३८१

११७. दे. ना. पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विरहमार्गः । पृ. २५५

१. रा. - पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विरहमार्गः । पृ. १५३

२. घन. - पूर्वापरविरोध्यपूर्व एष विभागमार्गः । पृ. २२९

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



३. का. - पूर्वापरविरोधी अपूर्व एव विधानमार्गः । पृ. १४३
४. अभि. - पूर्वापरविरोधी अपूर्व एष विधानमार्गः । [विधानमार्गः वृत्तान्तप्रकारः]पृ. २६७
५. चर्चा - नोपलभ्यते ।
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३८३

**११८. दे. ना. वयस्य, कथमेवमविश्रान्तदुःखमनुभवामि । पृ. २५५**

१. रा. - मौनम् । पृ. २१७
२. घन. - वयस्यं, कथमेवम् अश्रान्तं दुःखमनुभवामि । पृ. १५४
३. का. - वयस्य, कथमेवमविश्रान्तं दुःखमनुभवामि । पृ. १४३
४. अभि. - वयस्य, कथमविश्रामदुःखमनुभवामि । पृ. २६७
५. चर्चा - नोपलभ्यते ।
६. श्री. - वयस्येत्यादि । अविश्रमं विश्रांति रहितम् । पृ. ३८३

**११९. दे. ना. - यावद् देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति, तावन्मया निर्वाहित आत्मा । पृ. २५६**

१. रा. - यावद्देव्या विटपलग्नमुत्तरीयं तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा । पृ. २१८
२. घन. - यावल्लतालग्नमुत्तरीयकं देव्यास्तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वासितं आत्मा । पृ. १५४
३. का. - यावद्विटपलग्नमुत्तरीयकं देव्यास्तरलिका मोचयति तावन्मया निर्वाहित आत्मा । पृ. १४४
४. अभि. - यावद्विटपलग्नमुत्तरीयः देव्याः पिङ्गलिका मोचयति तावन्निर्वाहितो मयात्मा । पृ. २६९
५. चर्चा - नोपलभ्यते ।
६. श्री. - मौनम् । पृ. ३८४

**१२०. दे. ना. यदि भवानन्तःपुरकालकूटाद् मुच्यते । ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दय । पृ. २५७**

१. रा. - यदि भवानन्तःपुरकालकूटान्मोक्ष्यते तदा मां मेघप्रतिच्छन्दनामनि प्रासादे शब्दापय । पृ. १५४
२. घन. - यदि भवानन्तःपुरकलहान् मुच्यते ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापयतु । पृ. १५४
३. का. - यदि भवानन्तः पुरकलहान्मुच्यते ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दपय ॥ पृ. १४४

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. अभि. - यदि भवानन्तःपुरकलाहन्मुच्यते ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापय। पृ. २६९

५. चर्चा - नोपलभ्यते।

६. श्री. - शब्दापय आह्वयेत्यर्थः। मेघप्रतिच्छन्द इति तस्य प्रासादस्य नाम। पृ. ३८५

**१२१. दे. ना. - अये अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन विगुणोद्वयो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यं माठव्यं गृहीत्वागच्छ। पृ. २६१**

१. रा. - अयि, इमिणा अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणोद्वेगो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दनाम्नः सकाशादार्यं माढव्यं विदूषकं गृहीत्वागच्छामि। पृ. २२१

२. घन. - अये अमुना सार्थवाहवृत्तान्तेन विमनायते भर्ता। त्वं गत्वा मेघप्रतिच्छन्दादार्यमाण्डव्यं गृहीत्वागच्छ। पृ. १५६

३. का. - अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन विमनायते भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दादार्यमाढव्यं गृहीत्वा आगच्छ। पृ. १४७

४. अभि. - अये अनेन सार्थवाहवृत्तान्तेन द्विगुणितानुशयो भर्ता। एनमाश्वासयितुं मेघप्रतिच्छन्दान्माढव्यं गृहीत्वा आगच्छामि। पृ. २७३

५. चर्चा - नोपलभ्यते।

६. श्री. - मौनम्। पृ. ३८८

**१२२. दे. ना. - सति खलु दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारदोषमनुभवति। पृ. २६२**

१. रा. - सति खलु दीपे व्यवधानं देशान्तरेणापवरकादिनां च स एव दोषस्तेनान्धकारदोषं मोहलक्षणम्। ...अनुभवति॥ पृ. २२२

२. घन. - विद्यमानेऽपि दीपे व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारमनुभवति। पृ. १५८

३. का. - विद्यमानेऽपि दीपे व्यवधानदोषेण एषोऽन्धकारमनुभवति। पृ. १५८

४. अभि. - सति दीपे खलु व्यवधानदोषेणैषोऽन्धकारमनुभवति। पृ. २७५

५. चर्चा - नोपलभ्यते।

६. श्री. - मौनम्। पृ. ३८९

**१२३. दे. ना. -कथं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि पश्चादवनतशिरोधरमिक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोति। पृ. २६५**

१. रा. - कथं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरमिक्षुमिव त्रिभङ्गं त्रिखण्डं करोति। पृ. २२४

२. घन. - कथं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि पश्चाद् अवनतशिरोधरमिक्षुमिव तीक्ष्णभंगं करोति। पृ. १५९

३. का. - अत्र भवन् कथं न भेष्यामि। एष मां कोऽपि पश्चादवनतशिरोधरमिक्षुमिव

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



तीक्ष्णभंगं करोति । पृ. १५०

४. अभि. - कथं न भेष्यामि । एष मां कोऽपि पश्चाद् अवनतशिरोधरं इक्षुमिव तीक्ष्णभङ्गं करोति । पृ. २७८

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री - मौनम् पृ. ३९३

१२४. दे. ना. - कृताः शरव्यं हरिणा तवासुरा... । २६७

१. रा. - कृता इति । हरिणेन्द्रेणासुरा दैत्यास्तव शरव्यं लक्ष्यं कृताः । पृ. २२६

२. घन. - कृता शरव्या हरिणा तवासुराः.... । पृ. १६०

३. का. - कृताः शरव्या इति ॥ स्पष्टम् । पृ. १५२

४. अभि. - कृता इति । शरव्यं लक्ष्यम् । पृ. २८०

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - कृता इति । हरिणा देवेन्द्रेण । शरव्याः लक्ष्याः । पृ. ३९५

॥ सप्तमोऽङ्कः ॥

१२५. दे. ना. भवतु । न मामयं गणयति । कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । भद्रमुख, एहि तावत् । मोचयानेन दुर्मोचहस्तग्राहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रकम् ॥ पृ. २९०

१. रा. - भवतु । न मामयं गणयति । कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । भद्रमुख, एहि तावत् । मोचय अनेन दुर्मोकहस्तग्रहेण ।...डिम्भलीलया बालक्रीडया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रं मोचयेति संबन्धः । पृ. २४४

२. घन. - भवतु भवतु । न पुनरेष मां गणयति । कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । भद्रमुख, एहि तावत् । मोचय तावदमुना दुर्मोहकार्थग्राहिणा डिम्भेन लीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् । पृ. १६९-१७०

३. का. - भवतु । न पुनरेष मां गणयति । कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । ...भद्रमुख, एहि मोचय तावदनेन दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् । पृ. १६४

४. अभि. - एत्वेतु । न मामयं गणयति । कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । भद्रमुख, एहि मोचय तावदमुना दुर्मोचहस्तग्रहेण डिम्भलीलया बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम् । पृ. ३००

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - कोऽत्र ऋषिकुमाराणाम् । निर्धारणे षष्ठी । भद्रमुखेति मान्यस्यामन्त्रणे.... । पृ. ४२०

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



१२६. दा. ना. –अस्य बालकरूपस्य तेऽपि संवादिन्याऽऽकृतिरिति विस्मापितास्मि । पृ. २९२
१. रा. – इमस्स, अस्य बालस्य तव च संबन्धेन संवादिनी सदृश्याकृतिरिति विस्मापितास्मि । पृ. २४५–२४६
२. घन. – अस्य च भवतोऽपि संबन्धसंवादिनी आकृतिरिति विस्मिताऽस्मि । पृ. १७०
३. का. – अस्य बालस्य तवापि संबन्धसंवादिनी आकृतिरिति विस्मितास्मि । पृ. १६५
४. अभि. – अस्य तव संबन्धसंवादिनी आकृतिरिति विस्मापिताऽसि । पृ. ३०१
५. चर्चा – नोपलभ्यते ।
६. श्री. – मौनम् । पृ. ४२२

१२७. दे. ना. कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तितुं चिन्तयिष्यति । पृ. २९३
१. रा. – कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति । संकीर्तनार्थं हृदि, चिन्तनेऽपि दोषः । पृ. २४७
२. घन. – कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम चिन्तयिष्यति । पृ. १७१
३. का. – कस्तस्य धर्मदारपरित्यागिनो नाम संकीर्तयिष्यति । पृ. १६७
४. अभि. – कस्तस्य धर्मधारपरित्यागिनो नाम कीर्तयिष्यति । पृ. ३०३
५. चर्चा – नोपलभ्यते ।
६. श्री. – मौनम् । पृ. ४२२

१२८. दे. ना. – मुञ्च माम । यावदम्बायाः सकाशं गमिष्यामि । पृ. २९६ [अम्बाए]
१. रा. – मुञ्च माम् । यावन्मातुः सकाशं गमिष्यामि । पृ. २५०
२. घन. – मुञ्च माम् । यावदम्बायाः सकाशं गच्छामि । पृ. १७४
३. का. – मुञ्च माम् । अम्बासकाशं गच्छामि । पृ. १६९
४. अभि. – मुञ्च माम् । मातुः सकाशं गच्छमि । पृ. ३०७ (अज्जुआए)
५. चर्चा – नोपलभ्यते ।
६. श्री. – मौनम् । पृ. ४२७

१२९. दे. ना. विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वा न म आशासीदात्मनो भागधेयेषु । पृ. २९७
१. रा. – विकारकालेऽपि...आशासीदात्मनो भागधेयेषु । पृ. २५०
२. घन. – विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्य ओषधिं श्रुत्वा अपि न मे आशंसा आसीदात्मनो भागधेयेषु । पृ. १७४
३. का. – विकारकाले प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधिं श्रुत्वाऽपि न मे आशंसाऽऽसीदात्मनो भागधेयेषु । पृ. १६९

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



४. अभि. - विकारकालेऽपि प्रकृतिस्थां सर्वदमनस्यौषधीं श्रुत्वाऽपि न मे आशंसासीदात्मनो भागधेयेषु । पृ. ३०८

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४२८

**१३०. दे. ना. मम खलु तातो दुष्यन्तः । न त्वम् । पृ. २९७**

१. रा. - मम खलु तातो दुष्यन्तः । न त्वम् । पृ. २५०

२. घन. - मम खलु तातो दुष्यन्तः, कस्त्वम् । पृ. १७४

३. का. - मम खलु तातो दुष्यन्तः । कस्त्वम् । पृ. १६९

४. अभि. - मौनम् । पृ. ३०७

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४२७

**१३१. दे. ना. अम्ब, क एष पुरुषो मां पुत्रेत्यालिङ्गति । पृ. २९८**

१. रा. - मातः, एष कोऽपि पुरुषः पुत्र इति मामालिङ्गति । पृ. २५१

२. घन. - अम्ब एष कोऽपि परकेरकः मां पुत्र इत्यालिङ्गति । पृ. १७५

३. का. - अम्ब एष कोऽपि परकीयो मां पुत्र इत्यालिङ्गति । पृ. १७०

४. अभि. - मातः, एष कोऽपि परकेरको मां पुत्र इत्यालपति । परकेरकः परकीयः । पृ. ३०९

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४२९

**१३२. दे .ना. उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणाममुखमासीत् । येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्तः । पृ. ३०१**

१. रा. - तेषु दिवसेषु परिणाममुखं परिपाकोन्मुखमासीद्येन सानुक्रोशोऽपि सकृपोऽपि आर्यपुत्रो मयि विरसोः विरागः संवृत्तः । पृ. २५३

२. घन. - उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः नूनं मम सुचरितं प्रतिबन्धकं पुरा । येन सानुक्रोशोऽपि आर्यपुत्रः मयि तथाविधः संवृत्तः । एतेषु दिवसेषु परिणामामभिमुखम् आसीत् । पृ. १७६

३. का. - उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । नूनं मम सुचरितप्रतिबन्धकं तेषु दिवसेषु परिणामामभिमुखमासीत् । येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथा विधः संवृत्तः । पृ. १७१

४. अभि. - उत्तिष्ठत्वार्यपुत्रः । नूनं मम सुचरितप्रतिबन्धकं पुराकृतं तेषु दिवसेषु

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



परिणामाभिमुखत् । येन सानुक्रोशोऽप्यार्यपुत्रो मयि तथाविधः संवृत्तः । पृ. ३१२

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४३३

**१३३. दे. ना. विषमं कृतमनेन । यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्यायनकाले दुर्लभमासीत् । पृ. ३०३**

१. रा. - विषमं कृतमनेन यत्तदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत् । पृ. २५५

२. घन. - विषमं कृतमनेन यदार्यपुत्रस्य प्रत्यायनकाले दुर्लभमासीत् । पृ. १७६

३. का. - विषमं कृतमनेन यत्तावदार्यपुत्रस्य प्रत्यायनकाले दुर्लभमासीत् । पृ. १७२

४. अभि. - विषमं कृतमनेन । यदार्यपुत्रस्य प्रत्ययकाले दुर्लभमासीत् । पृ. ३१३

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४३५

**१३४. दे. ना. नास्मै विश्वसामि । आर्यपुत्र एवैनद्धारयतु । पृ. ३०३**

१. रा. - नास्य विश्वसिमि । आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु । पृ. २५५

२. घन. - नास्ति अत्र मे विश्वासः । आर्यपुत्र एव ननु धारयतु । पृ. १७६

३. का. - नास्त्यत्र मे विश्वासः । आर्यपुत्र एवैतद्धारयतु । पृ. १७२

४. अभि. - नास्य विश्वसिमि । आर्यपुत्र एवैनद्धारयतु । पृ. ३१४

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४३५

**१३५ दे. ना. - जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम् । पृ. ३०४**

१. रा. - लज्जाम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम् । पृ. २५६

२. घन. - लज्जे, आर्यपुत्रेण सह गुरोः समीपं गन्तुम् । पृ. १७६

३. का. - जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरोः समीपं गन्तुम् । पृ. १७३

४. अभि. - जिह्रेम्यार्यपुत्रेण सह गुरुसमीपं गन्तुम् । पृ. ३१५

५. चर्चा - नोपलभ्यते ।

६. श्री. - मौनम् । पृ. ४३६

**१३६. दे. ना. जाते, भर्तुर्बहुमता भव । अवश्यं दीर्घायुर्वत्स उभयकुलनन्दनो भवतु । पृ. ३०७**

१. रा. - जाते भर्तुरभिमता भव । अवश्यं दीर्घायुर्वत्स उभयकुलनन्दनो भवतु । पृ. २५८

२. घन. - जाते, भर्तुर्बहुमता भव । अवश्यं च दीर्घायुर्वत्स उभयकुशलानन्दनो भवतु ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



पृ. १७८

३. का. - जाते, भर्तुर्बहुमता भव। अवश्यं दीर्घायुर्वत्सः उभयकुलनन्दनो भवतु। पृ. १७५

४. अभि. - जाते भर्तुबहुमता भव। अवश्यं ते दीर्घायुर्वत्स उभयकुलनन्दनो भवतु। पृ. ३१७

५. चर्चा - नोपलभ्यते।

६. श्री. - मौनम्। पृ. ३४९

**१३७. दे. ना. भगवन्! अस्या दुहितृमनोरथसम्पत्तेः कण्वोऽपि तावत् श्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैव मां परिचरन्ती तिष्ठति। पृ. ३१२, ३१३**

१. रा. - भगवन्, अनया दुहितृमनोरथसंपत्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैवोपचरन्ती सती समीपचारिणी तिष्ठति॥ पृ. १८१

२. घन. - भगवन् अनया दुहितृमनोरथसंपत्या कण्वोऽपि तावच्छ्रुत विस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनकेहैव मां उपचरन्ती तिष्ठति। पृ. १८१

३. का. - भगवान् अस्या दुहितुर्मनोरथसंपत्या कण्वोऽपि तावत् श्रुतविस्तरः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनका इहैव मां परिचरन्ती तिष्ठति। पृ. १७८

४. अभि. - भगवन् अस्या दुहितृमनोरथसंपत्याः कण्वोऽपि तावत्तव पार्श्वचरैस्तापसैः श्रुतविस्तारः क्रियताम्। दुहितृवत्सला मेनका इहैव मामुपचरन्ती तिष्ठति। पृ. ३२२

५. चर्चा - नोपलभ्यते।

६. श्री. - मौनम्। पृ. ४३५

"शाकुन्तल"के उपर्युक्त गद्यवाक्यसमूह का पर्य्यालोचन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि - (क.) "शाकुन्तल"के दाक्षिणात्य टीकाकारों के सामने "शाकुन्तल" नाटक की जो पाठपरम्परा रही होगी, वह पश्चिमभारतीय देवनागरी-वाचना के पाठ से सर्वथा भिन्न तो नहीं, परन्तु कुत्रचित् वैशिष्ट्ययुक्त विभिन्न पाठ का संरक्षण करने वाली होगी। जैसे कि उपर्युल्लिखित गद्यवाक्यों में से निम्नोक्त क्रमांकवाले गद्यवाक्य एसे हैं कि जहां पर प्रोफे. मोनीयर विलीयम्स एवं राघवभट्ट के पाठ से सर्वथा विभिन्न हो ऐसा पाठ दक्षिणभारतके प्रायः सभी टीकाकार प्रस्तुत करते हैं :-

१, ४, १४, १६, २१, २२, २६, २८, ४१, ४२, ४५, ५३, ५५, ५८, ६३, ७४, ७८, ८८, ९०, ९३, ९५, ९८, १०९, १२९, १३२.

(ख.) निम्नोक्त क्रमांकवाले गद्यवाक्य ऐसे हैं कि जहां पर देवनागरी वाचना के पाठसे

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



घनश्याम एवं काटयवेम की टीका-टिप्पण में उल्लिखित पाठ विभिन्नता रखता है :-

८, १८, २०, २८, ३७, ४८, ५७, ५९, ६०, ७१, ७२, ७५, ७९, ८०, ८१, ८४, ८७, ९२, ९४, ९९, १०८, ११३, १२१, १२२, १२३, १२४, १२६, १३० एवं १३१.

(ग.) निम्नोक्त क्रमांकवाले गद्यवाक्यों में देवनागरी वाचना से और दक्षिण के अन्य टीकाकारों के पाठ से भी भिन्न हो ऐसा पाठ अकेले घनश्याम प्रस्तुत कर रहे हैं :-

२, ६, ७, ९, १०, ११, १९, २४, ३३, ४४, ४७, ५२, ५६, ६२, ६४, ६७, ७६, ९६, ९७, १०१, १०७, १११, ११७, ११९ एवं १३६.

(घ.) अभिराम और/अथवा "चर्चाकार"की टीकाओं के कतिपय वाक्यों में ऐसा भी प्रतीत होता है कि उन टीकाकारों के "शाकुन्तल' के पाठ में कदाचित् देवनागरी वाचना का पाठ संमिश्रित हो गया है। जैसे कि निम्नोक्त क्रमांकवाले गद्यवाक्योंको देखने से यह संभावना प्रकट होगी :-

११, १२, १८, २०, २५, ३०, ४६, ४८, ५७, ७०, ७४, ८१, ८३, ८७, ९४, ९७, ९९, १०५ एवं ११७.

इस तरह देवनागरी-वाचना के साथ घनश्याम एवं अन्य दाक्षिणात्य टीकाकारों के पाठान्तरों का तुलनात्मक अभ्यास करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि "शाकुन्तल"का दाक्षिणत्य पाठ अवश्य ही कुछ स्थानों पर अपना वैशिष्ट्य रखता है। अतः जब भी कालिदास के शाकुन्तल-नाटक की "समीक्षित-आवृत्ति" (Critical Edition) तैयार करनेका भगीरथ कार्य किसी भी विद्वान् व्यक्ति के द्वारा आरम्भ किया जाय तब "सहायक-सामग्री" के रूप में, जैसे साहित्यशास्त्र में वामनादि द्वारा उद्धृत "शाकुन्तल" के श्लोको को ध्यानार्ह मानें जाते हैं, वैसे ही सभी टीकाकारों द्वारा प्रस्तुत/स्वीकृत "शाकुन्तल" के पाठ को भी अनुपेक्ष्य मानना चाहिए॥

इस दृष्टि से देखें तो प्रोफे. डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीजी ने जो "कालिदास-ग्रन्थावली" (का० ग्र०) परिवर्द्धित द्वितीय संस्करणम्, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८६]प्रकाशित किया है, उस में दाक्षिणात्य टीकाकारों में मिलते निम्नोक्त पाठान्तरों का निर्देश नहीं किया हैं:-

१. **कालिदास ग्रन्थावली, पृ. ५३१** आर्ये नेपथ्यविधानमवसितम् इत आगम्यताम्।
   घनश्याम, (प्रस्तुत महानिबन्ध के) पृष्ठाङ्क ३८ .........नैपथ्यविधानमवसितम्.........
२. **का. ग्र. पृ. ५३२** ईषदीषच्चुम्बितानि. ।
   **घन. पृ. ४०** ईषच्चुम्बितानि. ।
३. **का. ग्र. पृ. ५३३** तत् इदानीं कतमं प्रयोगमाश्रित्य एनमाराधयामः ?
   **घन. पृ. ४१** .......प्रकरणमाश्रित्य.......।
४. **का. ग्र. पृ. ५३५** न खलु न खलु बाणः. । अङ्क - १, श्लोक-१०

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



घन. पृ. ४३ यह श्लोक प्रक्षिप्त है ।

५. का. ग्र. पृ. ५४०......लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः

घन. पृ. ४८ .......स्वयंवरः संवृत्तः ।

६. का. ग्र. पृ. ५४१ इयं नो प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरीभूता ।

घन. पृ. ५१ ........आकुलीक्रियमाणा.......।

७. का. ग्र. पृ. ५४२......सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः ।

घन. पृ. ५१ .......परिश्रमापनोदनं करोत्वार्यः ।

८. का. ग्र. पृ. ५४५ सखि, न युक्तं ते अकृतसत्कारम् । अतिथिविशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम् ।

घन. पृ. ५५ ........स्वच्छन्दतो गमनमाश्रमवासिनो जनस्य ।

९. का. ग्र. पृ. ५४९ " अथ प्रवेशकः[१] ॥ १. इस पर पादटिप्पणी में लिखा है कि – "१. इयमस्मत् कृता योजना ।" लेकिन घनश्याम और अन्य दाक्षिणात्य टीकाकार उसे "प्रवेशक" कहते ही हैं ।

घन. पृ. ६१ प्रवेशकः ।

१०. का. ग्र. पृ. ५४९ .....अयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि......दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन.....। साम्प्रतं नगरगमनस्य मनः कथमपि न करोति ॥

घन. पृ. ६१ अयं शार्दूल इति मध्यन्दिनेऽपि....दासीपुत्रैः श्वगणिकलुब्धैः वनगाहनकोलाहलेन.... । सांप्रतं नगरगमनस्य कथामपि न करोति ॥

११. का. ग्र. पृ. ५५२ कथं दृष्टदोषापि स्वामिनि मृगया केवलंगुण एव संवृत्ता ।

घन. पृ. ६५ अदृष्टदोषापि..... स्वामिनि....।

१२. का. ग्र. ५५४ भो वयस्य, यतः सा तापसकन्यका अनभ्यर्थनीया, ततः किं तया दृष्ट्या ।

घन. पृ. ६८ भो वयस्य अद्य ते तापसकन्यकापि किमभ्यर्थनीया दृश्यते।

१३. का. ग्र. पृ. ५५४ निराकृत निमेषाभिः पक्ष्मपंक्तिभिरुन्मुखाः......। अंक–२, श्लोक–४

घन. में यह श्लोक है ही नहीं । और दाक्षिणात्य पाठ परम्परा में भी नहीं है।

१४. का. ग्र. पृ. ५६० आगामिचतुर्थदिवसे पुत्रपिण्डपालनो नाम प्रवृत्तपारणो मे उपवासो भविष्यति ।

घन. पृ. ७४ आगामिनि चतुर्थे दिवसे निर्वृत्तपारणो नः उपवासो भविष्यति । राघवभट्ट एवं अन्य दाक्षिणात्य टीकाकारों में भी यह पुत्रपिण्डपालन नाम का निर्देश नहीं है । यहाँ पर प्रोफे. रे. प्र. द्विवेदीजी ने बंगाली एवं देवनागरी पाठ का संमिश्रण किया है, ऐसा प्रतीत होता है ।)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



१५. का. ग्र. पृ. ५६३, ५६४ अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो० । और, संमीलन्ति न तावद् बन्धनः ॥ अंक--३ श्लोक ४,५

घन. – इन दोनों श्लोकों का दाक्षिणात्य पाठपरम्परा में स्वीकर नहीं किया है ।

१६. का. ग्र. पृ. ५६६ स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति ।

घन. पृ. ७९ सुविभक्तं खलु दुःखं, सखि अवेदनं भवति ।

१७. का. ग्र. पृ. ५६७ अन्यथा अवश्यं सिञ्चतं मे तिलोदकम् ।

घन. पृ. ८० अन्यथा सिञ्चतं इदानीं मे उदकम् ।

१८. का. ग्र. पृ. ५७९.....भगवन् ! प्रथम इति प्रेक्ष्य अविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवता एकोऽपराधो मर्षितव्य इति ।

घन. पृ. ९४ भगवन् प्रथमभक्तिम् अवेक्ष्य....।

१९. का. ग्र. पृ. ५८२ अद्यैव ऋषिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि इति ।

घन. पृ. ९८ अद्यैव राजर्षिपरिगृहीताम् त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि इति ।

२०. का. ग्र. पृ. ५८५ किं मानसी सिद्धिः ।

घन. पृ. १०० किं मानसी सृष्टिः ।

२१. का. ग्र. पृ. ६०५ तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापांगो नाम मृतपोतक उपस्थितः ।

घन. पृ. १२५ तत्क्षणं मम सः कृतकपुत्रो दीर्घापांगो नाम हरिणपोतक उपस्थितः ।

२२. का. ग्र. पृ. ६२० तिष्ठ तावत्, अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पबाणं नाशयिष्यामि ।

घन. पृ. १४२. तिष्ठ तावत् । अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधिं नाशयामि ।

२३. का. ग्र. पृ. ६३५ एष मां कोऽपि प्रत्यवनतशिरोधरम् इक्षुमिव त्रिभंगं करोति ॥

घन. पृ. १५९ एष मां कोऽपि पश्चादवनत शिरोधरमिक्षुमिव तीक्ष्णभंगं करोति ।

उपसंहार : दक्षिण भारत के १. घनश्याम, २. काटयवेमभूप, ३. अभिराम, ४. "चर्चा"का अज्ञातकर्ता और ५. श्रीनिवासाचार्य – इन पांचों टीकाकारों में से घनश्याम और काटयवेम की अपेक्षा से अभिराम एवं चर्चाकार की टीकओं में देवनागरी वाचना के समक्ष जो पाठ होगा उस में घनश्याम की अपेक्षा से अधिक प्रक्षेप पाठान्तरादि का अन्तर्भाव हो गया है । और देवनागरीवाचना के प्रतिनिधि रूप राघवभट्ट के पाठ से अनेक स्थानों पर भिन्नता रखनेवाला दाक्षिणात्य-पाठ घनश्याम एवं काटयवेमभूप प्रस्तुत करते हैं ।

★

"अभिज्ञानशाकुन्तल" के राघवभट्टादि अनेक प्रमुख टीका-टिप्पणकारों का अभ्यास करने से अपने मन में "अभिज्ञानशाकुन्तल" के पाठसंक्रमण का एक संभवित चित्र इस तरह उपस्थित होता है :-

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



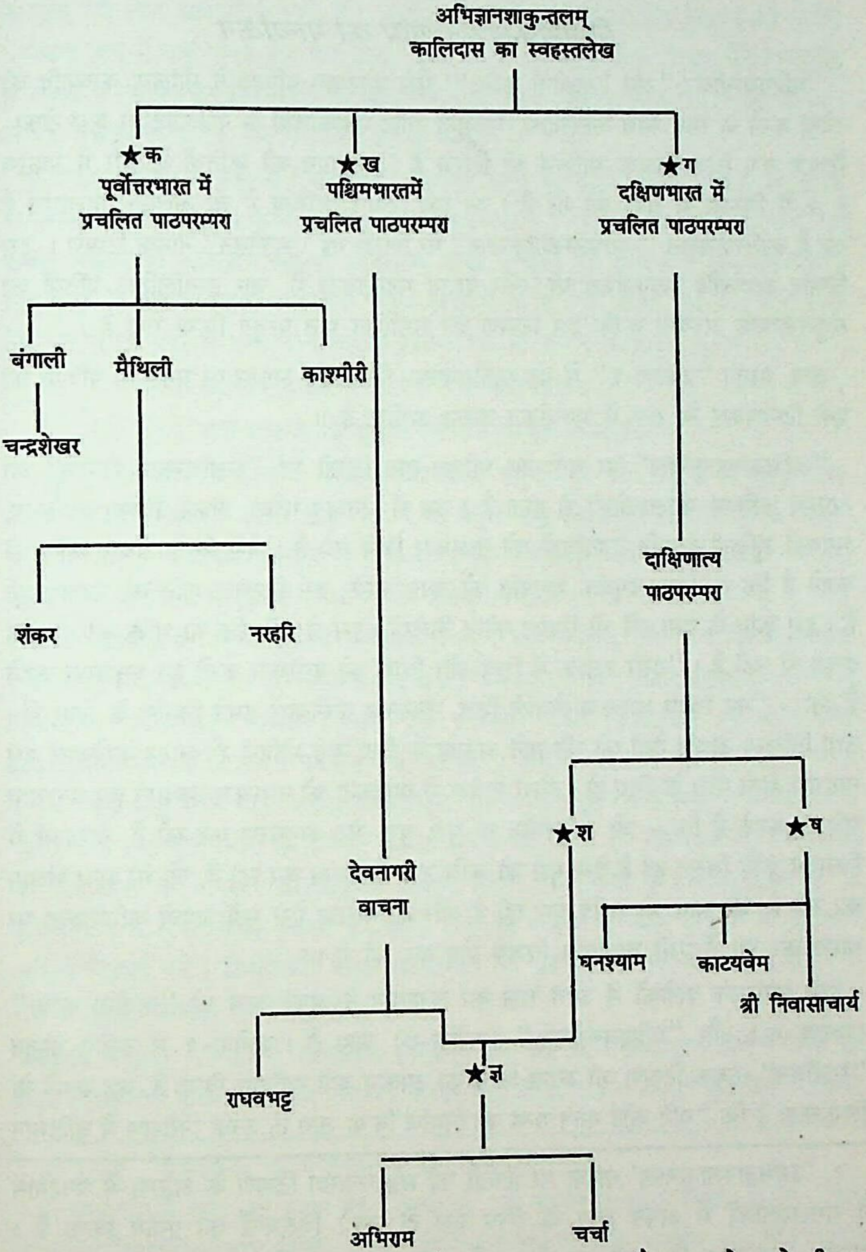


उपर्युक्त समग्र चर्चा का सारभूतकथन यह है कि – घनश्याम और काट्यवेम को ही हम "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाटक की दाक्षाणात्य पाठ्यपरम्परा का संरक्षक एवं प्रतिनिधि कह सकते हैं॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# प्रकरण - ६

## *टिप्पणकार घनश्याम का मूल्यांकन*

"षष्टिप्रबन्धीकरः"और "कवीनां कविः"[१] ऐसे घनश्याम पण्डित ने मौलिक काव्यादि की रचना करने के साथ साथ कालिदास, भवभूति आदि महाकवियों के नाटकादि पर कुछ टीका-टिप्पण रूप विवरणात्मक साहित्य भी लिखा है। घनश्याम की कृतियाँ के बारे में प्रकरण - २ में विस्तार से चर्चा की गई है। इन सब टिप्पण साहित्य में जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है वह है कालिदासकृत " अभिज्ञानशाकुन्तल" पर लिखी गई "सञ्जीवन" नामक टिप्पण। इस टिप्पण अद्यावधि अप्रकाशित थी, और प्रस्तुत महानिबन्ध में, चार हस्तलिखित प्रतियों का संतुलनात्मक अभ्यास करके इस टिप्पण का समीक्षित पाठ प्रस्तुत किया गया है।

अब, प्रस्तुत "प्रकरण-६" में यह सञ्जीवनाख्य-टिप्पण के आधार पर घनश्याम पण्डित का एक टिप्पणकार के रूप में मूल्यांकन करना अभीष्ट है॥

"अभिज्ञानशाकुन्तल" पर घनश्याम पण्डित द्वारा लिखी गई "सञ्जीवनाख्य टिप्पण" का आरम्भ कतिपय मंगलश्लोकों से होता है। उस में भगवान् गणेश, शंकर, विष्णु, वाग्देवता, भगवती शूलिनी इत्यादि देवदेवियों को नमस्कार किये गये है। जैसे कि - प्रथम श्लोक में कहते है कि - "आनन्दपूर्वक गणपति को नमन करके, हम निश्चल कृति की रचना करते है। इस कृति के द्वारा हमें भी निश्चल कीर्ति मिलेगी। इस से हमें मुक्ति या भुक्ति की तो कोई इच्छा ही नहीं है। "दूसरे श्लोक में शिव और विष्णु को नमस्कार करते हुए घनश्याम कहते हैं कि - "नट स्वरूप धारण करनेवाले शिव, नमस्कार करनेवाले हमारे निर्वाण के लिए हों। तथा निलिम्प अर्थात् देवों की रति यानें अनुग्रह के लिए नारी मोहिनी रूप धारण करनेवाले प्रभु नारायण हमारे मोक्ष के लिए हो। तीसरे श्लोक में वाग्देवता को नमस्कार उच्चारते हुए घनश्याम पण्डित कहते हैं कि - जो अतिशयेन या पुनः पुनः मेरा अनुसरण कर रही है, दिशाओं में जिसकी कृति विश्रुत हुई है ऐसे मुझे जो कवि रूप में सम्पन्न कर रही है, जो मेरे साथ संलाप कर रही है, मेरे साथ जो सर्वत्र घुम रही है और जो बालक ऐसे मुझे अपनी कटिमेखला पर धारण कर रही है ऐसी वाग्देवता विजय प्राप्त कर रही है॥[२]

इसी प्रारम्भिक श्लोकों में आगे चल कर घनश्याम ने अपने आप को "कवीनां कविः" (श्लोक-६,) और "षष्टिप्रबन्धीकरः" (श्लोक-७) कहा है। श्लोक-९ में उन्होने प्रस्तुत "सञ्जीवन" नामक टिप्पण की रचना करने का उपक्रम क्यों स्वीकार किया है, वह बताने के लिए कहा है कि "यदि कोई नूतन ग्रन्थ का निर्माण किया जाय तो उनके निरीक्षण में बुद्धिमान्

---

१. 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक पर लिखी गई सञ्जीवनाख्य टिप्पण के आरम्भ में घनश्याम ने मंगलश्लोकों में अपने आप के लिए ऐसे दो शब्दो विशेषणों का प्रयोग किया है। द्रष्टव्य : प्रकरण ४ मे, आये हुए मंगलश्लोक (क्रमांक - 6, 7), पृ. ३५.

२. द्रष्टव्य : प्रकरण-४ के आरम्भिक तीन श्लोक (पृ. ३४)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



लोग ईर्ष्यायुक्त होते हैं। और यदि अप्रसिद्ध ग्रन्थ का विवरण प्रस्तुत किया जाय तो उसे देखने के लिए वह लोग आलसयुक्त रहते हैं। अर्थात् लोक तो गतानुगतिक है। अतः (मेरी कृति) "अगाध जल में एक नौका रूप बन जाय" इसी न्याय को ध्यान में रखते हुए मैंने मन्दबुद्धि से लेकर पण्डितव्यक्तिपर्यन्त सभी को बोध कराने के लिए, सुलभ सुगम स्थल को छोडकर अन्यत्र, शाकुन्तल नाटक का व्याख्यान किया है।[३]

घनश्याम पण्डित ने यह जो "सञ्जीवन" टिप्पण लिखी है, उसमें अनेक स्थानों पर नाटक के काव्यत्व को उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। लेकिन ऐसे सभी सन्दर्भोंमें वह केवल परम्परागत अभिप्राय का ही अनुसरण करते है ऐसा भी नहीं है। जैसे कि-समग्र शाकुन्तल के काव्यत्व की चरमसीमा चतुर्थ अङ्क में ही है ऐसा कहा गया है। परम्परागत विवेचन में तो वर्षों से हम निम्नलिखित श्लोक का ही श्रवण करते रहे है कि -

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्यम्॥ (कस्यापि)

अर्थात् समग्र काव्यसाहित्य में नाटक (दृश्यकाव्य) रमणीय है, और उस में भी शाकुन्तल-नाटक अधिक रमणीय है। उस शाकुन्तल में भी चतुर्थ अङ्क उत्कृष्ट है, और उस में भी अमुक चार श्लोक तो सर्वोत्कृष्ट रमणीय है। परन्तु हमारे टीकाकार घनश्याम पण्डित ने तो इस परम्परागत अभिप्राय से सर्वथा भिन्न विचार प्रकट किया है। वह कहते हैं कि -

अत्र "तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्" इति केचित् तन्न। न हि महाकवयः एतत्समीचीन मेतदसमीचीनं करिष्यामीति कवयन्ति। समयगुणानुत्पा[द]कादिवद् भोक्तृ रुच्यनुरूपं [[केचिद् अतिस्वादु भासेत। अत एव रुचीनां वैचि ]]त्र्यादिति पुष्पदन्ताचार्या इत्यलमतिविस्तरेण॥ (द्रष्टव्य : प्रकरण - ४, पृ. १११) अर्थात् महाकवि जब काव्यरचना करते हैं तब "इस अङ्क में मैं बहुत अच्छी काव्यरचना करुंगा और दूसरे कोई अङ्क में अच्छी रचना नहीं करुंगा ऐसी पूर्वनिर्णीत मनःस्थिति से काव्यरचना नहीं करते है। वास्तवमें तो, स्थलकाल की विभिन्नता के अनुसार रसिकानुभव अलग अलग हो सकता है। सहृदय व्यक्ति के रुचिवैचित्र्य से संभव है कि किसी को चतुर्थ अङ्क की अपेक्षा से पञ्चम अङ्क में ही काव्यत्व अधिक दिखाई पडे। टिप्पणकार घनश्याम पण्डित का यह क्रान्तिकारी अभिगम हमारे लिए सब से पहेले ध्यानार्ह बन जाता है।

यद्यपि घनश्यम पण्डित ने, टीकाकार राघवभट्ट की तरह सन्धिसन्ध्यङ्गभावादि लक्षणों का लक्ष्य (शाकुन्तल नाटक) के साथ समन्वय करके, नहीं दिखाया है।[४] तथापि कुत्रचित् अलंकार,

---

३. द्रष्टव्य : प्रकरण-४ के मंगलश्लोक (पृ. ३४-३५)

४. घनश्याम ने एक-दो स्थान पर "रूपकादर्श"का नामस्मरणपूर्वक लिखा है कि - अथ वृत्तानुवादसंज्ञापनेपथ्याकाशभाषितैः पूर्यते पञ्चसन्ध्यङ्कं चतुःषष्ट्यङ्गि नाटकम् इति रूपकादर्शोक्तं निर्वहणसन्ध्युपक्षेपोट्टंकितम् आदौ....ससमाङ्कथासंविधानमुपक्रमते॥ प्रक. ४ पृ० १६२,

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



व्यञ्जना और संवादतत्त्वादि की चर्चा प्रस्तुत की है। जैसे कि – शाकुन्तल के सप्तम अङ्क में दुष्यन्त कहता है : स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया (७.२४)। इस पर घनश्याम लिखते हैं कि – अत्रार्थान्तरन्यासमाह – स्रजमिति। (प्रक. ४, पृ. १७६), इसी तरह भ्रमरबाधा प्रसंग में घनश्याम लिखते हैं कि "अम्हो सलिलसेकसंभ्रान्तो नवमल्लिकां समुझ्झित्य वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते। अनेनेयं पद्मिनीति व्यज्यते ॥ (प्रक. ४, पृ. ४९ ) तथा षष्ठाङ्क में फिर से विदूषक की उक्ति पर लिखते हैं – "आः एष दास्याः पुत्रः कुसुमासवपाटच्चरोऽत्रभवत्या वदनमतिलंघयति दुष्टमधुकरः। ......."अति" इति अतिक्रामतीत्यर्थः। बाधतइति यावत्। कुसुमेत्यनेन पद्मिनीयमिति व्यज्यते। (प्रक. ४, पृ. १५२) ॥ कभी कभी शकुन्तलादि पात्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोगत भावादि को भी प्रकट करते हुए लिखते है कि – हला, अशरणास्मि, अन्यतरा गच्छतु। "अन्यतरागच्छतु" अन्यतरा आगच्छत्विति बाह्यशब्दार्थचमत्कारः। वस्तुतः तुल्यमानमर्यादयोरभिन्नमनसोः शरीरभिन्नयो रुचितज्ञयोः सख्योर्गमनदृढीकरणायेवान्यतरा गच्छत्विति सकृद् उपरिप्लवं निगदन्त्याः शकुन्तलायास्तावद् आन्तरङ्गो भावः सूक्ष्मबुद्धिभिरवगन्तव्यम् ॥ (प्रक. ४, पृ. ८६)

महाकवि की नाट्यकला की परिचायक कुछ युक्तियों का भी घनश्याम ने विवरण किया है। उदाहरण स्वरूप – शाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में शार्ङ्गरवकी उक्ति के रूप में आया हुआ एक श्लोक – "किं कृतकार्यद्वेषो धर्मं प्रति विमुखता कृतावज्ञता। मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु ॥ "के दो चरणों के मध्य में दुष्यन्त की एक गद्य उक्ति कवि ने रखी है। जैसे कि – कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः। इस तरह की संवादग्रथन शैली के लिए घनश्याम ने लिखा है कि – एकस्मिन्नेव पद्ये पादार्धपदभेदान्मध्ये वाक्यादिभिर्व्यवधानं नाटकादिषु सर्वत्र सम्प्रदाय इत्यनुभवसिद्धम्। (प्र. ४, पृ.१२२)

★ ★ ★

इस "सञ्जीवन" टिप्पण का पङ्क्तिशः अध्ययन करने से यह भी दिखाई पडता है कि घनश्याम ने अनेक स्थानों पर विलक्षण अर्थों की उद्भावना की है। जैसे कि – १. शाकुन्तल, प्रथमाङ्क, श्लोक २६ "वैखानसं किमनया ....आहो निवत्स्यति समं हरिणांगनाभिः। " उस पर घनश्याम लिखते हैं : यथा तथा निवत्स्यति, निवासं करिष्यति, किमिति काकुः। निर्बन्धिनी किमथवा पशुजातिवदियं मदनरसानभिज्ञैव स्थास्यतीति विनोदचमत्कारोक्तिः ॥(प्रक. ४, पृ. ५३-५४.) २. प्रथमाङ्क की उक्ति (इमामसंबद्धप्रलाभि(पि)नीं प्रियंवदाम् आर्यायै गौतम्यै निवेदयितुम्) में शकुन्तला ने "प्रियंवदा" नाम का उच्चारण करके एक विशिष्टार्थ की अभिव्यंजना की है ऐसा घनश्याम बताते हैं :- "पिअंवदमिति" – प्रियं वदति, नाद्यादायापि मां कार्यपारगां करोतीति औत्सुक्यातिशयो व्यज्यते ॥ (प्रक. ४, पृ. ५५)

३. घनश्याम कभी कभी वाक्य के पदन्यास में विशिष्ट प्रकार का शब्दभंग करके भी चमत्कृति का बोध कराते हैं। तद्यथा शाकुन्तल प्रथमाङ्क में दुष्यन्त कहते हैं कि – "मा मैवम्।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



दर्शनेन भवतीनां सत्कृतोऽस्मि ।" इस पर सञ्जीवन टिप्पण में लिखा है कि - दर्शनेन सत्कृतोऽस्मीत्युपचारपर एकोऽर्थः । भवतीनां दर्शने अवलोकने न सत्कृतोऽस्मि । शुष्कफलदर्शने सति किं फलमिति सप्तमीपदविभागेनाऽन्योऽर्थः । (प्रक. ४, पृ. ५८) यहां "दर्शनेन" एसे तृतीयान्त पद को "दर्शने से" ऐसा सप्तम्यन्त पद बनाके विशिष्टार्थ निकाला गया हैं । यद्यपि, ऐसे विशिष्टार्थों की उद्भावना कदाचित् मूल पात्र (प्रकृत में नायक) की गरिमा को हानि भी करता है ।

४. शाकुन्तल द्वितीयाङ्क में जब दुष्यन्त विदूषक को कहता है कि –"अनवाप्तचक्षुः फलोऽसि । येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम् ॥" तब विदूषक ने उनके प्रतिभाव में जो कहा है कि – ननु भवानग्रतो मे वर्तते ॥' अर्थात् आप को छोडकर और कौन सुन्दर हो सकता है ? आप ही मेरे (विदूषक)केलिए तो दर्शनीय है ॥ ऐसा उसका फलितार्थ है । लेकिन घनश्यामने इस उक्ति को परिहासोक्ति में रूपान्तरित कर दिया है । जैसे कि – 'ननु भवानग्रतो मे वर्तते, दर्शनपथाच्छादक इति परिहासोक्तिः ।(पृ.६७) अर्थात् विदूषक कहता है कि जव तक आप ही मेरे दृष्टिपथ को रोक के वीच खडे है तब तक मैं दर्शनीय वस्तु को कैसे देख सकुं ?!॥

५. शाकुन्तल तृतीय अङ्क के अन्त में शकुन्तला की एक उक्ति है – "लतावलय संतापहार । आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय ।" उसको व्याकरण की सहायता से – बहुव्रीहि समास परक अर्थ करके विशद करते हुए घनश्याम लिखते हैं कि – 'लता एव वलयानि यस्येति दुष्यन्तपक्षे चार्थः ।' (प्रक. ४, पृ. ८९)

६. पूर्वोक्त सन्दर्भ में ही दुष्यन्त की विप्रलब्ध स्थिति सा भाव स्पष्ट करते हुए टिप्पणकार घनश्याम लिखते है कि – (दुष्यन्त शून्य वेतसगृह में से बहार नीकलने में असमर्थ है । क्योंकि –) सहसा अतर्कितम् । शून्यादपीति तया रहितादपि निर्गन्तुं न शक्नोमि । किमुत तया परिपूर्णादिति कैमुतिकन्यायः । शून्यात्तया रहिताद् वेतसगृहादपि निर्गन्तुं न शक्नोमि, किमुत तया परिपूर्णात् । महास्तरणादि कौतुकवतो मणिमयाद् उपकारिकागृहादिति च भंग्यन्तरेण कैमुतिकन्यायो व्यज्यते ॥ (प्रक. ४, पृ. ९०)

७. चतुर्थ अङ्क में – सखियाँ प्रत्यभिज्ञानमन्थर होनेवाले दुष्यन्त को दिखाने के लिए जब शकुन्तला को अंगुलीयक देती हैं, तब शकुन्तला आकम्पित हो जाती है । इसी समय सखीयाँ कहती हैं कि – "मा भैषीः । अतिस्नेहः पापशङ्की ।" इस वाक्य का स्वाभाविक अर्थ तो यह है कि जब अतिस्नेह होता है तो कोई पाप की यानें अकस्मात् की आशंका रहती है । लेकिन घनश्याम ने इस उक्ति का आधुनिक लगे ऐसा एक अर्थ नीकाला है :- अतिस्नेहः पापशङ्की । अतिस्नेहे विरोधो भवितेति भावः ॥ (प्रक. ४, पृ. १०९)

८. पञ्चम अङ्क के आरम्भ में हंसपदिका–गीत का प्रसङ्ग है । घनश्याम पण्डित ने हंसपदिका एवं इस के गीत का अनेकविध व्यंग्यार्थ नीकाल कर बताया है । जैसे कि हंसपादिका नाम भोगिनी स्त्री । ...ध्रुवामाह–अभिनवेति । अभिनवमधुलोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् । हे मधुकर, तथाऽतिशयेन चूतमंजरीं परिचुम्ब्य साम्प्रतमिति शेषः । अभिनवमधुलोलुपो लम्पटस्त्वं कमले वसतिमात्रेण तदेकवासेन निर्वृतः सुखित एनां मञ्जरीं कथं विस्मृतोऽसीत्यर्थः । एतेन मधुकरस्थाने दुष्यन्तो, मञ्जरीस्थाने हंसपदिका, मधुस्थाने नवसम्भोगविलासः, कमलस्थाने शकुन्तलैव व्यज्यते । अत एव देवीं वसुमतीमन्तरेणेत्यनुपदं वक्ष्यते । विदूषकमुखादेव शकुन्तलावृत्तं हंसपदिकादीनां विदितामिति भावः । ...अथवा कमलस्थाने हंसपदिका अहमिति भावः । तथा च कमले वसतिमात्रं शुष्कस्थितिः । अत एव सकृत्कृतप्रणयोऽयं जन इत्यनुपदं वक्ष्यते । प्रकृते तथा शुष्कस्थित्या निर्वृतः त्वं तथा यथेप्सितं परिचुम्बिता चासौ चूतमञ्जरी च तां शकुन्तलां कथं विस्मृतोऽसि विस्मृतवानसि ॥ (प्रक. ४, पृ ११२)

९. सप्तमाङ्क में – इन्द्र के प्रासाद में जाते समय मातलि दुष्यन्त को एक अशोक वृक्ष के नीचे प्रतीक्षा करनेको कहता है – 'अस्मिन्नशोकवृक्षमूले तावदास्तामायुष्मान् यावत्त्वामिन्द्रगुरवे निवेदयितुमन्तरान्वेषी भवामि॥' यहाँ पर घनश्याम ने शब्दशक्तिमूलक ध्वनि को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – अशोकेति। त्वमप्यशोको भविष्यतीत्यभिप्रायः ॥ (प्रक. ४, पृ १६७)

★ ★ ★

घनश्याम पण्डित ने शाकुन्तल पर जो "सञ्जीवन" टिप्पण लिखी है उसमें अनेक शास्त्रवचनों या शास्त्रकारों का स्मरण किया है । जैसे कि स्कंदपुराण, रूपकादर्श, शकुनलक्षण, दण्डी, राजशेखर, धोयी कवि, प्रबन्धु प्राकृतप्रकाश, प्राकृतमञ्जरी, पाणिनि, पतञ्जलि, भरत, आदिकाव्य, नारद, वामन, डिण्डिम, क्रीडाचन्द्र, क्षेमेन्द्र, भारतचम्पू, वस्तुनिर्णय शकुनावली, विक्रमार्क, लक्षणप्रपंच, लीलाशुक इत्यादि । इसी तरह से शब्दार्थ के विशदीकरण के लिए विभिन्न कोशग्रन्थों से भी उद्धरण प्रस्तुत किये हैं । उदाहरण के रूप में देखें तो – अमर, हलायुध, मेदिनी, धरणी, नानार्थमंजरी, केशव, त्रिकाण्डी, हैम, शब्दार्णवः, पदमाला, केदार, वैजयन्ती, अगस्त्य, माठर, जय, रुद्र, संसारावर्त, ध्वनिमंजरी, इत्यादि कोशों का विनियोग करके वह मूल कृति के संवाद या श्लोकों के शब्दार्थ को सुगम बनाते हैं और विलक्षण अर्थ भी निकाल कर दिखाते है ॥ (द्रष्टव्यः परिशिष्ट पृ. २९०–२९३)

यहाँ विशेष उल्लेखनीय एक बात यह है कि घनश्याम ने "शाकुन्तल सञ्जीवन टिप्पण" में जितने कोशग्रन्थां के उद्धरण दिये है, उतने उद्धरण "शाकुन्तल" के अन्य किसी भी टीकाकार ने शायद नहीं दिये हैं । भवभूतिकृत "उत्तररामचरितम्" पर घनश्याम ने जो टिप्पण लिखी है, उसके मंगलश्लोकों में ही घनश्याम ने अपने आप को "कोशावलीवल्लभ" कहा है,[५] वह यहाँ भी यथार्थ प्रतीत होता है ॥

५. ....कोशावलीवल्लभो नम्रः सत्पदि वावदीति स घनश्यामः कवीनां कविः ॥ ५ ॥ (द्रष्टव्यः उत्तररामचरितम् घनश्यामकृत सञ्जीवनाख्य टिप्पणसमेतम्, पृ. १, सम्पादक श्री पी. वी. काणे, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, चतुर्थ संस्करणम्, १९६२

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



★

घनश्याम की "सञ्जीवन" टिप्पण की एक मुख्य विशेषता यह दिखाई पडती है कि उस में मूल नाट्यकृति की प्राकृतभाषोक्त. सभी उक्तियों का "संस्कृत छायानुवाद' प्रस्तुत किया गया है। और उसी सन्दर्भ में टिप्पणकार घनश्याम ने अनेक स्थानों पर वररुचिकृत "प्राकृतप्रकाश" के सूत्रों का उद्धरण दिया है। उन सूत्रों के उद्धरणों और "प्राकृतप्रकाश" की प्रकाशित आवृत्तियाँ में प्राप्त होते हुए सूत्रों के पाठ में कदाचित् विभेद भी होता है, जो हमने पादटीप में यथास्थान प्रदर्शित किये हैं। यद्यपि प्राकृत उक्तियाँ का संस्कृत छायानुवाद देने का कार्य तो राघवभट्टादि अन्य टीकाकार भी प्रायः करते हैं, तथापि घनश्याम की, एक वैयाकरण के दृष्टिकोण से जो सावधानी है, वह अन्य व्याख्याकारों में नहीं है। उदाहरण रूप से-

शाकु. के प्रथमाङ्क में शकुन्तला की एक उक्ति है - "यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा॥" मूल में यह उक्ति प्राकृतभाषा में है : "जइ अत्तणो पहविस्सं।" और टीकाकार राघवभट्ट ने उसका संस्कृत छायानुवाद "यद्यात्मनः प्रभविष्यामि" के रूप में ही किया है (द्रष्टव्य : शाकुन्तलम्, निर्णयसागर प्रेस आवृत्ति, शाके १८३८, पृ. ४९, ५०) लेकिन हमारे घनश्याम इस उक्ति पर लिखते हैं कि - यदि आत्मने प्रभविष्यामि। परवशास्मीति भावः। अ. पणो इत्यत्र "चतुर्थ्याः षष्ठी" इति (प्राकृतप्रकाशः पृ. १०७) षष्ठीनिर्देशः)॥ (प्रक. ४, पृ. ५७) अर्थात् प्राकृत व्याकरण का नियम है कि संस्कृतभाषा में जहाँ पर चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है उस के लिए प्राकृतभाषा में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। अतः जब कोई प्राकृत उक्ति का संस्कृत में छायानुवाद करना हो, तब प्राकृत में जहाँ पर चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में षष्ठ्यन्त रूप का प्रयोग हो (जैसे कि - प्राकृत में अप्पणः) वहाँ पर उस षष्ठ्यन्तरूप का चतुर्थी विभक्ति में रूपान्तर करके ही छायानुवाद करना चाहिए। घनश्याम ने इस नियम का पालन सर्वत्र सावधानी से किया है।

इसी तरह चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में अनसूया की उक्ति है : 'अण्णहा कहं सो रएसी तारिसाणि मन्तिअ एत्तिअस्स कालस्स लेहमेत्तं पि ण विसज्जेदि। ता इदो अहिण्णाणं अंगुलीअअं से विसज्जेम॥" इसका राघवभट्ट ने जो संस्कृत छायानुवाद दिया है, वह इस प्रकार है : - अन्यथा कथं स राजर्षिरिति साभिप्रायम्। तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति। तदितोऽभिज्ञानमंगुलीयकं तस्य विसृजावः॥ (पृ. ९७, परन्तु घनश्याम ने उसका संस्कृतानुवाद इस तरह दिया है :- अन्यथा कथं स राजर्षिस्तादृशानि वचनानि मन्त्रयित्वा एतावतः कालस्य लेखमात्रमपि न विसर्जयति। तस्मादितोऽभिज्ञानमंगुलीयकम् अस्मै विसर्जयामि॥ (प्रक. ४, पृ-. ९७)

घनश्याम अन्यत्र भी "प्राकृतप्रकाश"से अनेक सूत्र उद्धृत करके प्राकृत उक्तियांका संस्कृत छायानुवाद किया है और साथ में, यदि कवि कालिदास ने कोई प्राकृत शब्द का रूप अशुद्ध

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



प्रयुक्त किया हो, तो उसकी भी आलोचना वे करते रहते हैं। उदाहरण के रूप में –

(क.) स्वयमेवाक्षि आकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छति। "अ. खी" ति कवेः प्रमादः। अक्ष्यादिषु छः। (प्रा. प्र. ३-३०) इति विशेषसूत्रस्यावतारात्॥ (प्रक. ४, पृ. ६२)

(ख) अरण्ये मया रुदितम्। "अरण्णे" इति कवेः प्रमादः। लोपोऽरण्णे(ण्ये) इति अकारलोपस्य वक्तव्यत्वात्। अत एव "राण" इति महाराष्ट्राः॥ (प्रक. ४, पृ. ६३-६४)

(ग.) यावत् कस्यापि तपस्विन इङ्गुतैलचिक्कणशीर्षस्यारण्यकस्य हस्ते न पतति। ...."ह. थे" इत्यत्र "स्तस्य थः (प्रा. प्र. ३-१२) इति थत्वम्॥ (प्रक. ४, प-. ६९)

(घ.) तातैषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भमन्थरा मृगवधूर्यदाऽनघप्रसवा भवति, तदा मे किमपि प्रियनिवेदयितृकं पत्रकं विसर्जय॥ "प. जंते" ति कवेः प्रमादः। व्याख्याकृदपि कश्चिदत्र मौनभंगीमङ्गीचकार। पर्यन्तेति प्रयोगे "र्यस्य ज" (प्रा. प्र. २-२९) इति सूत्रेण "प.जंते" ति वक्तव्यस्य प्रकृते दौर्बल्यात्। "तूर्य-धैर्य-सौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु र" इति विशेषसूत्रेण तस्य बाधिततया पेरंतेति कथनस्य साधीयस्त्वात्॥ (प्रक. ४, पृ. १०५)

(ङ) गच्छ मदीय उटजे मार्कण्डेयस्यार्षिकुमारस्य वर्णचित्रितो मृत्तिकामूयरस्तिष्ठति, तमस्मायुपहर आनयेत्यर्थः। "मयूर-मयूखयोर्वे"(प्रा. प्र. १-७)त्यनेन "मोरो" इति रूपसिद्धिः॥ (प्रक. ४, पृ. १६९)

(च.) "अचरिअमिति" कवेरितरव्याख्यातुश्च प्रमादः। "अचेरमिति सुपाठः। आश्चर्यमित्यर्थः। "तूर्य-धैर्यसौन्दर्याश्चर्यपर्यन्तेषु र (प्रा. प्र. ३-१८) इति सूत्रानुशासनात्॥ (प्रक. ४, पृ. १७०)

(छ.): एष एव स्यालो मित्रावसुरिति भण्यते। कविनैवाग्रे ""मि. तावसुणा र. ठिएणेति", तदनुपदमेव...वक्ष्यत इति दिक्। "अदन्तेषु च शब्देषु प्रथमकवचः स्थले। सप्तमी षसरेफेषु शळप्राया तु मागधीति" वररुचिप्रोक्तलक्षणाद् अतिनीचपात्रोचितां पैशाचीं भाषामुपक्रमते॥ अळे इति। अरे कुम्भे(भी)रक, कथय कथय॥ (प्रक. पृ. १३१)

(ज) अस्य संतापेनाहं रमे। मम शकुन्तलायां वात्सल्यादिति भावः। प्राकृते रमामीति साधुः। आत्मनेपदव्यवस्थाविरहात्॥ (प्रक. ४, पृ. १४४)

(झ) नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ना वद्धपल्लवतयोपभोक्षमो बालसहकारः। "जोसिणीति" प्राकृतमंजर्याम्, "बाळा-"बाळि" ईत्यादिरूप द्वयस्याभिधानाद् ईदन्तपष्ठ्यप्रयोगः॥ (प्रक.४, पृ. ४८)

इसी तरह से देखें तो शाकुन्तल के सभी व्याख्याकारों में, प्राकृत उक्तियों के संस्कृत छायानुवाद करने में घनश्याम पण्डित का स्थान अग्रगण्य है।

★ ★ ★

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



घनश्याम पण्डित ने अपनी इस सञ्जीवन टिप्पण लिखते समय, परम्परा से प्राप्त हुए अनेक पाठान्तरों का उल्लेख एवं कुत्रचित् उसकी समीक्षा भी प्रस्तुत की है। जैसे कि -

१. न खल्विति। वीप्सायां द्विरुक्ति। ते तव। श्लोकोऽयं प्रक्षिप्त इति केचित्। (प्रक. ४, पृ.४३)

२. नष्टाशंका इति सुपाठः। नष्टाशंकमिति केचित् तन्न। क्रियाविशेषणद्वयस्यानुचितत्वात्॥ (प्रक. ४, पृ. ४५)

३....सप्तपर्णवेदिकायाम् आर्य उपविश्य परिश्रमापनोदनं करोतु। परि. समविणोदणमिति पाठे परिश्रमस्य विशेषेण नोदनम् अपसारणमित्यर्थः॥ (प्रक. ४, पृ. ५१)

४. मांडव्य इति विदूषकस्य नाम, शाकल्य बाभ्रव्यमाण्डव्येति सूत्रप्रयोगात्, माढव्येत्यविचारितः पाठः। (प्रक. ४, पृ. ६५) यह एक विशेष उल्लेखनीय सन्दर्भ है कि जहाँ विदूषक का नाम परम्परा से भिन्न बतलाया गया है और विशेष में परम्पराप्राप्त माढव्य (=माधव्य)ऐसे नाम को "अविचारित पाठ" कहा है। यद्यपि पाणिनीय सूत्र - मधुबभ्व्रोर्ब्राह्मणकौशिकयोः (पा. सू. ४-१-१०६) से भी ब्राह्मण अर्थ में मधु शब्द से "माधव्य" शब्द की (और प्राकृत में 'माढव्य' की) प्राप्ति बतानी उचित थी॥

५....शचीतीर्थं वन्दमानायास्तव हस्तात् प्रभ्रष्टमंगुलीयकम्। ...",सईति०थम्" इत्यत्र "सर. स इति.थम्" इति पाठे सरस्वतीतीर्थमित्यर्थः। (प्रक. ४, पृ. १२४)

६. अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेनैवं पश्यसि। "अविणय" इति पाठे अविनयेत्यर्थः। (प्रक. ४. पृ. १२६)

७. यदि भवानन्तःपुरकलहान् मुच्यते ततो मां मेघप्रतिच्छन्दे प्रासादे शब्दापयतु...। "स. दावेउ" इति सुपाठः। "स. दावय "स. दावेहीति' कुपाठौ कश्चन व्याचकार, तन्न। कविना भवानित्यभिधानात्॥ (प्रक ४, पृ. १५४)

८. सरस्वती कृतिरूपेति भावः। महीयताम् पूज्या भवतु। महीयते विजयते जयतीति माठरः)। "महीयसी" - "महीयसाम्" इति भ्रान्तौ पाठौ। तिङ्पदाभावेन प्रक्रमभंगात्। (प्रक. ४, पृ. १८२) इत्यादि॥

★ ★ ★

घनश्याम पण्डित "संजीवन" टिप्पण लिखते समय नाट्यकार कालिदास की शब्दरचना की यथास्थान प्रशंसा भी करते हैं, और भावक की सुरुचि को ध्यान में रखते हुए कुत्रचित् आलोचना भी कर लेते हैं। उदाहरण रूप से निम्नोक्त वाक्यावली पठनीय है :-

१. शाकु. २.२ पर घनश्याम लिखते हैं : "कामी स्वताम् आत्मीयत्वम् उद्दिश्य पश्यति। किल-अहो-आश्चर्य इति योजना सूक्ष्मदृग्भिर्बोध्या। (प्रक. ४, पृ. ६२), २. अत्यन्तमेवेत्यादिरयुक्तः पाठः नाशार्थकत्वात्। पुरुषसंगाभावेन पानाप्रसक्तेः मदिरेक्षणत्वकथनम् असमंजस-

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



मित्यालंकारिकाः। (प्रक. ४, पृ. ५४) ३. हा हतोऽस्मि एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन। हा हतोऽस्मीत्यादिकम् अश्लीलं नाटकादिषु न प्रयोज्यम्। (प्रक. ४, पृ. ६०) ४. "अप्सरसि गौर्यामिति" बाणकवेरिवाप्सरसेत्येकवचनप्रयोगः कवेः प्रमादः । स्त्रियां बहुष्वप्सरस इत्यमरसिंहेनाभिधानात् ॥ (प्रक. ४, पृ. ५३)

घनश्याम पण्डित ने जिस तरह कवि कालिदास की शब्दरचनादि में दोषादि का प्रदर्शन किया है उसी तरह, अपने पुरोगामी व्याख्याकारों की भी, बिना नामोल्लेखादि किये, अनेक स्थानो पर आलोचना की है। जैसे कि -

१. अत एव गण्ड. सोवरि अवरोफुडिउ. भेदो इति राजशेखरश्च। ..."मुरम' इति महाराष्ट्राः। शतमप्यन्धाः कूपे पतन्तीति न्यायवदत्र पण्डितंमन्या बहवो भ्रमन्ति, विशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक्। (प्रक. ४, पृ. ६१)

२. अन्यनिर्बन्धाभावेन स्वच्छन्दसंचारितया जातु संक्लिष्टोऽपि सर्पः कुञ्जरश्च यथा सत्त्वप्रधानस्तथैवायं राजेति भावः। पद्येऽस्मिन् बहवो भ्रमन्ति। (प्रक. ४, पृ. ६५)

३. अपरा न विद्यते परोत्कृष्टा यस्याः सा स्त्रीरत्नसृष्टिः प्रतिभाति तथा चेषमीदृशी तादृशीति वक्तुमशक्येति भावः । अस्मिन् पद्येऽपि बहवो भ्रमन्त एव किमपि किमपि व्याकिर्षुः। विशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक्। (प्रक ४, पृ. ६९)

४. क्षयि नश्वरम्। आरण्यकास्तापसाः। अत्र कश्चिद् "आरण्यका" इति बहुवचनाद् "ददन्ति" इति वक्तव्यम् , ददतीति पाठे त्वारण्यक इत्येकवचनं युक्तमिति व्याचकार। नमस्तस्मै, नमसी तस्य व्युत्पत्तये, नमांसि च तद्व्याख्यनाय ॥ (प्रक. ४ पृ. ७१)

५. शाकु. तृतीयाङ्क श्लोक-८ (पृष्ठा जनेन समादुःखसुखेन बाला. ...) के लिए घनश्याम ने लिखा है कि - अस्मिन्पद्ये सुमतयाऽमतयश्च शिरोभ्रमणकोलाहलमभिनयन्ति। (प्रक. ४, पृ. ८०)

६. चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में आये हुए दुर्वासाशापवाले प्रसंग के अर्थोपक्षेपक के लिए घनश्याम कहते हैं कि - केचित्तु "विचिन्तयन्तीयम्" इत्युत्तमपात्रव्यवहाराच्च मिश्रविष्कम्भ इति व्याचक्रुः। तदश्वशृंगमिव संमान्यम्। नेपथ्य इति कथनेन तत्पात्रस्य रंगतले प्रवेशाभावात्" (प्रक. ४ प-. ९४)

७. शाकु. पञ्चमाङ्क के आरम्भ में हंसपदिका के गीत के लिए घनश्याम लिखते हैं कि - "अत्र संविधाने - "भीमेन प्रेषिता गजादिवद् अद्यापि परिभ्रमन्ति केचिदन्ये व्याख्याकाराः । शिष्यकृतसेवायां निरसूय गुणग्राहिविशेषज्ञाः प्रमाणमिति दिक्। (प्रक. ४, पृ. ११२)

८. मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः । मातृपितराविति वक्तव्यं, मातापितराविति प्रमाद इत्यजागळ(ल)स्तनायितव्युत्पत्तियुक्तिः, कश्चन व्याचकार, तत्र । "मातापितरौ, पितरौ, मातरपितराविति अमरसिंहेनाभिधानात् ॥ (प्रक. पृ. १४५)

★ ★ ★

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



उपर्युक्त सन्दर्भों में देखा जा सकता है कि एक व्याख्याकार के रूप में घनश्याम पण्डित में परिहासवृत्ति भी है, और कभी कभी अभिनिवेश बुद्धि भी है। जिसके परिणाम स्वरूप वह कदाचिद् अन्य कविओं का कालानुक्रम भी ध्यान में नहीं रखते हैं, और कुछ असंबद्ध भी लिख देते हैं। उदाहरण स्वरूप –

१. घनश्याम ने महाकवि कालिदास को सायण मायणादि जैसे अपेक्षाकृत परवर्ती/अर्वाचीन कवियों के "समानकालिक" कह दिया है। इससे प्रतीत होता है कि घनश्याम को समयानुक्रम का अर्थात् कविओं के पौर्वापर्य का ध्यान नहीं रहा है। प्रस्तुत "सञ्जीवन" टिप्पण के आरम्भ में ही उन्होंने लिखा है कि – 'अथ सायणमायणादि पुरातनकविसमानकालिको भाग्यनिमित्तवशात् कामुकराजकन्योपदेशेन श्यामलादेवीलिखितबीजाक्षररसज्ञः काळि(लि)दास कविर्यशसे व्युत्पत्तिकनकनिकषोपलप्रायं नाटकं शाकुन्तलं नाम चिकीर्षुः...मंगलम् आचरति।. (प्रक.४,पृ.३८)

२. इसी तरह कालिदास और बाण कवि के काल का भी व्युत्क्रम करके घनश्याम ने लिखा है कि –कादम्बरीसाक्षिकम् अस्माकं प्रथमसौहृदं भवतु। कादम्बरी साक्षिणी यस्मिन् तत्कादम्बरीसाक्षिकं, मद्यसाक्षिकमित्यर्थः। ...सद्विनिन्द्य "कादम्बरी" पदप्रयोगेण असत्काव्यकादम्बरीकारिणी बाणकवौ प्रकृतिकविना दोष उद्घाटित इति बोध्यम्॥ (प्रक. ४, पृ. १३५) यहाँ स्पष्ट है कि समयानुक्रम की दृष्टि से जो पूर्ववर्ती कवि कालिदास है वह "कादम्बरी" शब्द का 'मद्य' अर्थ में प्रयोग करके परवर्ती होने वाले बाण कवि की कृति'कादम्बरी' के शीर्षक पर कैसे दोषप्रदर्शन करेंगे ? इस से सिद्ध होता है कि घनश्याम ने कुत्रचित् ऐसे प्रामादिक व्याख्यान भी लिख दिया है॥

★ ★ ★

घनश्याम में अनेक स्थानों पर "इति ध्वनिः", "इति ध्वनी", अथवा "इति ध्वनिदोषश्च" ऐसी दिङ्मात्रदर्शिनी टिप्पण लिखी है। जिसमें कुछ स्थान पर अर्थ की विशदता दिखाई पडती है, और कभी कभी घनश्याम क्या कहना चाहते है वह स्पष्ट नहीं भी होता है। जैसे कि – १. शाकु. अङ्क – ४, श्लोक–१७, (अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनान्.) इस पर घनश्याम लिखते है कि – "अत्र पद्ये संयमधनानिति, स्नेहप्रवृत्तिमिति च ध्वनी। एकश्चकारोऽधिक इति दिक्। वनौकस इति, पतिकुलमिति च ध्वनी॥ (प्रक. ४, पृ. १०८) यहाँ पर कविने जो विरुद्धार्थक शब्दों का चयन किया है और इस से जो रमणीयता की निष्पत्ति हो रही है वह व्याख्याकार बताना चाहते है ऐसा स्पष्ट हो जाता है। लेकिन अन्यत्र प्रायः ऐसी विशदता प्राप्त नहीं होती है। जैसे कि – (शाकु. अङ्क ५.२० के नीचे) शारद्वत की उक्ति है : "शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले वक्तव्यमुक्तमस्माभिः। सोऽयमत्रभवानेवमाह, दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्॥" – इस उक्ति में आये हुए "सोऽयम्" शब्द के उपर घनश्याम ने लिखा है कि – "यमेति ध्वनिः। अत्रभवान् दुष्यन्त, आह वदति॥' (प्रक. ४ पृ. १२३) कतिपय

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.


ऐसे भी स्थान मिलते हैं जहाँ पर घनश्याम "इति ध्वनिश्च" कह कर शब्द के रूढार्थ से अतिरिक्त यौगिकार्थ की और भी ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं । जैसे कि - आपन्नसत्त्वा गर्भिणी, ध्वनिश्च ॥ (प्र. ४, पृ १२०)

★ ★ ★

घनश्याम पण्डितकृत यह "अभिज्ञानशाकुन्तल सञ्जीवन-टिप्पण" के पाठ का प्रस्तुत समीक्षित सम्पादन का पंक्तिशः अध्ययन करने से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि - घनश्याम ने "अभिज्ञानशाकुन्तल" की इस "सञ्जीवन टिप्पण" में कहीं पर भी भर्तृमीढ या ईश्वरकृष्ण के नाम का स्मरण तक नहीं किया है । परिणामस्वरूप प्रोफे. टी. जी. मांइकर जी की जो परिकल्पना है कि - "सांख्यकारिका के कर्ता और अभिज्ञानशाकुन्तलादि के कर्ता महाकवि कालिदास एक ही व्यक्ति है" वह प्रस्तुत सञ्जीवनटिप्पण से कीसी भी रीति से समर्थित नहीं होता है । इस विषय को कुछ विस्तार से समझना आवश्यक है :-

प्रोफे. टी. जी माइंकरजी ने अपने Kālidāsa : His Art and Thought (Pub. Deshmukh Prakashana, Budhwar peth, Poona, First edition, 1962) इस ग्रन्थ में प्रकरण - १ Iśvarakṛasṇa Kālidāsa (pp. 1 to 19) - में लिखा है कि कवि भवभूति ने अपने "मालतीमाधवम्" प्रकरण की प्रस्तावना में जो श्लोक लिखा है :

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च ज्ञानं
तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके ।
यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः ॥-मालतीमाधवम् (१.७)

उस में सांख्य-योग का जो उल्लेख है, और "न्याय-वैशेषिक" का उल्लेख नहीं है - वह इस बात की और अंगुलिनिर्देश है कि भवभूति अपने पुरोगामी कालिदास के बारे में ही कटाक्षोक्ति कर रहे हैं । एक और से ईश्वरकृष्ण ने "सांख्यकारिका" कृति की रचना की है और दूसरी और कालिदास की कृतियों में सांख्यदर्शन की प्रगाढ छाया दिखाई पडती है ऐसा डॉ. वी.वी. मिराशीजी (Kālidāsa, Venus Publication, Poona, 157, p. 77-78) मानते है । अतः, प्रोफे. माइंकरजी के मतानुसार संभव है कि "अभिज्ञानशाकुंन्तल"के कर्ता कालिदास और "सांख्यकारिका" के कर्ता ईश्वरकृष्ण एक और अभिन्न व्यक्ति ही हैं । प्रोफे. माइंकरजी ने अपने मन्तव्य का समर्थन करने के लिए हमारे टिप्पणकार घनश्याम पण्डित की "उत्तररामचरित" पर लिखी गई "सञ्जीवनाख्य टिप्पण - जो कि प्रोफे. पी. वी. काणे महाशय ने सम्पादित की हैः, (उत्तररामचरितम् with the commentary of Ghanaśyāma, ed. by P. V. kane; Motilal Banarsidass, Delhi Fourth edition, 1962) की सहायता

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



ली है , जिस में घनश्याम ने, कालिदासकृत कुमारसंभव, शाकुन्तल, रघुवंशादि कृतियाँ की प्रसिद्ध पंक्तियों को उद्‌धृत करके, उसे ईश्वरकृष्ण द्वारा लिखी गई कही हैं :- जैसे कि

१.अत एव "गंगाप्रपातान्तनिरूढशष्पम्" इति ईश्वरकृष्णः । (उ. रा. च. पृ. ६८)

२. शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य इति ईश्वरकृष्णमिश्रः । (तत्रैव पृ. ७६)

३.तस्मिन् विप्रकृता काले इति ईश्वरकृष्णमिश्रः । (तत्रैव पृ. १२९)

४. अत्र "दीर्ये" इति कवेः प्रमादः", न विदीर्ये कठिनाः खलु स्त्रियः "इति कुमारसंभवे --ईश्वरकृष्णमिश्रस्येव न दयनीयः । (तत्रैव, पृ. १४१)

घनश्याम के ऐसे वाक्यों में से प्रोफे. माइंकरजीकी यह मान्यता दृढ होती है कि "सांख्यकारिका" के कर्ता ईश्वरकृष्ण और महाकवि कालिदास एक ही व्यक्ति थे[६] ।

---

6. It is very interesting to note how the description of the knowledge of which boasting is imagined - jñānam, tat kathanena kim - as given in the first line - *Vedādhyayanam, tatha upaniṣadām, sāṅkhyasya, yogasya ca* one might say, exectly idnetical with the remarks of Mirashi regarding the scholarship of Kālidāsa. The omission of the Nyāya and the Vaiśeṣika is also significant. This complete agreement, even in their omission, does not seem to be a mere accident. Who could be this great predecessor, whose knowledge of the Sāṅkhya and the Yoga could be a subject of such a vague allusion, and whose greatness could have evoked jealousy in Bhavabhūti ? The only great dramatist who deserved this honour from him and who flourished before him was the great Kālidāsa.

There might be yet no other reason why this reference to sāṁkhya and Yoga must have been deemed sufficient by Bhavabhūti to indicate Kālidāsa. This attack on the author in the verse we are discussing implies that the connection between the two systems of philosophy, the Sāṁkhya and the Yoga and the author was so well-known and famous that he could properly be made the subject of such a covert as well as discreet allusion, Ghanaśyāma, a commentator on Bhavabhūti's Uttararāmacarita in his commentary on the said play (Kane's edition)cities seven quotations all hailing from the Abhijñānaśākuntalam, the Raghuvaṁśa

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



प्रोफे. माइंकरजी का मत "उत्तररामचरित" पर घनश्याम द्वारा लिखे गए सञ्जीवन टिप्पण के उद्धरणों पर ही निर्भर है। परन्तु घनश्याम द्वारा अभिज्ञानशाकुन्तल पर जो सञ्जीवन टिप्पण लिखा गया था, और जो अद्यावधि हस्तलिखित प्रति के रूप में तांजोर में सुरक्षित पडा था उसका प्रोफे. टी. जी. माइंकरजी ने दुर्भाग्यवशात् अभ्यास नहीं किया था। आज यह सुदिन उदित हुआ है कि, घनश्याम द्वारा अभिज्ञानशाकुन्तल. पर लिखी गई "सञ्जीवन" टिप्पण का समीक्षित पाठ सम्पादित करके प्रस्तुत किया गया है, और उसके अभ्यास से ज्ञात होता है कि उसमें कहीं पर भी घनश्याम ने कालिदास की किसी भी उक्ति को "ईश्वरकृष्ण मिश्र" के नाम पर उद्धृत या प्रस्तुत नहीं की है। अतः प्रोफे० माइंकरजी की पूर्वोक्त अवधारणा का अभिज्ञानशाकुन्तल पर घनश्याम द्वारा लिखे गए "सञ्जीवन टिप्पण" के कोई भी वाक्य से समर्थन नहीं हो सकता है॥ (द्रष्टव्यः परिशिष्ट पृ. २९०)

इस तरह शाकुन्तल के अन्य टीकाकारोंके साथ घनश्याम का अभ्यास करने से प्रतीत होता है कि घनश्याम बहुमुखी प्रतिभावाले विद्वान् व्याख्याकार है। और शाकुन्तलके पाठालोचन के लिए तथा शाकुन्तलकी साहित्यिक गुणवत्ता को पहचानने के लिए घनश्याम का प्रयास बहुत उपकारक सिद्ध हो सकता है॥ अस्तु॥ ★

★ ★ ★

---

6. Cont'd.

and the Kumārasambhava and says that they are composed by Īśvarakṛṣṇa Bhartṛmiḍha. Thus Ghanaśyāma observes; : अत एव "गंगाप्रपातान्तनिरूढशष्पम्" इति ईश्वरकृष्णः। पृ. ६८

Ghanaśyāma appears to tell us that the name of the author whom we call Kālidāsa was according to his knowledge, Īśvarakṛṣa Bhartṛmiḍha. The repeated references preclude the possibility of his being mistaken If this Īśvarakṛṣṇa the author of Kumārasambhava, the Śākuntala and the Raghuvaṁiśa, is the same as Īśvarakṛṣṇa, the celebrated author of the Sāṁkhyakāriās, then the significance of Bhavabhūti's mention of Sāṁkhya and Yoga becomes perfectly clear and the reference becomes at once appropriate and relevant (pp. 5,6).... From this it would appear that Ghanaśyāma need not be considered as altogether unreliable when he suggests the identify of Kālidās a with Īśvarakṛṣṇa (p. 7)

-Kālidāsa : His Art and Thought, by T. G. Mainkar, Deshmukha Prakashan, Poona 1962

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



## उपसंहार

महाकवि कालिदास के "अभिज्ञानशाकुन्तल" पर घनश्याम पण्डित द्वारा लिखे गए "सञ्जीवन" नामक टिप्पण की चारों प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का संतुलनात्मक अभ्यास करके प्रस्तुत महानिबन्ध में, उसका समीक्षित पाठ प्रथमवार सम्पादित किया है। इस टिप्पण के समीक्षित पाठ को सम्पादित करने के साथ साथ घनश्याम के जीवन-कवन के विषय में भी प्रासंगिक अभ्यास किया गया है। तथा घनश्याम के टिप्पण से मिले हुए अभिज्ञानशाकुन्तल के दाक्षिणात्य पाठ का अन्य देवनागरी पाठ के टीकाकार राघवभट्ट. एवं दाक्षिणात्य पाठ पर टीका लिखनेवाले "काटयवेमभूपादि के साथ तुलनात्मक अभ्यास भी प्रस्तुत किया गया है। और अन्त में घनश्याम का एक टिप्पणकार के रूप में सर्वांगीण अभ्यास करने का भी प्रयास किया गया है॥

॥ इति शुभं भूयात् ॥

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



## परिशिष्ट

### घनश्याम द्वारा उल्लिखित ग्रन्थों एवं ग्रन्थकारों की सूचि


१. **अगस्त्यः** (पृष्ठांकः) ३९, ५८, ७३, ८९, ९५, ११७, १२२, १२५, १४९, १५०, १५१, १५८, १७८, १८१.

२. **अनन्तकविः** ८९, १०५

३. **अनेकार्थमंजरी** ५६, ७६,

३. **अमरकोशः** ३८, ५१-५५, ५७, ६१-६६, ७०-७३, ७४, ७५, ७६, ७८, ८०, ८१, ८३-८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९५, ९८, ९९, १०१, १०२, १०५, १०९, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, १२०, १२१, १२२, १२४, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३६, १३८, १४०, १४७, १४८, १४९, १५१, १५२, १५३, १५६, १५७, १५८, १६१, १६३, १६४, १६५, १६७, १६८, १७०, १७१, १७२, १७४, १७६, १७८, १८०, १८२

४. **अमरमाला** ४२, ५६, ६५, ७७, १०७, १२०, १२४, १४१, १५६, १५७,

५. **अमरशेषः** ४१, ७०, ७७, ८९, १२०, १४५, १७९,

६. **आदिकविः** १५७, १५९, १७४,

७. **कलहप्रियः** १४०

८. **कलानिधिः** ११२

९. **कल्पलताकारः** ४७, ५७, १०६,

१०. **कामन्दकः** ७५, ११६, १५१,

११. **केदारः** ४२, ५०, ५६, ५८, ६९, ७२, ८४, ८७, ११८, १२४, १३०, १४०, १४९, १५२, १५७, १६४

१२. **केशवः** ४०, ५८, ८९, ११६, १४९, १६५,

१३. **क्रीडाचन्द्रः** १०४, १३२,

१४. **कुटुम्बकविः** १३५,

१५. **क्षीरस्वामी** १२७,

१६. **क्षेमेन्द्रः** ६१, १०५, १०६,

१७. **गुणपाठः** ६९,

१८. **गोवर्धनः** १५७,

१९. **जयः** ५३, ७२, १२०, १८२,

२०. **जयदेवः** १७५,


Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.


२१. डिण्डिमः ५४, ९७,
२२. डिम्भः ९५,
२३. त्रिकाण्डशेषः १००, ११७, १४०,
२४. त्रिकाण्डी ४७, ६१, ७६, ८९, १२४, १३१, १४२, १५६, १६१, १७९,
२५. त्रिरूपः ४१,
२६. दण्डी ५८, ७५, ८०, १०६, १५०,
२७. दीक्षितः ४२,
२८. धन्वन्तरिः ६४,
२९. धरणिः ४३, ६४, १४३,
३०. धोई (यी) कविः १०६, १४०,
३१. ध्वनिमञ्जरी १०८, ११६,
३२. नलचरितम् १४५,
३३. नाट्यचिन्तामणिः १६१,
३४. नानार्थमाला ७७, १०६, १६१,
३५. नानार्थमञ्जरी ५८, ८४
३६. नामनिधानम् १७१,
३७. नीतिचन्द्रिका १५५,
३८. नीतिसारः १६३,
३९. नीलकण्ठः १४५,
४०. पदमाला ३९, ७२, ८९, ९९, १२१, १३१, १५९, १६४,
४१. पदार्णवः ५५,
४२. पदार्थमाला ४६, ७०, १६४,
४३. पाणिनिः ६२, ६५, ९७, १०६
४४ पुष्पदन्तः १११,
४५. प्रबन्धुः ५८,
४६. प्राकृतचन्द्रिका १२१,
४७. प्राकृतप्रकाशः ३९, ४०, ४६, ५१, ५५, ५८, ६२, ६३, ७७, ८०, ९८, १०४, १०५, १०७, ११३, १२४, १४४, १५६, १६९, १७०
प्राकृतमञ्जरी- ४८
४८. बाणः/कादम्बरी ५३, १०२, १३५, १३६

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.




४९. बोधायनः १३५,
५०.भगवत्पादाः ९५, १३५, १६२, १८२,
५१. भरतः ४१, ५१, ११२, १३८
५२. भवभूतिः ११४,
५३. भारतचम्पूः १२३,
५४. भाष्यम् १०३,
५५. भोजः ७०,
५६. मयूरः १३७, १७६,
५७. मल्लिनाथः १४९,
५८. मन्त्रसारः १७३,
५९. माघः ७२,
६०. माठरः ७३, ७६, १०६, ११०, ११६, १२१, १२३, १२६, १८२,
६१. मायणः ३८, ३९, १०४, १६८,
६२. मुकुटः ५१, ६९, १२१,
६३. मुरारिः ५५,
६४. मेदिनी ७२, १०६, ११६, १४६,
६५. यादवः ४०, ६५, १२३, १६३
६६. रत्नकोशः १६९,
६७. रत्नमाला ३९, ४४, ४६, ६२, ७५, ९९, १०१, १२०, १४५, १७२,
६८. रभसः ७५, १०६, १४८, १५४,
६९. राजशेखरः ५८, ६१, ७०, ७५, ८१, १०५, १३५, १३७, १३८, १५९, १७७,
७०. रुद्रः ४४, ११४, १४६, १६५,
७१. रूपकादर्शः ४१, ९५, ९६, ११२, १६१, १८२,
७२, लक्षणप्रपञ्चः –
७३. लिङ्गानुशासनम् ९४, १६८, १७०
७४, लीलाधरः ७५,
७५. लीलाशुकः ११५, १५७,
७६. लोलिम्बः १३१,
७७. वररुचिः
७८. वामनः ४४, ७२, १२०, १४१, १६३, १६५,


Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



७९. विक्रमचरितम् १६९,
८०. विक्रमार्कः १६८, १७०, १७४, १८१, १८२,
८१. विद्धशालभञ्जिका ११४
८२. विश्वः ६९, ८५, १२७, १५७, १८०,
८३. वृत्तचन्द्रिका -
८४. वैजयन्ती ७२, १५४,
८५. शब्दकोशः ३९,
८६. शब्दमाला ८५, ८७, ९०, ९९, ११७, १२३, १४८, १६३,
८७. शब्दार्णवः ४२, ६२, ७१, ९३, १४९,
८८. शाश्वतः ४४, १७१,
८९. श्रीकण्ठः ४१, १०९, १५७,
९०. श्रीनाथः ४०, ४१, ५७, १०६,
९१. श्रीहर्षः ६४, १०४, १०६, १५७,
९२. षण्मासकविः १५७,
९३. समयकोशः १७०,
९४. समयपद्धतिः १७९,
९५. समयार्णवः ५३,
९६. संसारावर्तः १६८, १७०, १७५,
९७. सायणः ३८, १६८,
९८. सारस्वतः ४६, ६५, ११०, १२३, १४७, १६०,
९९. सार्वभौमः ११०
१००. हरदत्तः ५३,
१०१. हलायुधः ५७, १०७, १४६, १५३
१०२. हारावली ४६, ७८, १५९, १६३,
१०३. हेमचन्द्रः/हैमः ४३, ४६, ६०, ६१, ८४, १०२, १०९, १२३, १३२, १४१, १५८, १६२,

निष्कर्षः ईश्वरकृष्ण – भर्तृमीढ का नामस्मरण एक भी बार इस "शाकुन्तलसञ्जीवन" टिप्पण में नहीं मिलता है ॥ (द्रष्टव्यः प्रकरण–६, पृ. २८६–२८९)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



# प्रमुख सन्दर्भ ग्रन्थसूचि

## (BIBLIOGRAPHY)

१. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**
(अभिराम-विरचितया दिङ्मात्रदर्शनाख्यया व्याख्यया संभूषितम्
श्रीवाणीविलास मुद्रायन्त्रालयः, श्रीरङ्गम् ॥

२. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**
काटयवेमविरचितया वसन्तराजीयाख्यया (=कुमारगिरिराजीया) व्याख्यया समेतम्,
सं. रङ्गाचार्य श्री चेलमचेर्ल आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकाडमी, हैदराबाद, १९८२.

३. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**
राघवभट्ट-कृतार्थद्योतनिकया समेतम् ।
सं गोडवोले नारायण बालकृष्ण,
निर्णयसागर मन्त्रालय, मुंबई, शक सं १८३८.

४. **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**
सं. राय शारदा रञ्जन, नालन्दा प्रेस, कलकत्ता, १९०८

५. **अभिज्ञानशकुन्तलचर्चा**
(१९६१ तमे क्रैस्ताब्दे अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावल्यां १९५ तमाङ्केन प्रकाशितस्य ग्रन्थस्य पुनर्मुद्रणम्)
Published by Chemmanam Chacko, Dept. of Publication, University of Kerala, Trivandrum, Reprinted - 1977.

६. **अभिज्ञानशाकुन्तलं नाटकम्** (मैथिलपाठानुगम्)
(शंकर - नरहरिकृत-व्याख्याद्वय-समलंकृतम्)
सं. उपाध्याय श्रीरमानाथ शर्मा,
मिथिलाविद्यापीठ प्रकाशन, दरभंगा, १९५७.

७. **अभिज्ञानशाकुन्तलनाटकम्**
(टीकाद्वयोपेतम् - राघवभट्ट एवं श्रीनिवासाचार्य तिरुमलाचार्य, मद्रास, १९५०.

८. **अष्टाध्यायी - सूत्रपाठः** (पाणिनीयं शब्दानुशासनम्)
सं. जिज्ञासु ब्रह्मदत्तः,
रामलालकपूर ट्रस्ट, सोनीपत (हरियाणा), १९७३

९. **उत्तररामचरितम्** with the commentary of घनश्याम ।
Ed. Kane P. V. (Fourth revised edition)

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



Motilal Banarsidass, Delhi, 1962.

१० कालिदासग्रन्थावली
सं. द्विवेदी रेवाप्रसादः,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, (द्वितीयं परिवर्द्धितं संस्करणम्)
वाराणसी, १९८६.

११. कालिदास साहित्य एवं सन्दर्भ
लेखक-पाठक वनेश्वर, ज्योति प्रकाशन, पटना, रांची, वाराणसी, १९८१.

१२. प्राकृतप्रकाशः of वररुचिः
(With the commentary of Rāmapāṇivāda)
Ed. Dr. Raja C. Kunhan and Sarma Ramachandra, The Adyar Library, 1946.

१३. व्याकरण-महाभाष्यम् (Vol. I, II, III)
सं. कीलहोर्न. ए. (तृतीयावृत्तिः)
भाण्डारकर ओरिएन्टल रीसर्च इन्स्टीट्युट, पूना, १९६२, १९६५, १९७२

१४. ABHIJNĀNA-ŚĀKUNTALA OF KĀLIDĀSA
(The Kashmiri recension)
Ed. Belvalkar S. K.
Sahitya Akademi, New Delhi, 1965.

15. KĀLIDĀSA BIBLIOGRAPHY
By Narang Satya Pal
Heritage Publishers, New Delhi, 1976.

16. KĀLIDĀSA : HIS ART AND THOUGHT
By Mainkar T. G.
Deshmukh Prakashan, Poona, 1962.

17. KĀLIDĀSA'S ŚĀKUNTALA
(Critically edited, in the Original Sanskrit and Prakrit of the Bengali Recension)
Ed. Pischel Richard, Second edition.
Harvard University Press, Cambridge, Massachusetts, 1922.

18. NEW CATALOGUS CATALOGORUM

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.



Vol. I, Ed. Raghvan V., University of Madras, Madras, 1969.

19. NEW CATALOGUS CATALOGORUM
Vol. VI, Ed. Raja K. Kunjunni
University of Madras, Madras, 1971.

20. ŚAKUNTALĀ BY KĀLIDĀSA
(The Deva-nagari Recension of the text)
Ed. Monier Williams,
Chowkhamba Sanskrit Series Office, 3rd edition,
Varansi, 1961.

21. SANSKRIT POET GANŚYĀMA (ARTICLE)
By Chaudhari Jatinacandra Bimal
Indian History Quartely, Vol, 19, No. 3,Sept., 1943-44 A.D.

22. THE CONTRIBUTION OF WOMEN TO SANSKRIT LITERATURE-VOL-I
(=राजशेखरकृता विद्धशालभञ्जिका, टीकाद्वयोपेता
viz. प्राणप्रतिष्ठा by घनश्याम and चमत्कारतरङ्गिणी by कमला and सुन्दरी ।
Ed. Dr. Chaudhari, Jatindra Bimal
Calcutta Oriental Series No. 30, Calcutta, 1934.

24. THE TEXT OF THE ŚAKUNTALĀ
(A paper read at the First Oriental Conference, Poona, 1919)
By Thakore B. K. (Gujarat)
Pub. By D. B. Taraporewala Sons and Co.,
Horny Road, Fort, Bombay, 1922.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

Vasant Bhatt Collection, Gujarat

CC-0. In Public Domain.Digitized by eGangotri.

# SARASWATI SANSKRIT SERIES

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | प्रमाणमीमांसा - आ. हेमचंद्र<br>स्वोपज्ञ एवं टीका सुखलालजी निर्मित भाषा टिप्पणसहिता | संपा. : पं. दलसुख माणवणिया, महेन्द्रकुमार शास्त्री | 150-00 |
| 2. | आरंभसिद्धि-लग्नशुद्धि-दिनशुद्धि<br>गुजराती विवेचन सह | आ. लब्धिसुरीजी म.सा. | 125-00 |
| 3. | **The Story of Rama in Jain Literature**<br>(As presented by the Swetambara and Digambara Poets in the Prakrit Sanskrit & Apabhramsa Language. | Dr. V. M. Kulkarni | 200-00 |
| 4. | अकलंकग्रंथत्रयम् (श्रीमद् अकलङ्कदेवविरचितम्)<br>(स्वोपज्ञविवृत्तिसहितं लधीयस्त्रयम्, न्यायविनिश्चयः प्रमाणसंग्रहश्च) न्यायाचार्य पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री निर्मित टिप्पणादिसहितम्) | पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री | 300-00 |
| 5. | **Bhoja and the Harivijaya of Sarvasena**<br>Int. Definitive Text, translation and Notes | Dr. V. M. Kulkarni | 90-00 |
| 6. | **More Studies in Sanskrit Sahitya Sastra** | Dr. V. M. Kulkarni | 250-00 |
| 7. | जैन तर्कभाषा - उपा. यशोविजयजी<br>(तात्पर्यसंग्रहाख्यवृत्तिसहिता) | पं. सुखलालजी<br>पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री | 125-00 |
| 8. | भरतमुनिकृत - नाट्यशास्त्रम्<br>(अ. १, २, ६) गुजराती अनुवाद प्रस्तावना एवं टिप्पणी सहित | डॉ. तपस्वी नान्दी | 400-00 |
| 9. | भरतमुनिकृत - नाट्यशास्त्रम्<br>(अ. ६, १६, १८, १९)<br>गुजराती अनुवाद, प्रस्तावना एवं टिप्पणी सह | डॉ. तपस्वी नान्दी | 400-00 |
| 10. | काव्यादर्श : (आ. दंडी विरचित)<br>प्रस्तावना, मूल ग्रंथ, गुजराती अनुवाद अभ्यासनोंध) | डॉ. जागृति सुं. पण्डया | 150-00 |
| 11. | ध्वन्यालोक (आनंदवर्धन)<br>(प्रस्तावना, मूलग्रंथ, लोचन संस्कृत टीका, गुजराती अनु. एवं अभ्यास नोंध) | डॉ. तपस्वी नान्दी | 400-00 |
| 12. | अभिज्ञानशाकुन्तल<br>घनश्याम कृत टीका सहित | डॉ. वंसन्त भट्ट<br>डॉ. पूनम रावळ | 250-00 |

**સરસ્વતી પુસ્તક ભંડાર, અમદાવાદ-૧.**

Vasant Bhatt Collection, Gujarat